

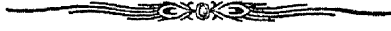
काव्यमाला. २१.



श्रीसातवाहनविरचिता

गाथासप्तशती ।

गङ्गाधरभट्टविरचितया टीकया समेता ।



जयपुरमहाराजाश्रितेन महामहोपाध्यायपण्डितशुभुगोप्रसादतनयेन
पीठतुकेदारनाथेन, मुम्बापुरवाटिसंपणशीकरोपाह-
लक्ष्मणात्मजवासुदेवशर्मणा च संशोधिता ।

(द्वितीयावृत्तिः)

मुंबय्यां

तुकाराम जावजी

इत्येतैः स्त्रीये निर्णयसागराख्ययन्त्रालये मुद्रयित्वा प्रकाशिता ।



शाकः १८३३, ख्रिस्तवदः १९११.

(अस्य ग्रन्थस्य पुनर्मुद्रणादिविषये सर्वथा निर्णयसागरमुद्रायन्त्रालयाधिपते-
रेवाधिकारः ।)



मूल्यं साधुं रूप्यकः ।

गाथानुक्रमणिका ।

अइ उज्जुए ण	७।७७	अज्जाइ णीलकञ्चुअ (मीणसामिणो)	४।९५
अइकोवणा वि सासू	५।९३	अज्जाएँ णवण (केसवराअस्स)	२।५०
अइ दिअर किं ण	६।७०	अणुऊलं विअ वोत्तुं	६।२३
अइदी हराई बहुए	७।७४	अणुणअपसा (विण्णस्स)	३।७७
अउलीणो दोसुह	३।५३	अणुदिअह (परक्कमस्स)	३।६६
अकअण्णुअ घणवण्णं	६।९९	अणुमरणपत्थिआए	७।३३
अकअण्णुअ तुज्झ	५।४५	अणुवत्तण (हालस्स)	३।६५
अक्खडइ पिआ (रइराअस्स)	१।४४	अणुहुत्तो करफसो	७।५७
अगणिअजणाववाअ	५।८४	अण्णग्गामपउत्था	७।८७
अगणिअसेस (गीतलद्धिअस्स)	१।५७	अण्णणं कुमुम (अणुराअस्स)	२।३९
अग्घाद् छिवइ	७।३९	अण्णमहिला (अणिरुद्धस्स)	१।४८
अङ्गाणं तणुआरअ (मिहरस्स)	४।४८	अण्णं पि किं पि	६।९
अञ्चासण्णविवाहे	७।५५	अण्णह ण तीरइ (अणवत्थस्स)	४।४९
अच्छउ ता जणवाओ (वाहवस्स?)	३।१	अण्णाणं वि ह्वोन्ति	५।७०
अच्छउ दाव मणहरं	२।६८	अण्णावाराहकुविओ	५।८८
अच्छीहिँ ता थइस्सं (नस्सीहस्स)	४।१४	अण्णासआई (मअरन्दअस्स)	१।२३
अच्छेरं व णिहिँ (रामस्स)	२।२५	अण्णेसु पहिअ	७।२९
अच्छोडिअवत्थ (गुणद्धस्स)	२।६०	अण्णो को वि	५।३०
अज्जअ णाहं (मिअङ्गस्स)	२।८४	अण्णोणकडक्ख	७।९९
अज्ज कइमो वि (हालस्स)	२।१९	अत्ता तह रमणिज (कुमारिलस्स)	१।८
अज्जं गओत्ति अज्जं (पवरसेणस्स)	३।८	अत्थक्कस्सणं	७।७५
अज्ज मए गन्तव्वं (सुचरिअस्स)	३।४९	अहंसणेण पुत्तअ (वहुरसस्स)	३।३६
अज्ज मए तेण (कैल्लाणस्स)	१।२९	अहंसणेण पेम्मं (सामिअस्स)	१।८१
अज्जं पि ताव एक्कं	६।२	अहंसणेण महिला (सामिअस्स)	१।८२
अज्जं मोहणग्घुहिअं (जण्णन्दसारस्म)	४।६०	अद्धच्छिपेच्छिअ (मअरन्दस्स)	३।२५
अज्ज द्वि हासिआ (हालस्स)	३।६४	अन्तो हुत्तं डज्जइ (णाहहत्थिस्स)	४।७३
अज्ज वि बालो (विधिविग्गहस्स)	२।१२	अन्धअरबोरपत्त (अणुराअस्स)	३।४०
अज्ज व्वेअ पउत्थो अज्ज (अर्माअस्स)	२।९०	अपहुप्पन्तं (उअहिस्स?)	५।११
अज्ज व्वेअ पउत्थो उज्जा (असरिमास्स)	१।५८	अप्पच्छन्दपहाविर (पवरसेणस्स)	३।२
अज्ज सहि केण (केसवस्स)	४।८१		

अप्पत्तपत्तअं	(मउहस्स?) ३४१	अहरमहुपाण	७६१
अप्पत्तमण्णुदुक्खो	(.....) २५७	अहव गुणव्विअ (चन्दहत्थिस्स)	३३
अप्पाहेइ मरन्तो	७३२	अह संभाविअमग्गो (भोजअस्स)	१३२
अब्भन्तरसरसाओ	७२३	अहसरसदन्त (अहअस्स)	३१००
अमअमअ	(हालस्स) ११९	अह सा तहि तहिं	४१८
अमिअं पाउअकव्वं	१२	अह सो विलक्खहि (हालस्स)	५२०
अम्बवणे भमरउलं	६४३	अहिआअमाणिणो (जुल्लोगस्स)	१३८
अम्हे उज्जुअसीला	७६४	अहिणवपाउससि	६५९
अलिअपसुत्त (चन्दसामिणो)	१२०	अहिलेन्ति सुर (वसन्तस्स)	४६६
अलिअपसुत्तव	७४६	आअण्णाअद्धि	६१४
अलिहिज्जइ पङ्कअले	७९०	आअण्णेइ अउअणा (मइज्जस्स)	४६५
अवमाणिओ वि (अवन्तिवम्मस्स)	४२०	आअम्बन्तकवोलं	२९२
अवरज्जसु (माउराअस्स)	४७६	आअम्बलोअणाणं	५७३
अवरह्लागअ जामा	७८३	आअरपणामिओट्टं (वज्जविआरस्स)	१२२
अवराहेहिं वि (जअराअस्स)	४५३	आअस्स कि णु	२८७
अवलम्बह मा (दुद्धरस्स)	४८६	आउच्छणविच्छाअं	५१००
अवलम्बिअमाण (रेवाए)	१८७	आउच्छन्ति सिरेहि	७८०
अवहत्थिऊण (देवस्स)	२५८	आक्खेवआई	३४२
अविअल्लोपेक्खणिज्जेण (वज्जस्स)	१९३	आणत्तं तेण तुमं	७८५
अविइल्लोपेच्छणिज्जं (सिरिसत्तिअस्स)	१९९	आम असइ ह्वा (पालितस्स)	५१७
अविरलपडन्तणव	५३६	आमजरो मे मन्दो (कालस्स)	१५१
अविहत्तसंधिवन्धं	७१३	आम बहला वणाली	६७८
अविहवलक्खणवलअ	६३९	आरम्भन्तस्स धुअं (वल्लहस्स)	१४२
अव्वो अणुणअ (सीहस्स)	४६	आरुहइ जुण्णअं	६३४
अव्वो दुक्कर (सरलस्स)	३७३	आलोअन्त दिसाओ	६४६
असमत्तगुरुअकज्जे	६३७	आलोअन्ति पुलिन्दा (हैलिअस्स)	२१६
असमत्तमण्डणा (कौलिराअस्स)	१२१	आवण्णाई कुलाइ	५६७
असरिसत्तित्ते (मैण्डहिवस्स?)	१५९	आसण्णविआहदिणे	५७९
अह अह्मा आअदो (अहअस्स)	४१	आसासेइ परिअणं (अलंकारस्स)	३८३
अहअं लज्जा	२२७	इअरो जणो ण (वाहवराअस्स)	३११
अहअं विओअतणुई	५८६	इअ सिरिहाल	७१०१

१. 'मकरन्दस्य' वे. २. 'कलिराजस्य' वे. ३. 'भुग्धदीपस्य' वे. ४. 'शा-
लिवाहनस्य' वे. ५. 'हालिकस्य' वे.

ईसं जणेन्ति (माहवसेणस्स) ४१२७	एक च्चिअ रूअगुणं ६१९२
ईसामच्छररहिएहि ६१६	एक पहरुव्विण्णं (पैहईए) ११८६
ईसाल्लओ पई (अरिकेसरिस्स) २१५९	एकल्लमओ दिट्ठीअ ७१९८
उअअं लहिउण ५१९०	एकैकभवइवेठण (अरिकेसरिणो) ३१२०
उअ ओल्लिज्जइ ७१४०	एकैण वि वडवी ७१७०
उअगअचउत्थि ७१४४	एकओ पल्लुअइ थणो (हालस्स) ५१९
उअ णिच्चल (वोदिसंस्स) ११४	एकओ वि कालसारो (कालसारस्स) ११२५
उअ पोम्मराअ ११७५	एण्हि वारेइ जणो (सिरिसुन्दरस्स) ७१९६
उअरि हरदिट्ठ (पवरसेणस्स) ११६४	एत्ताइच्चिअ मोह (भोजअस्स) ५११०
उअ संभमविक्खित्तं ५१६१	एत्थ चउत्थं विरमइ ४१९०१
उअ सिन्धवपव्वअ ७१७९	एत्थ णिमज्जइ ७१६७
उअह तरुकोडराओ ६१६२	एत्थ मएरमिअव्वं (गुणमन्दिअस्स) ४१५८
उअह पडलन्तरो (पालितस्स) ११६३	एदहमेत्तम्मि जए (सिरिराअस्स) ४१३
उक्खिप्पइ (हालस्स) २१२०	एदहमेत्ते गामे ६१५३
उज्जागरअकसाइअ ५१८२	एसो मामि जुवाणो (मन्दसुअणस्स) ३१९४
उज्जुअरण ण तूप्पइ ५१७६	एह इमीअ णिअच्छह ६१७९
उज्जसि पिआइ (ईसाणस्स) ३१७५	एहइ सो वि पउत्थो(सिरिधम्मअस्स) १११७
उडन्तमहारम्भे (मत्तगइन्दस्स) ४१८२	एहि ति वाहरन्तम्मि ६१३
उण्हाई णीससन्तो (अणज्जस्स) ११३३	एहिसि तुम ति (अल्लस्स) ४१८५
उद्धच्छो पिअइ (भाडुअस्स) २१६१	ओसरइ धुणइ साहं ६१३१
उप्पणत्थे कज्जे (माणइन्दस्स) ३११४	ओसहिअजणो (मन्दरस्स) ४१४६
उप्पहपहाविहजणो ६१३५	ओ हिअअ ओहि ५१३७
उप्पाइअदव्वाणं (पालितस्स) ३१४८	ओ हिअअ मडह (महाएवस्स) २१५
उप्पेक्खागअ (विस[म]सेणस्स) ४१३९	ओहिदिअहागमा (पुण्णभोजअस्स) ३१६
उप्फुल्लिआइ (वच्छस्स) २१९६	कण्डन्तेण अकण्ड ७१६३
उम्मूलेन्ति व (विजयगइ[णो]) २१४६	कण्डुज्जुआ (कअलीहरस्स) ४१५२
उल्लावन्तेण ण होइ ६१३६	कत्थ गअं रइबिम्ब ५१३५
उल्लावो मा दिज्जउ ६११४	कं तुज्जथणु (पालितस्स) ३१५६
उव्वहइ णवत्तण ६१७७	कमल मुअन्त ७१४१
एण च्चिअ (कट्ठिल्लस्स) ५१४	कमलाअरा ण (मिअङ्कस्स) २११०
एककमपणिरक्खण ७११	करमरि कीस ण ६१२७
एककमसंदेसा (.....) ४१४२	करिमरि अआल (मअरन्दस्स) ११५५

दुरुणाहो विवअ	५१४३	खेन्धगिगणा	११७७
कलहन्तरे वि	(हालस्स) ४१२१	खरपवणरअगल	६१८३
अत्त किर खर	(निप्पटस्स) ११४६	खरसिप्पिर	(पसण्णम्मा) ४१३०
कम्म करो वहु	६१७५	खाणेण अ पाणेण	७१६२
कम्म भरिसि त्ति	(सुरहिवच्छस्स) ४१८९	खिण्णस्स उरे	(अवन्तिवम्मस्स) ३१९९
कह ण म तीअ	(सवरसत्तिस्स)? ३१६८	खिप्पइ हारो	५१२९
कह मे परिणइआले	६१६८	खेमं कन्तो खेमं	५१९९
कहं मा णिव्व	(पव्वअकुमारस्स) ३१७१	गअकलहकुम्म	(कइराअस्स) ३१५८
कहं मा सोहग्गुण	५१५२	गअगण्डत्थल	(गन्धराअस्स) २१२१
कहं सो ण	(सङ्करस्य) ५११३	गअवहुवेहव्वअरो	७१३०
कह तपि तु इण	(सेहणाअस्स) ७१९७	गज्ज महं चिअ	६१६६
कारिममाणन्दवडं	५१५७	गन्ध अग्धाअन्तअ	६१६५
कि कि दे	(गअसिंहस्स) १११५	गन्धेण अप्पणो	(विअहस्स) ३१८१
कि ण भणिओ सि	(वहुआहस्स) ४१७०	गम्मिहिसि तस्स	७१७
कि दाव कआ	(रेवाए) ११९०	गरुअच्छुहाउलि	४१८३
कि भणह मं सहीओ	७११७	गहवइ गओ	(विअक्कुइन्दस्स) ३१९०
कि रुअसि	(महिन्दस्स) ११९	गहवइणा	(सच्चसाभिणो) २१७२
कि रुवसि कि अ	६११६	गहवइसुओ	(हालस्स) ४१५९
कीरन्ती विवअ	(सरलस्स) ३१७२	गामङ्गणणिअडि	६१२६
कीरमुहसच्छ	(सूरणस्स) ४१८	गामणिघरम्मि अत्ता	५१६९
कुमुममआ वि	(हालस्स) ४१२६	गामणिणो सव्वासु	५१८९
के उव्वरिआ के	५१७४	गामतरुणीओ	६१४०
केण मणे भग्ग	(मिअङ्कस्स) २१११	गामवडस्स	(खण्डम्म) ३१९५
केत्तिअमेत्तं होहिइ	६१८१	गिज्जन्ते मङ्गल	७१४०
केलीअ वि रुत्ते	(पावच्छीलस्स) २१९५	गिह्वे दवग्गि	(वैद्धाघर्हीण!) ११७०
केसरअ	४१८७	गिरसोत्तो त्ति	६१५१
कैअवरहिअं	(रामस्स) २१२४	गेअच्छलेण	(अहअम्म) ४१३१
कोटथ जअम्मि	(विलासस्स) ४१६४	गेहह पलोअह	(हरितउस्स) २११००
कोसम्बकिसल	(गजस्स) १११९	गेहं व वित्तरहिअं	७१९
खणभङ्गरेण पेम्मेण	५१२३	गोतक्खलणं सोऊण	५१९६
खणमेत्तं पि ण	(हालस्स) २१८३	गोलाअडडिअं	(अविअक्कणस्स) २१०

१. 'लम्पस्य' वे. २. 'विनयायितस्य' वे. ३. 'अनुरागस्य' वे. ४. 'अलि कस्य' वे.

गोलाणइए	(णरवाहणस्स)	२।७१	जं जं पुलएमि दिसं	६।३०
गोलाविसमो		२।९३	जं जं सो णिज्जा (वैसन्तअस्स)	१।७३
घरिणिघणत्थण	(दुव्विद्वुअस्स)	३।६१	जं तणुआअइ सा	७।११
घरिणीए	(हालस्स)	१।१३	जन्तिअ गुल	६।५४
घेतूण चुण्ण	(कान्तफरस्स)?	४।१२	जं तुज्ज सई (अणुलच्छीए)	३।२८
चञ्चुपुडाहअवि		७।६६	जम्मन्तरे वि चलणं	५।४१
चत्तरघरिणी	(मैहिलस्स)	१।३६	जस्स जहं विअ (अद्धराअस्स)	३।३४
चन्दमुहि	(गगाराअस्स)	३।५२	जह विन्तेइ परि	७।२८
चन्दसरिसं	(वाहवराअस्स)	३।१३	जह जह उव्वहइ (... ..)	३।९२
चलणोआसणि	(भमरस्स)	२।८	जह जह जरा (पोट्टिसस्स)	३।९३
चावो सहावसरल		५।२४	जह जह वाएइ (ससिप्पहाए)	४।४
चिक्खिल्लखुत्त	(चुल्लोहस्स)	४।२४	जाएज्ज वणुद्देशे (असमसाहस्स)	३।३०
चित्ताणिअदइ	(वैण्डहिस्स?)	१।६०	जाओ सो वि (चन्दस्स)	४।५१
चिरडि पि अ	(पावच्छीलस्स)	२।९१	जाणइ जाणावेउं (गोमउज्जस्स)	१।८८
चोरारणं कामुआणं		७।९८	जाणि वअणाणि	७।४९
चोरा समअसतणहं		६।७६	जारमसाणसमुब्भव (हालस्स)	५।८
चोरिअरअसद्धाल्लइ	(बम्हअन्तस्स)	५।१५	जाव ण कोसवि	५।४४
छज्जइ पट्टस्स	(सुन्दरस्स)	३।४३	जिविअं असाअं (हालस्स)	३।४७
छिज्जन्तेहि	(माणिकाराअस्स)	४।४७	जिविअसेसाइ (अवज्ञाज्जस्स)	२।४९
जइ कोत्तिओ		७।७२	जीहाइ कुणन्ति	६।४१
जइ चिक्खल्ल	(वैदुराअस्स?)	१।६७	जुज्जचवेडामोडि	७।८४
जइ जूरइ जूरउ		७।८	जे जे गुणिणो	७।७१
जइ ण छिवसि		५।८१	जेण विणा (रोहाएँ)	२।६३
जइ भमसि भमसु		५।४७	जे णीलभमर	५।२२
जइ लोकणिन्दिअं		५।८०	जेत्तिअमेत्त (मुद्धसीलस्स)	१।७१
जइ सो ण वल्लहो	(सुसीलस्स)	४।४३	जेत्तिअमेत्ता (पालितस्स)	४।९३
जइ होसि ण	(मुहराअस्स)	१।६५	जे संमुहागअ (वाहवराअस्स)	३।१०
जं जं आलिहइ		७।५६	जो कह वि (वैलाइच्चस्स)	२।४४
जं जं करेसि जं जं	(कल्लणसीहरस्स)	४।७८	जो जस्सा विहव (वाहवराअस्स)	३।१२
न जं ते ण सुहाअइ		७।१५	जो तीए अहर (दामोअरस्स)	२।६
न ज पिहुलं	(कुलउत्तस्स)	४।९	जो वि ण आणइ	५।३८

१. 'मल्लोकव्य' वे. २. 'मुग्घदीपस्य' वे. ३. 'धीरस्य' वे. ४. 'वरालकस्य'
५. 'आमकूटस्य' वे. ६. 'वल्लइपितस्य' वे.

जो सीसम्मि	४१७२	णिअवक्खारोवि	५१४२
झञ्झावाउत्तिणिअघर (जअसेणस्स)	२१७०	णिक्कण्ड दुरारोह	५१६८
झञ्झावाउत्तणिए (राअहत्थिणो)	४१५५	णिक्कमाहिं	(पुण्डरीअस्स) २१६९
ठाणव्भट्टा परि	७१५२	णिक्खिव जाआ	(हैरिआलस्स) ११३०
डज्जसि डज्जसु	(हालस्स) ५११	णिह् लहन्ति कहिअं	(देवएवस्स) ५११८
ण अ दिट्ठिं णेइ	७१४५	णिद्दाभञ्जो	(हालस्स) ४१७४
णअणव्भन्तर	(हालस्स) ४१७१	णिद्दालस	(हालस्स) २१४८
णइऊरस	(पैवणराअस्स) ११४५	णिप्पच्छिमाइं	(सिरिवलस्स) २१४
ण कुणन्तो व्विअ	(अद्धराअस्स) ११२६	णिप्पण्णसस्सरि	७१८९
णक्खक्खुडिअं	(महाराअस्स) ४१३१	णिव्वुत्तरआ	(सहुणकलसस्स) २१५५
ण गुणेण	(समरिणसस्स) ४११०	णिहुअणसिपं	६१८९
णच्चणसलाहणणि	(गुंवरस्स ?) २११४	णीआइं अज्ज	(धणंजअस्स) ४१२८
ण छिवइ हत्थेण	६१३२	णीलपडपाउअङ्गी	६१२०
णन्दन्तु सुरअसुह	(हालस्स) २१५६	णीसासुक्कम्पिअ	(रोलएवस्स) ४१६१
ण मुअन्ति	(हालस्स) २१४७	णूणं द्विअअ	(महाएवस्स) ४१३७
णलणीसु भमसि	७११९	णूमेन्ति जे पहुत्त	(मौघवीए) ११९१
णवक्कम्पिएण	७१९२	णेउरकोडि	(अणङ्गस्स) २१८८
णवपल्लव विसण्णा	६१८५	णोहलिअमप्पणो	(मअरन्दसेनस्स) ११६
णवल अपहर	(पैणामस्स) ११२८	तइआ कअग्घ	(माअङ्गस्स) ११९२
णववहुपेम्म	(कण्णउत्तस्स) २१२२	तइ बोलन्ते	(हालस्स) ३१२३
ण विणा सम्भावेण	(भोजअस्स) ३१८६	तइ सुहअ	(मणोरहस्य) ४१३८
ण वि तह अइ गरुएण	५१८३	तडविणिहिअग्ग	(हालस्स) ४१९१
ण वि तह अणालवन्ती	६१६४	तडसठिअ	(माणस्स) २१२
ण वि तह छेअ	(अणुलच्छीए) ३१७४	तणुएण वि	(भाउलस्स) ४१६२
ण वि तह पढम	(भाणुसत्तिणो) ३१९	तं णमह जस्स	(णिकैलङ्कस्स) २१५१
णं वि तह विएस	११७६	तत्तो च्चिअ होन्ति	७१४८
णासं व सा कवोले	(सौमिअस्स) ११९६	तं मित्तं काअव्वं	(पालितस्स) ३११७
णाहं दूईं ण	(असुलद्धीए) ? २१७८	तम्मिरपसरिअहु	६१८८
णिअअणुमाण	(केलासस्स) ४१४५	तस्स अ सोहग्ग	(मअरद्वअस्स) ३१३१
णिअधणिअं	६१८२	तस्स कहाकण्टइए	७१५९

१. 'प्रवरराजस्व' वे. २. 'वुरस्य (?)' वे. ३. 'प्राणामस्य' वे. ४. 'भीमवि-
क्रमस्य' वे. ५. 'स्थिरसाहसस्य' वे. ६. 'शालिकस्य' वे. ७ 'गजरेवस्य' व.
८. 'कलङ्कस्य' वे.

नह तस्स माण	(हालस्स) ५१३१	दइअकरगगहल्लिओ	६१४४
तह तेणवि सा	७१२५	दक्खिण्णोण वि	(आइवराहस्स) ११८५
तह परिमल्लिआ	७१३७	दट्टूण उण्णमन्ते	६१३८
तह माणो	(सालिअस्स) २१२९	दट्टूण तरुणसुरअं	६१४७
तह सोण्हाइ	(सुन्दअस्स) ३१५४	दट्टूण रुन्दतुण्ड	(विग्गहस्स) ५१२
ता किं करेउ	(वम्हआरिणो) ३१२१	दट्टूण हरिअदीह	७१९३
ता मज्झिमो विवअ	(हालस्स) ३१२४	दढरोस	(अवन्तिवम्मस्स) ४११९
ता रुणं जा	(वेरसत्तिस्स) २१४१	दरफुडिअ	(वम्हराअस्स) ११६२
ताल्लूरभमा	(अवट्ठस्स) ११३७	दरवेविरोरुजुअलासु	७११४
तावब्बिअ रइ	(कुल्लोहस्स) ११५	दिअरस्स	(हालस्स) ११३५
तावमवणेइ	(हरिउद्धस्स) ३१८८	दिअहं खुउक्किआ	(विच्छमस्स) ३१२६
तायिज्जन्ति	(पवाराअस्स) ११७	दिअहे दिअहे	७१९१
तासुहअपिलम्ब	७१२	दिट्ठा च्छुआ	(कीन्तक्खुरस्स) ११९७
तीअ मुहाहिं	(हालस्स) २१७९	दिढमण्णु	(मोत्ताहलस्स) ११७४
तुआणं विसेस	५१२७	दिढमूलवन्ध	(अणुलच्छीए) ३१७६
तुक्को च्चिअ	(माउराअस्स) ३१८४	दीसइ ण च्छूअ	६१४२
तुज्झक्कराअ	२१८९	दीसन्तो णअणसुहो	(राअरसिअस्स) ५१२१
तुज्झ वसइ	(मुहस्स) ११४०	दीसन्तो दिट्ठिसुहो	७१९१
तुप्पाणणा	(अलक्कस्स) ३१८९	दीससि पिआण	५१८९
तुः दंगणेण जणिओ	७११०	दीहुल्लपउर	२१८५
तुह दंगणे सअल्ला	६१५	दुग्गं देन्तो	(सिरिसत्तिअस्स) १११००
तुह मुहसा रिच्छ	(राहहथिणो) ३१७	दुक्कन्नेहि लम्भइ	४१५
तुह विरहुज्जागरओ	५१८७	दुग्गअकुट्टुम्ब	(सिरिधम्मअस्स) १११८
तुह विरहे	(अणअस्स) ११३४	दुग्गअघरम्मि	५१७२
ते अ जुआणा ता	६११७	दुण्णि मखेपअ	(साहिळ्ळस्स) २१५४
तेण ण मरामि	४१७५	दुग्गोन्ति देन्ति	(वगन्तवम्मस्स) ४१२५
ते विरला सप्पु	(इन्दस्स) २११३	दुस्सिअग्गअरअ	७१२७
ते बोलिआ	(निध्वमग्ग) ३१३२	दुइ तुभं विअ	(आहवसत्तिणो) २१८१
यणजइणपिअ	(स वसेणस्स) ३१३३	दूरन्तारिण वि पिण	७१५८
योअ पि ण	(सुरभिवग्गस्स) ११४९	देव्वाम्म पराहुते	(अन्धस्स) ३१४५
योअमुणहिं रुणं	६१२८	देव्वाअत्तम्मि	(भीएणवस्स) ३१७९

१. 'त्रिलोकस्य' वे. २. 'मुद्रस्य' वे. ३. 'सुरभिवत्तमस्य' वे. ४. 'स्थिरसा-
 दसस्य' वे. ५. 'पउलिन्यस्य' वे.

दे सुअणु पसिअ	५१६६	परिमलणसुहा	५१२८
दोअङ्गुलअकवाल	७१२०	परिरद्धकणअ	४१९८
धण्णा ता महि (मलअसेहरस्स)	४१९७	परिद्धएण (विक्रमराअस्स)	२१३४
धण्णा बहिरा	७१९५	पसिअ पिए (कुविन्दस्स)	४१८४
धण्णा वसन्ति	७१३५	पसुवइणो (हालस्स)	१११
धरिओ धरिओ (माणस्स)	२११	पहरवणमग्ग (अङ्गराअस्स)	११३१
धवलो जिअइ	७१३८	पहिअवद्ध विवरन्तर	६१४०
धवलो सि जइ	७१६५	पहिउद्धरण (अहराअस्स)	२१६६
धाराधुव्वन्तमुहा	६१६३	पाअअिअ सोहग्गं	५१६०
धावइ पुरओ पासेसु	५१५६	पाअडिअणेह (मणिराअस्स)	२१९९
धावइ विअलिअ (माऊराअस्स)	३१९१	पाअपडणणो सुद्धे	५१६५
धीरावलम्बिरीअ (वाहवस्स)	४१६७	पाअपडिअं (हालस्स)	४१९०
धुअइ व्व (विसमराअस्स)	३१८०	पाअपडिअस्स (टुग्गसामिणो)	११११
धूलिमइलो वि	६१२६	पाअपडिओ ण	५१३२
पइपुरओ विअ (मल्लसेणस्स)	३१३७	पाणउटीअ वि (हालस्स)	३१२७
पउरजुवणो (हालस्स)	२१९७	पाणिग्गहणे (अणुराअस्स)	११६९
पङ्कमइलेण छीरेक्क	६१६७	पासाराङ्की (भोजअस्स)	३१५
पञ्चग्गप्फुल्ल	६१९०	पिअदसण (वसन्तसेणस्स)	४१२३
पञ्चूसमउहावलि	७१४	पिअसंभरण (बम्हआरिणो)	३१२२
पञ्चूसागअ रञ्जित	७१५३	पिअविरहो (वैसुआरिणो)	११२४
पञ्जरसारिं अत्ता ण	६१५२	पुच्छिज्जन्ती ण	७१४७
पडिवक्ख (उद्धवस्स)	३१६०	पिज्जइ कण्णञ्ज	७१७६
पढम वामणविहिणा	५१२५	पुट्ठिं पुससु (पण्डिणो)	४११३
पढमणिलीणमहुइ	५१९५	पुणरुत्तकरप्फालण	६१४८
पणअकुविआणो (कुमारस्स)	११२७	पिसुणेन्ति कामिणीणं	६१५८
पत्तणिअम्बफ्फंसा	६१५५	पुसइ खण धुवइ	५१३३
पत्तिअ ण पत्तिअन्ति (पवरसेणस्स)	३११६	पुराउ मुहं ता	७१८१
पत्तो छणो ण (कालइवस्स)	११६८	पुसिआ अण्णा (कलसगन्धस्स)	४१२
पप्फुल्लघणकलम्बा	७१३६	पेच्छइ अलद्ध (विअङ्कुइन्दस्स)	३१९६
परिओसवि (जीअएवस्स)	४१४१	पेच्छन्ति अणिमिस (सुरहिवच्छस्स)	६१८८
परिओससुन्दराइं	७१६८	पेम्मस्स विरो (वैम्महस्स)	११५३

१. 'कालाधिपस्य' वे. २. 'सिरिराअस्स' वे. ३. 'ब्रह्मचारिणः' वे. ४. 'मन्मथस्य' वे.

पोट्टपट्टिहिँ (कअइन्नसीलस्स) १।८३	मगं चिअ ७।६९
पोट्ट भरन्ति (अलक्कस्स) ३।८५	मज्झह्लपत्थिअस्स (मज्झलकलसस्स) ४।९९
फग्गुच्छण (सूरस्स) ४।६९	मज्झे पअणुअ ७।८२
फलसंपत्तीअ (कुवलअस्स) ३।८२	मज्झो पिओ ६।९७
फलेइ अच्छमल्ल (कालसीहस्स) २।९	मण्णेआअणन्ता ७।४३
फुट्टन्तेण वि (राअवग्गस्स) ३।४	मण्णे आसाओ चिअ ६।९३
फुरिए वामच्छि (सत्तिहत्थिस्स) २।३७	मन्दं पि ण आणइ ६।१००
बलिणो बाआबन्धे (भोजअस्स) ५।६	मरगअसूई (पालितस्स) ४।९४
बहलतमा (अहअस्स) ४।३५	मसिणं चङ्कमन्ती ५।६३
बहुआइ णइ (अद्धराअस्स) ३।१८	महमहइ मलअवाओ ५।९७
बहुपुप्फभरोणा (माणस्स) २।३	महिलाणं चिअ ६।८६
बहुवल्लहस्स (अल[अ]स्स) १।७२	महिलासहस्स (हालस्स) २।८२
बहुविहविलासरसिए ५।७७	महिसक्खन्धवि ६।६०
बहुसो वि (सुरहिअसेस्स) २।९८	महुमच्छिआइ ७।३४
बालअ तुमाइ दिणं (तुल्लअस्स) ५।१९	महुमासमारुआ (सालिअस्स) २।२८
बालअ तुमाहि (हालस्स) ३।१५	मा कुण पडिअक्ख (माअङ्गस्स) २।५२
बालअ दे वच्च लहुं ६।८७	मा जूर दिआ (अल्लस्स) ४।५४
भग्गपिअसंगमं ५।९१	माणदुमपरुस ४।४४
भञ्जन्तस्म वि (हालस्म) २।६७	माणम्मत्ताइ मए ६।२२
भण को ण (महोहिअस्स) ४।१००	माणोसहं व (वाहवस्स) ३।७०
भण्डन्तीअ (अत्थस्स?) ४।७९	मामि सरसक्खराणं ५।५०
भमइ पलित्तइ जुरइ ५।५४	मामि हिअअ (वोलएवस्स?) ३।४६
भम धम्मिअ (... ..) २।७५	मारेसि कं ण मुद्धे ६।४
भरणमिअणील ७।६०	मालइकुमुमाई ५।२६
भरिउच्चरन्त (विसैसरसीहस्स) ४।७७	मालारीए वेल्लहल ६।९८
भरिमो से गहिआहर १।७८	मालारी ललिउ ६।९६
भरिमो से सअण (उच्छेउस्स) ४।६८	मा वच्च पुःफ (णन्दणस्स) ४।५५
भिच्छाअरो (मत्तिराअस्स) २।६२	मा वच्चह वीसम्भ ७।८६
भुज्जमु जं साहीणं (त्तिलोअणस्स) ४।१६	मासपसूअ (कइराअस्स) ३।५९
भोइणि दिण्ण पहेण ७।३	मुद्धे अपत्तिअन्ती ७।७८
मअणग्गिणो व्व ६।७२	मुहपुण्डरीअछाआइ ७।२४
	मुहपेच्छओ पई ५।९८

सुहमारुण	(पोट्टिसैस्स) ११८९	वज्रपडणा	(कण्णस्स) ११५४
सुहविज्जवि	(वज्जएवस्स) ४१३३	वणदवमसि	(हालस्स) २११७
मेहमहिमस्स	६१८४	वण्णअघअलिप्पमुहिं	६१९९
रइकेलिहिअणि	५१५५	वण्णक्कमरहिअस्स	७११२
रइविरमअज्जिआओ	५१५९	वण्णन्तीहिं तुह (सङ्करसत्तिस्स)	४१५०
रक्खेइ पुत्तअ	७१२१	वण्णवसिए विअत्थसि	५१७८
रणाउ तण	(अवणाअरस्स) ३१८७	वन्दीअ णिहअ	(हालस्स) २११८
रत्थापइण्ण	(हालस्स) २१४०	वसइ जहिं	(कित्तिराअस्स) २१३५
रन्धणक्कम्मणि	(भीमसामिणो) १११४	वसणम्मि	(प्रणालस्स) ४१८०
रमिऊण पअं	(मकरन्दस्स) ११९८	वाआइ किं भणिज्जउ	६१७१
रसिअजण	(हालस्स) १११०१	वाउद्धअसिचअ	६१७
रसिअजण	(हालस्स) २११०१	वाउलिआपरि	७१२६
रसिअजण	(हालस्स) ३११०१	वाउवेळ्ळिअसाउलि	७१५
रसिअजण	५११०१	वाएरिएण	(पालितस्स) २१७६
रसिअजण	६११०१	वावारविसंवाअ	७११६
रसिअ विअठ्ठ	(बह्मआरिणो) ५१५	वासारत्ते उण्णअ	५१३४
राअविरुद्धं	(बहुळस्स) ४१९६	वाहरउ मं	(कुंसुमराअस्स) २१३१
रन्दारविन्दमन्दिर	६१७४	वाहिता पडिवअण	(रोएवस्स) ५११६
रूअ अच्छीसु	(बह्मगतिणो) २१३२	वाहिव्व वेज्ज	(वामएवस्स) ४१६३
रूअ सिठ्ठ विअ	६१७३	वाहौहभरिअ	६११८
रेहइ गलन्तकेस	५१४६	विक्किणइ माह	(हालस्स) ३१३८
रेहन्ति कुमुअदल	६१६१	विज्जाविज्जइ	(अणुराअस्स) ५१७
रोवन्ति व्व अरण्णे	५१९४	विञ्जासहणालावं	७१३१
लङ्कालआणं	(अणुराअस्स) ४१११	विण्णाणगुण	(सवरसत्तिस्स?) ३१६७
लज्जा चत्ता सीलं	६१२४	विरहकरवत्त	(साहिळ्ळस्स) २१५३
लहुअन्ति	(गोविन्दसामिस्स) ३१५५	विरहाणलो	(अमिअस्स) ११४३
लुम्बीओ अङ्गण	(वत्सस्स) ४१२२	विरहेण मन्दरेण	५१७५
लोओ जूरइ जूरउ	६१२९	विरहे विसं व	(हालस्स) ३१३५
वअणे वअणम्मि	(असोअस्स) ४१५६	विवरीअसुरअलेहल	७१५४
वइविवर	(उद्धवस्स) ३१५७	विसमद्विअपिक्के	६१९५
वक्कं को पुलइ	(मेहणाअस्स) २१६४	वीसत्थहसिअपरि	७१६
वङ्कच्छिपेच्छि	(वप्पसामिणो) २१७४	वेविरसिण्ण	(अन्धस्स) ३१४४

वेसोसि जीव	६११०	सहि ईरिसि-	(अँलअस्स) १११०
वोडसुणओ विअण्णो	६१४९	सहि दुम्मेन्ति	(असुलद्धीए?) २१७७
वोलीणालक्खिअ (पवरराअस्स)	४१४०	सहि साहसु सब्भा	५१५३
संवाहणसुहरस	५१६४	सा आम सुहअ	६१११
सँअणे चिन्ता	२१३३	सा तुइ सहत्थ	२१९४
सकअग्गहरह	६१५०	सा तुज्झ वल्लहा	(उँज्जअस्स) २१२६
संकेल्लिओ व्व (हालस्स)	७१९४	सा तुह कएण	(दुव्विअद्धस्स) ३१६२
सच्चं कलहे कलहे	६१२१	सामाइ गरुअ	५१३९
सच्चं जाणइ (दुग्गसामिणो)	१११२	सामाइ सामलि	(.....) २१८०
सच्चं भणामि बालअ (देवराअस्स)	३१३९	सालोए विवअ	(हालस्स) २१३०
सच्चं भणामि मरणे (विअद्धस्स)	३१३९	साहीणपिअअमो	६११५
सच्चं साहसु	७१८८	साहीणे वि पिअ	(रँविराअस्स) ११३९
संजीवणोसह (विहलस्स)	४१३६	सिक्करिअमणिअ	(नन्दिउद्धस्स) ४१९२
संझागहिअजलज्जलि	७११००	सिहिपिच्छल्लिअ	(वैसँरस्स) ११५२
संझाराओत्थइओ	६१६९	सिहिपेहुणावअंसा	(पोटिसस्स) २१७३
संझासमए जलपू	५१४८	सुअणपउरम्मि	(देवराअस्स) २१३८
सणिअं सणिअं	५१५८	सुअणु वअणं	(णीलस्स) ३१६९
सत्त सताइ (हालस्स)	११३	सुअणो जं देस	(हँरकुन्तस्स) ११९४
सन्तमसन्तं दुक्खं	६११२	सुअणो ण कुप्पइ	(अज्जुणस्स) ३१५०
सब्भावणेह (हँलस्स)	११४१	सुक्खन्तवहलकद्धम	५११४
सब्भाव पुच्छन्ती (सअस्स)	४१५७	सुन्दरजुआणजण	५१९२
समविसमणिव्वि	५१७३	सुप्पउ तइओ वि	(तिरिसत्तिस्स) ५११२
समसोक्खदुक्ख (वद्धरद्धस्स?)	२१४२	सुप्पं डड्डं चणआ	६१५७
सरए महद्धदाणं (विग्गहराअस्स)	२१८६	सुइउच्छअ जणं	(सग्गवम्मस्स) ११५०
सरए सरम्मि	७१२२	सुहपुच्छिआइ	(तिलोअणस्स) ४११७
सरसा वि सूसइ	६१३३	सूइज्जइ हेम	(अण्हअस्स) ४१२९
सव्वत्थदिसा (कमलस्स)	२११५	सूईवेहे सुसलं	६११
सव्वस्सम्मि वि दद्धे (भेच्छलस्स)	३१२९	सूरच्छलेण	(विग्गहराअस्स) ४१३२
सव्वाअरेण मग्गह	७१५०	सेअच्छलेण	(हालस्स) ३१७८
सहइ सहइ ति (कुसुमाउहस्स)	११५६	सेडल्लिअसव्वङ्गी	५१४०
सहिआहिँ (वलाइच्चस्स)	२१४५	सो अत्थो जो	(हालस्स) ३१५१

१. 'ब्रह्मगतेः' वे. २. 'नाधायाः' वे. ३. 'अनीकस्य' वे. ४. 'उजयस्य' वे.
 ५. 'कविराजस्य' वे. ६. 'वेशारस्य' वे. ७. 'हारकुण्ठस्य' वे.

सो को वि गुणाइ	६१९१	हासाविओ जणो	(अणुराअस्स)	२१२३
सो णाम सभरिज्जइ (वाप्पइराअस्स)	११९५	हिअअं हिअए		५१८५
सो तुज्झ कए (ईसाणस्स)	११८४	हिअअ च्चेअ	(विकिरस्स)	३१९०
हंसेहिँ व तुह	५१७१	हिअअट्ठिअस्स	(सच्चसेणस्स)	३१९८
हत्यप्फंसेण जरग्गवी	५१६२	हिअअण्णएहिँ	(मैण्डहिवस्स)	११६१
हत्थाहत्थि अहमह	६१८०	हिअअम्मि वससि		६१८
हत्थेसु अ (पालितस्स)	४१७	हिअआहिन्तो पसरन्ति		४१५१
हरिहिइ पिअ (वड्ढरङ्कस्स)	२१४३	हेमन्तिआसु	(कॅन्तेसरस्स)	११६६
हल्लफलहाण (कैटिलस्स)	११७९	हेलाकरग्गअट्ठिअ	(पोट्टिसस्स)	५१३
हसिअं अदिट्टदन्तं	६१२५	होन्तपहिअस्स	(सिहस्स)	११४७
हसिअं सहत्थ (अणुलच्छीए)	३१६३	होन्ती वि णिप्फल	(कुन्दपुत्तस्स)	२१३६
हसिएहिँ उवालम्भा	६११३	हाणहलिद्दा	(मअरन्दस्स)	११८०

सातवाहनः ।

दीपकार्णिसूनुः सातवाहनो नाम कश्चन विद्वान्महीपतिः प्रतिष्ठानपुरे बभूव, यस्सभां बृहत्कथाप्रणेतृगुणाढ्य-कालापव्याकरणकर्तृशर्ववर्मप्रभृतयो भूयासो विद्वांसो मण्डयां-चक्रुरिति कथासरित्सागरषष्ठतरङ्गस्थितकथातः प्रतीयते. 'सोऽहं दरिद्रो वित्तार्थी प्रयातो दक्षिणापथम् । प्राप्तः पुरं प्रतिष्ठानं नरसिंहस्य भूपते. ॥' (३८१०८) इत्या-दिकथासरित्सागरस्थश्लोकेभ्य एव दक्षिणापथे प्रतिष्ठानपुरमस्तीत्यप्यवगम्यते. तच्चाधुना 'पैठण'नाम्ना प्रसिद्धमस्ति. 'कर्तर्या कुन्तलः शातकर्णः शातवाहनो महादेवी मलय-वती [जघान]' इति वात्स्यायनप्रणीतकामसूत्रस्य द्वादशाध्यायोपान्ते समुपलभ्यते. डॉक्टरपीटर्सनेन बुन्दीनगराधीशपुस्तकालयादानीते गाथासप्तशतीपुस्तके 'राएण विरइआए कुन्तलजणवअइणेण हालेण । सत्तसई अ समत्त सत्तममज्झासअं एअम् ॥ इति सप्तमं शतकम् । इति श्रीमत्कुन्तलजनपदेश्वर-प्रतिष्ठानपत्तनाधीश-शतकर्णोप-नामक-द्वीपि(दीप)कर्णात्मज-मलयवतीप्राणप्रिय-कालापप्रवर्तकशर्ववर्मधीसख-मलय-वत्युपदेशपण्डितीभूत-त्यक्तभाषात्रयस्वीकृतपैशाचिकपण्डितराजगुणाढ्यनिर्मितभस्मीभ-वद्बृहत्कथावशिष्टसप्तमांशावलोकनप्राकृतादिवाक्पञ्चक (१)प्रीत-कविवत्सल-हालाद्युपना-मक-श्रीसातवाहननरेन्द्रनिर्मिता विविधान्योक्तिमयप्राकृतगीर्णुम्फिता शुचिरसप्रधाना काव्योत्तमा सप्तशत्यवसानमगात् ॥' एवं समाप्तिश्च वर्तते. एतद्विलोकनेन वात्स्यायन-स्मृतः कथासरित्सागरवर्णितश्च सातवाहन एक एव. तेनैवेयं गाथासप्तशती प्राचीन-ग्रन्थेभ्यः संकलिता. स च ख्रिस्ताब्दस्य प्रथमशतक आसीदित्याधुनिकाना विद्व-राणा निश्चयः. युक्त चैतत्. यतः शकप्रवर्तकः शालिवाहन एव सातवाहन इति निर्वि-

१. राजशेखरसूरिप्रणीते प्रबन्धकोषे सातवाहनप्रबन्धे 'अधुना तु दक्षिणदेशस्थितं प्रतिष्ठानपुरं क्षुल्लकग्रामतुल्यं वर्तते ।' इत्यस्ति. २. डॉक्टरपीटर्सनस्य तृतीये पोर्टा-ख्यपुस्तके ३.४९ पृष्ठे द्रष्टव्यम्. ३. 'कामगिरि समारभ्य द्वारकान्तं महेश्वरि । श्रीकु-न्तलाभिधो देशो हूणदेशं शृणु प्रिये ॥' इति शक्तिसंगमतन्त्रम्. तस्मिन्समये च गुर्जर-देशेऽपि सातवाहनस्यैव प्रभुत्वमासीत्, यतस्तेन संतुष्टेन स्वसचिवाय शर्ववर्मणे भरुकच्छ- (भरोच)देशप्रभुत्वं दत्तमिति 'राजाहर्जनचिचयैरथ शर्ववर्मा तेनार्चितो गुरुरिति प्रण-तेन राज्ञा । स्वामी कृतश्च विषये भरुकच्छनाम्नि कूलोपकण्ठविनिवेशिनि नर्मदायाः ॥' अस्मात्कथासरित्सागरषष्ठतरङ्गसमाप्तिस्थश्लोकाज्जायते. ४. अनन्तराज-कलशदेव-हर्षदे-वादयः कश्मीरमहीपाला अपि सातवाहनकुलोत्पन्ना आसन्निति कह्लणराजतरङ्गिणीतः कथासरित्सागरसमाप्तिस्थितप्रशस्तितश्च प्रतीयते. सोऽपि सातवाहनः कदाचिदय-मेव स्यात्.

व. देव प्रथमशतके तस्य स्थितिः. अयं गाथासंग्रहकर्ता सातवाहनोऽयैः प्रलम्बविभिर-
 प्यभिभूतः यथा—‘अविनाशिनमप्राप्त्यमकरोत्सातवाहनः । विशुद्धजातिभिः कोप रत्नै-
 रिव नुभाषितं ॥’ इति हर्षचरितारम्भे बाणः. कोपश्चायमेव गाथासंग्रह रूपो बाणस्य
 विवक्षितः. ‘जगत्प्रां प्रथिता गाथा सातवाहनभूभुजा । व्यधुर्धृतेस्तु विस्तारमहो चित्र-
 परम्परा ॥’ अयं श्लोकः केषुचित्सूक्तिमुक्तावलीपुस्तकेषु राजशेखरनाम्ना समुद्धृतो
 दृश्यते. ‘सच्च भण गोदावरि पुन्वसमुद्देण साहियासन्ती । सालाहणकुलसरिस जइ ते
 कूले कूल अत्थि ॥ उत्तरओ हिमवन्तो दाहिणओ सालवाहणो राआ । समभारभर-
 कन्ना तेण न पल्लथए पुहवी ॥’ एतद्गाथाद्वयं राजशेखरसूरिप्रणीते प्रबन्धकोषे सात-
 वाहनप्रबन्धे समुपलभ्यते.

शतानन्दसूनुमहाकविश्रीमदभिनन्दप्रणीतरामचरिताख्यमहाकाव्यस्य सप्तमसर्गा-
 न्ते पञ्चदशसर्गान्ते च ‘नमः श्रीहारवर्षाय येन हालादनन्तरम् । स्वकोषः कविकोषा-
 णामाविर्भावाय सन्तः ॥’ अयं श्लोकः, द्वात्रिंशत्सर्गसमाप्तौ च ‘हालेनोत्तमपूजया क-
 विगृपः श्रीपालितो लालितः ख्याति कामपि कालिदासकवयो नीताः शकारातिना ।
 श्रुष्टो वित्तार गद्यकवये बाणाय वाणीफलं सद्यः सत्क्रिययाभिनन्दमपि च श्रीहारव-
 र्षेऽग्रहीत ॥’ अयं श्लोकः समुपलभ्यते. एतेन श्रीपालितकविनैव धनलिप्याया स्वप्र-
 भोर्हलस्य नाम्ना च गाथासप्तशतकग्रन्थः संगृहीतः स्यादित्यप्यनुमीयते. सातवाहनस्यैव
 हलः, शाल, मालवाहनः, एते पर्यायाः सन्तीति हैमकोषादिषु सुव्यक्तमेव.

१. प्रबन्धकोषे तु ‘महावीरस्वामिनि मोक्षं गते ४७० वर्षानन्तरं विक्रमादित्यः ।
 तत्समकालीन एवायं सातवाहनः । कालिकाचार्यसमकालीनोऽपि कश्चन सातवाहनः,
 सोऽस्मादर्वाचीनः ।’ इत्यस्ति. २. ‘शालो हाले मत्स्यभेदे’ इति, ‘हालः सातवाहनपा-
 थिवे’ इति च हैमानेकार्थः. “शलति शालः । श्यति वा । श्यामाश्या—’ इति लः ।
 हालः सातवाहननृपः । तत्र यथा—‘जज्ञे शालमहीपालः प्रतिष्ठानपुरे पुरा ।’ इति,
 ‘यथा—दिव गते हालवसुधराधिपे ।’ इति च तट्टिका अनेकार्थकैरवाकरकौमुदी.
 ‘हालः स्यात्सातवाहनः’ इति हैमनाममाला. ‘हलत्यरातिहृदय हालः । ज्वलादित्वात्
 णः । सातं दत्तमुखं वाहनमस्य सातवाहनः । सालवाहनोऽपि ।’ इति तट्टिका अभिघा-
 नचिन्तामणिः. ‘सालाहणम्मि हालो’ इति देशीनाममाला. ‘हालः सातवाहन.’ इति
 तट्टिका. ‘शालो हालनृपेऽपि च’ इति त्रिकाण्डशेषानेकार्थः. कथासरित्सागरे तु सा-
 तेन यस्माद्दूडोऽभूत्सात्तं सातवाहनम् । नाम्ना चकार कालेन राज्ये चैनं न्यवेशयत् ॥’
 इति सातवाहनपदस्य निरुक्तिरुक्तास्ति. सातो नाम कश्चन यक्षः कुबेरशापेन सिंहतां
 प्राप्तः. तेनायं स्वपृष्ठेऽधिरोपित इति कथापि तत्रैवास्ति. वात्स्यायनीयकामसूत्रे तु
 ‘सातवाहन’ इति तालव्यादिः समुपलभ्यते. वायु-मात्स्य-विष्णु-पुराणेषु भागवते च
 हालमहीपतेर्नाम समुपलभ्यते इति विद्वद्वरभाण्डारकरोपाह्व-रामकृष्णशर्मभिः प्रणीते

संग्रहरूपेऽस्मिन्ग्रन्थे काश्चन गाथा हालप्रणीता अपि सन्ति. यतः क्वचित्पुस्तके चतुर्थगाथामारभ्य द्वादशगाथापर्यन्तं प्रतिगाथाग्रे तत्तद्गाथाकर्तृणां 'हालस्स (हालस्य), व्रोडिसस्स, चुल्लोहस्स, मजरन्दसेणस्स (मकरन्दसेनस्य), अमरराअस्स (अमरराजस्य), कुमारिलस्स (कुमारिलस्य), सिरिराअस्स (श्रीराजस्य), भीमस्सामिणो (भीमस्वामिनः), हालस्स, एतानि षष्ट्यन्तानि नामानि समुपलभ्यन्ते. अग्रे च लेखकप्रमादेन गलितानीति भाति. एतद्ग्रन्थान्तर्गता गाथा भवन्यालोके, तल्लोचने, सरस्वतीकण्ठाभरणे, काव्यप्रकाशे चोदाहृताः सन्ति. कुलबालदेवनिर्मिता गङ्गाधरभट्टनिर्मिता चास्य टीका समुपलभ्यते, तत्र गङ्गाधरभट्टनिर्मितैव समीचीना. टीकाकर्त्रोर्देशकालौ चानिश्चितावेव.

जर्मनीदेशे टीकारहितोऽयं ग्रन्थो रोमन्लिप्या वेबरपण्डितेन मुद्रितः. स च तद्देशीयानामेवोपकारक इति गङ्गाधरभट्टप्रणीतटीकारामेतोऽस्माभिर्मुद्रयितुमारब्धः. भविष्यति चायमतिप्रबो मनोहरश्च ग्रन्थो रसिकानां हृदयावर्जक इति दृढमाशास्महे.

अस्मन्मुद्रणाधारभूतपुस्तकानि त्वेतानि—

१. प्रथमं जयपुरराजकीयसंस्कृतपाठशालाया न्यायशास्त्राध्यापकाना ओझोपनामक-ध्रीजीवनाथशर्मणा गङ्गाधरभट्टटीकासमेतं प्रायः शुद्धं 'नेत्ररामाङ्गभूशाके (१९३२), लिखितं क-सङ्गम्.

२. द्वितीयमायेतादशमेव अलवरमहाराजाश्रितश्रीभवानन्दोद्यानन्दरामचन्द्रपण्डितानां नवीनं नातिशुद्धं च ख-चिहितम्.

३. तृतीयं कुलबालदेवप्रणीतटीकारामेतमसदीयं नात्यशुद्धं ग-चिहितम्. तत्र डॉक्टरपीटरसेनेन कोटानगरादानीतस्य पुस्तकस्य प्रतिरूपकम्.

४. चतुर्थं जयपुरराजगुरुपर्वणीकरोपाङ्गनारायणभट्टानां केवलं संस्कृतच्छायामात्रं प्रायः शुद्धं नातिनवीनं च घ-चिहितम्.

एतत्पुस्तकाधारेणात्रास्माभिः शुद्धान्येव पाठान्तराणि गृहीतानि सन्ति.

दक्षिणप्राचीनेतिहासनात्रि पुस्तके २५ पृष्ठे विलोकनीयम्. शातकर्णः सातवाहनस्य विस्तरेण वर्णनं च तत्र एवावधार्यम्.

१. पुस्तकान्तरे 'कुलनायदेव' इत्यपि नाम दृष्टमस्ति.

काव्यमाला ।

हालापराख्यमहाकविश्रीसातवाहनसंकलिता गाथासप्तशती ।

श्रीगङ्गाधरभट्टप्रणीतया भावलेशप्रकाशिकाख्यया टीकया संवल्लिता ।

नत्वा दुण्डिपदाब्ज गङ्गाधरभट्टनिर्मिता टीका ।

सप्तशतभावलेशप्रकाशिका शोधयता विज्ञैः ॥

अत्र तत्रभवान्प्राकृतकविकुमुद्रकुमुदिनीनायकः शालिवाहनश्चिकीर्षितगाथाकोपस्या-
विप्रगारिगमाप्तये कृत मङ्गलं श्रोतृहितार्थमुपनिबध्नाति—

पशुवङ्गो रोसारुणपडिमासंकन्तगौरिसुहृद्वन्द्वम् ।

र्वाहिअग्धपङ्कथं विअ संझासल्लिअल्लि णमह ॥ १ ॥

[पशुपते रोषारुणप्रतिमासंकान्तगौरीसुखचन्द्रम् ।

गृहीतार्घपङ्कजमिव संध्यामल्लिलाञ्जलि नमत ॥]

पशुवङ्ग इति । मामुपेक्ष्य कथमयमन्या भ्यायतीति रोषेणारुण प्रतिमया नक्रान्त
प्राकृते पूर्वनिपातानियमात्सकान्तप्रतिमं वा यद्गौरीमुखं तदेव चन्द्रो यत्र तं पशुपतेः
संध्यामल्लिलाञ्जलि नमतेत्यन्वयः । रक्तमुखप्रतिबिम्बच्छलेन गृहीतार्घोचितरक्तपङ्कज-
मिचेत्युपेक्षा । यद्वा मानिन्याः प्रणयरोषमसहमानं नायक प्रति दूत्या उक्तिरियम्—
'अनभिज्ञोऽसि प्रमव्यवहाराणा यस्त्वं प्रियाप्रणयरोषलक्षणे हर्षस्थाने कुयसि । न पर्यसि
किं देव्याः संध्यामल्लिलाञ्जलावपि प्रणयरोषम्' इति ॥

गाथाकोपविरचनप्रयोजनमाह—

अमिअं पाउअकव्वं पट्टिउं सोउं अ जे ण आणन्ति ।

कामस्स तत्ततन्ति कुणन्ति ते कँहँ ण लज्जन्ति ॥ २ ॥

१. 'पङ्क आम्भेअ' इति ख-ग-पुस्तकयोः पाठः. २. 'अमअ' इति ख-ग-पाठः. ३. 'कँहँ'
इत्यस्मिन्पदे 'हँ' इति गुर्वक्षरस्यापि छन्दोभङ्गभयाल्लक्षरवदुच्चारणं विधेयम्, इत्यत्र प्रमाणं
प्राकृतपिङ्गले यथा—'जइ दीहो वि अ वण्णो लहु जीहा पढइ होइ सो वि लहु । वण्णो

[अमृतं प्राकृतकाव्यं पठितुं श्रोतुं च ये न जानन्ति ।
कामस्य तत्त्वचिन्तां कुर्वन्ति ते कथं न लज्जन्ते ॥]

अमिअमिति । शृङ्गाररसनिर्भरत्वेनाह्लादकत्वादमृतमिवामृतं प्राकृतकाव्यमवसरे पठितुं परपठित च श्रोतुं बोद्धुं ये न जानन्ति, अथ च कामस्य तत्त्वचिन्तां तन्त्रवार्ता वा कुर्वन्ति ते कथं न लज्जन्त इत्यर्थः । कामशास्त्रव्युत्पत्तिविधुरं प्रति विदग्धनायिकोक्तिर्वा ॥

प्रेक्षावत्प्रवृत्तये स्वप्नन्थस्य संक्षिप्तता साररूपतां चाह—

सत्त सताइं कइवच्छलेण कोडीअ मज्झआरम्मि ।

हालेण विरइआइं सालंकाराणं गाहाणम् ॥ ३ ॥

[सप्त शतानि कविवत्सलेन कोटेर्मध्ये ।

हालेन विरचितानि सालंकाराणां गाथानाम् ॥]

सत्तेति । मज्झआरो मध्यः । कविगाथासंग्रहेण तत्कीर्तिस्थापनात्कविवत्सलेन हालेन शालिवाहनेन सालंकाराणां गाथानां कोटेर्मध्ये सप्त शतानि विरचितानि । संगृहीतानीत्यर्थः । गाथालक्षणं तु—‘पठमं वारह मत्ता बीए अट्टारएहि संजुत्ता । जह पठमं ~~वद तीअं दहपञ्चविहमिअम् गाथा ॥~~’ इति पिङ्गलोक्तं बोध्यम् ॥

‘कैलोलिनीकाननकदरादौ दुःखाश्रये ~~चार्पितवित्तवृत्तिः~~ मृदुकमारम्भमभिन्नधैर्यैः
श्लथोऽपि दीर्घं रमते रतेषु ॥’ इत्यादि कामशास्त्रादीर्घरमणार्थं नायकस्यान्यचित्तां कुर्वती काचिदाह—

उअ णिच्चलणिप्पन्दा भिसिणीपत्तम्मि रेहइ वलाआ ।

णिम्मलमरगअभाअणपैरिट्ठिदा सङ्गसुत्ति व्व ॥ ४ ॥

वि तुरिअपडिओ दोतिण्णि वि एक जाणेहु ॥’ इति ‘यदि दीर्घमपि वर्णं लघुकृत्वा जिह्वा पठति तदा सोऽपि वर्णो लघुरेव भवति । द्वौ वर्णौ त्रयो वा वर्णास्त्वरितपठितास्तानेक एव वर्ण इति जानीत ।’ इत्येतद्वीका. एवं ‘इ’ ‘हिं’ इति वर्णद्वयम्, ‘ए’ ‘ऊ’ इति वर्णद्वयं शुद्धम्, जवर्ण(अन्यवर्ण)सिलितं वा विकल्पेन लघु भवति, तथा रकारयुक्ते हकारयुक्ते वा व्यञ्जने परे पूर्वाक्षरं विकल्पेन लघु भवति, इत्यादि नियमाः सोदाहरणाः प्राकृतपिङ्गले द्रष्टव्याः. अस्माभिरप्यत्र यस्य गुर्वक्षरस्य लघ्वक्षरवदुच्चारणं भवति तदुपरि एतादृशमर्धचन्द्राकारं चिह्नं स्थापितमस्ति. १. ‘कोट्यामध्ये’ इति घ-पुस्तके, ‘कोटिमध्यात्’ इति ग-पुस्तके पाठः. २. ‘शालिवाहनेन’ इति, ‘शालिवाहनेन’ इति च ग-घ-पुस्तकयोः पाठौ. ३. अयं श्लोकः कुक्कोकप्रणीते रतिरहस्ये (५।३) वर्तते. ४. ‘परिट्ठिआ’ इति ख-ग-पाठः.

[पश्य निश्चलनिःस्पन्दा बिसिनीपत्रे राजते बलाका ।

निर्मलमरकतभाजनपरिस्थिता शङ्खशुक्तिरिव ॥]

उअ णिच्चलेति । निश्चलोऽचलस्तद्वन्निःस्पन्दा वेगविधारणप्रयत्नवशात् । निश्चलेति पुरुषसंबोधनं वा । शङ्खघटिता शुक्तिः शङ्खशुक्तिः । तथा च यदि वेगविधारणपरोऽसि तदैनां बलाकां पश्यन्नन्यमनस्कतया चिर रमस्वेति भावः । यद्वा निःस्पन्दत्वेनाश्वस्तत्वम्, तेन च जनरहितत्वम्, तेन च संकेतस्थानमिति कयाचित्कचित्प्रति व्यज्यते । अथवा मिथ्या वदसि । न त्वमत्रागतोऽभूरिति व्यज्यते ॥

विपरीतरतप्रसङ्गे सदर्पां काचिदुद्दिश्य कश्चिदाह—

तावच्चिअ रइसमए महिलाणं विभ्रमा विराजन्ति ।

जाव ण कुवलयदलसैच्छायाइँ मँउलेन्ति णअणाइँ ॥ ५ ॥

[तावदेव रतिसमये महिलानां विभ्रमा विराजन्ते ।

यावन्न कुवलयदलसैच्छायानि मुकुलीभवन्ति नयनानि ॥]

तावेति । यद्वा सुरतावसानोपचाराद्यनभिज्ञतया रतान्तेऽपि कटाक्षमुजप्रक्षेपादिविभ्रमं कुर्वन्ती नायिका प्रति सख्याः शिक्षोक्तिरियम् । रतिसमये स्त्रीणां विभ्रमस्तावदेव विराजन्ते पुरुषाणां हृदयहारिणो भवन्ति यावत्पुरुषाणां नयनानि रतिप्राप्त्या मुकुलितानि न भवन्ति । अतस्तथाविधं नायकमुपलभ्याप्राप्त्यरतिसुखयापि प्राप्त्यरतिसुखयेव त्यक्तविभ्रमया त्वया भवितव्यमिति ॥

स्वक्रीडोपवनरोपितस्य पुष्पफलरहितस्य कुरवकतरोर्दोहदमन्वेपयन्तं नायक प्रति नायिकायाः सखी वदति—

णोहँल्लिअमप्पणो किं ण मग्गसे मग्गसे कुरवअस्स ।

एअं तुह सुहग हसइ वल्लिआणणपङ्कअं जाआ ॥ ६ ॥

[दोहँदमात्मनः किं न मृगयसे मृगयसे कुरवकस्य ।

एवं तव सुभग हसति वलिताननपङ्कज जाया ॥]

णोहल्लिअमिति । यद्वा णोहल्लिअं नवफलोद्गममित्यर्थः । मदाल्लिङ्गनेन कुरवकस्य फलोद्गमं प्रार्थयसे आत्मनः पुत्ररूपं फलं किमिति न प्रार्थयसे । अहो ते जाड्यमित्यभिप्रायः ॥

१. 'तावच्चिअ' इति क-पाठः. २. 'जावण्ण' इति ग-पाठः. ३. 'दलसछायाइँ' इति ग-पाठः. ४. 'मउलेन्ति' इति क-पाठ. ५. 'सदृशानि' इति ग-घ-पाठः. ६. 'मुकुलामन्ते' इति, 'मुकुलन्ति' इति ग-घ-पाठौ. ७. 'दोहल्लिअ' इति ग-पाठः. ८. 'एवं खु तुह' इति छन्दोभङ्गयुक्तः क-ख-पाठः. ९. 'नवदोहदमात्मनः' इति घ-पाठः. १०. 'मार्गसे मार्गसे' इति ग-पाठः. ११. 'एव खउ सुभग त्वा' इति क-ख-घ-पाठः, 'इय त्वा सुभग' इति ग-पाठः.

वमन्तसमये गमनोद्यत नायकं प्रति कान्तायाः सखी गमनाक्षेपार्थमाह—

ताविज्जन्ति असोएहिँ लडहवणिआओँ दइहविरहम्मि ।

किं सहइ को वि कस्स वि पाअपहारं पहुप्पन्तो ॥ ७ ॥

[ताप्यन्ते अशोकैर्विदेग्धवनिता दयितविरहे ।

किं सहते कोऽपि कस्यापि पादप्रहारं प्रभवन् ॥]

ताविज्जन्तीति । अशोकैरनुभूतशोकत्वात्परपीडानिर्दयैः । अन्योऽपि न सहते किं पुनरशोकः । प्रभवन्नित्यवसरप्राप्त्या समर्थो भवन् । कान्तसंनिधौ तु सामर्थ्याभावान्न ताप्यन्त इत्याशयः । तथा च वरस्त्रीचरणताडनरूप दोहद त्वयैव कारितेय मत्सखी त्वद्विरहे लब्धावसरैः सानुशयैरशोकैस्ताप्यमाना जीवितमेव जह्यादिति भावः । प्रोक्षितभर्तृकायाः कान्तं प्रति तत्सख्या लेखगाथेयमिति कश्चित् ॥

कस्याश्वित्केनचित्कामुकेन तिलवाटिका संकेतस्थानमासीत् । ततः पक्षेषु तिलेषु संकेतस्थानान्तरं जारं प्रति श्रावयन्ती श्वश्रू प्रत्याश्रयकथनव्याजेनाह—

अत्ता तह रमणिज्जं अह्मां गामस्स मण्डणीहूअम् ।

लुँअतिलवाडिसरिच्छं सिसिरेण कअं भिसिणिसण्डम् ॥ ८ ॥

[श्वश्रू तथा रमणीयमस्माकं ग्रामस्य मण्डनीभूतम् ।

लूनतिलवाटीसदृशं शिशिरेण कृतं बिसिनीषण्डम् ॥]

अत्तेति । हिमदग्धपत्रतया दण्डमात्रशेषत्वालूनतिलवाटीसदृशम् । तथा च पूर्वं पत्राद्याहरणार्थं जनानां तत्र गतागतमासीत्, तदपीदानीं नास्तीति विजनत्व तस्य देशस्य सूचितम् । 'तिलक्षेत्रपद्मसर.प्रभृतिसंकेतस्थानान्तराभावाद्बृहमेव संकेतस्थानमित्यर्थः' इति कश्चित् ॥

कस्याश्वित्केनचित्समं शालिक्षेत्रं संकेतस्थानमासीत् । ततः शालिपाके तदपगमं दृष्ट्वा रुदन्तीं तामुद्दिश्य संकेतस्थानान्तरं सूचयन्ती सखी आह—

किं रुअसि ओणअमुही धवलाअन्तेसु सालिछेत्तेसु ।

हरिआलमण्डिअमुही णडि व्व सणवाडिआ जाआ ॥ ९ ॥

[किं रोदिष्यवनतमुखी धवलायमानेषु शालिक्षेत्रेषु ।

हरितालमण्डितमुखी नटीव शणवाटिका जाता ॥]

किमिति । हरितालेन धातुविशेषेण मण्डितमुखी नटीव । शणवाटिकापक्षे—पीतकुसु-

१. 'असो इहिँ' इति ग-पाठः. २. 'मनोहरस्त्रियः' इति ग-पाठः; 'लालितवनिता' इति घ-पाठः. ३. 'पुष्पितः' इति ग-पाठः. ४. 'गाअस्स' इति ख-पाठः. ५. 'लुँअ-तिलवाडिसरिसं' इति ख-पाठः. ६. 'हे मातस्तथा' इति ग-पाठः.

मस्तवकनिकरनिविडशिखरशणतरुनिवहनिरन्तरतया हरितालमण्डितमुखीवेत्युपमा । अथ च हरीणा मर्कटाना जालेन मण्डित मुखं प्रवेशमार्गो यस्या इति निर्जनता व्यज्यते । अथवा पाकाभिमुखेषु शालिक्षेत्रेषु हर्षस्थानेष्वपि रुदितलक्षितशालिक्षेत्राभिसारा कापि कयापि परिहासशीलया एवमुपहस्यते ॥

कलहान्तरितां नायिकां कान्तानुवृत्त्यभिमुखीं कर्तुं सखी आह—

सहि ईरिसिन्विअ गई मा रुव्वसु तंसवलिअमुहअन्दम् ।

एआणं बालवालुङ्कितन्तुकुडिलाणं पेम्माणम् ॥ १० ॥

[सखि ईदृश्येव गतिर्मा रोदीस्तिर्यग्वलितमुखचन्द्रम् ।

एतेषां बालकर्कटीतन्तुकुटिलानां प्रेम्णाम् ॥]

सहीति । ईदृश्येवेति सनिहितमेवानुवर्तन्ते । वेष्टितमेव वेष्टयन्ति । मनागाकृष्यापि त्रुट्यन्ति । तद्यावदन्यत्र दृढानुबन्धो न भवति तावदेव मानं विहाय कान्तमनुवर्तस्वेति सख्यामुपदेशः । तत्कान्ते च विरहविधुरेयं मानिनी तदेनामनुनयस्वेति व्यङ्ग्योऽर्थः ॥

गृहीतमानायाः कस्याश्चिदनुनयार्थं चरणपतितस्य पत्युः पृष्ठमारुढं पुत्रं दृष्ट्वा बन्ध-
विशेषस्मरणत्तस्या हास्योद्गमो जात इति काचित्सखीमाह । यद्वा कृतकलहयोर्दपत्यो
रात्रिश्रुत्तान्तमनुसंधायागता सपत्नी सपत्न्या पृष्ट्वा तामाह—

पाअपडिअस्स पइणो पुट्टिं पुत्ते समारुहत्तम्मि ।

दढमण्णुदुण्णिआए वि हासो धरिणीए णेक्कन्तो ॥ ११ ॥

[पादपतितस्य पत्युः पृष्ठं पुत्रे समारुहति ।

दृढमन्युदूनाया अपि हासो गृहिण्या निष्कान्तः ॥]

पाएति । पत्युः स्वामिनः । न तु बल्लभस्येत्यर्थः । पुत्रे समारुहतीत्यनेन पुत्रवत्तया गलितयौवनायामप्यनुरक्त इति व्यज्यते । गृहिण्या गृहस्वामिन्याः । अस्मदादीना-
मौदासीन्यादिति भावः । दृढमन्युदूनाया इत्यनेन रोपोपशमाभावप्रतिपादनेन स्वाधीन-
भर्तृकायाः सौभाग्यगर्वात्पतिविषयेऽनादरः, पत्युश्च तादृश्यामपि ज्ञेहातिशयः प्रकटितः ॥

प्रियविश्लेषोपतप्तया कयाचित्प्रेषिता निस्सृष्टार्था दूती नायकमुत्कर्षयन्ती भङ्ग्या स्वस-
खीभरण मूचयन्ती आह—

सैच्चं जाणइ दट्टुं सरिसम्मि जणम्मि जुज्जए र्आओ ।

मरउ ण तुमं भणिस्सं मरणं वि सलाहणिज्जं से ॥ १२ ॥

१. 'तिरिअवलिअ-' इति ग-पाठः. २. 'दूणिआए' इति ख-पाठः; 'दुम्मिआइ'
इति ग-पाठः. ३. 'समारुहमाणे' इति ग-पाठः. ४. 'दृढमन्युदुर्मनस्कायाः' इति ग-
पाठः. ५. ख-ग-पुस्तकयोरस्या अग्रिमायाश्च गाथाया व्यत्ययोऽस्ति. ६. 'राध' इति
ख-ग-पाठः.

[मत्स्यं जानाति द्रष्टुं सदृशे जने युज्यते रागः ।

त्रियतां न त्वां भणिष्यामि मरणमपि श्लाघनीयं तस्याः ॥]

सञ्चमिति । यतोऽनन्यरूपश्लाघिनी त्वद्रूपमेव बहु मन्यत इत्याशयः । सदृशे जने युज्यते राग इत्यनेन रूपाभिजनादिभिरनुरूपे त्वयि तस्याः समागमौत्सुक्यं युक्तमेवेति नायिकायाः स्तुत्यनुरागाभ्यां नायकप्रोत्साहनम् । त्रियतामित्यनेन नायकस्यानभ्युगमे स्त्रीव्यपातकम्, आत्मनश्च प्रार्थनाभङ्गभीरुत्वं दर्शितम् । मरणमपीत्यादिना चानुरूपानुष्ठानात्त्वद्गतचित्ताया मरणे जन्मान्तरे त्वत्प्राप्तिसंभवो व्यज्यते ॥

वैष्णोदिमालिन्यशङ्कया गृहकृत्यपराङ्मुखीं सखीं प्रबोधयितुं काचिदाह—

घरिणीएँ महाणसकम्मलग्गमसिमैलिइएण हत्थेण ।

छित्तं मुहं हसिज्जइ चन्द्रावत्थं गअं पइणा ॥ १३ ॥

[गृहिण्या महानसकर्मलभ्रमषीमलिनितेन हस्तेन ।

स्पृष्टं मुखं हस्यते चन्द्रावस्थां गतं पत्या ॥]

घरीति । यस्य यदुचितं कर्म तच्छील्यतो वैरूप्यमप्यलंकारायैव भवति । यतो लभ्रमषीकालिमापि मुखं पत्या सपरिहासं चन्द्रेणोपमीयते । अतः कुलस्त्रीणा गृहकृत्यपराङ्मुखत्वमनुचितमिति भावः ॥

कूत्कारमारुतेनाप्यप्रज्वलत्यग्नौ कुध्यन्तीं कांचित्स्वामिलाषं प्रकाशयन्नाह—

रन्धणकम्मणिउणिए मा जूरसु रत्तपाडलसुअन्धम् ।

मुहमारुअं पिअन्तो धूमाइ सिही ण पज्जलइ ॥ १४ ॥

[रन्धनकर्मनिपुणिके मा कुंध्यस्व रक्तपाटलसुगन्धम् ।

मुखमारुतं पिबन्धूमायते शिखी न प्रज्वलति ॥]

रन्धणेति । रन्धनपरतया त्वदवलोकनकौतुकोपगतमपि मां नावलोकयसीति भावः । मा इति । तवाधरकृतेऽग्निपूजोचितस्य रक्तपाटलाकुमुमस्येव सुरभिशीतलो गन्धो यस्य तम् । मुखेति । दोषारुणत्वमुखदिदक्षयेव धूमोद्गमचाटुमाचरति । लन्मुखमारुतपानेच्छयैवायं न प्रज्वलति । ज्वलितस्य तत्प्राप्त्यसंभवादिति भावः ॥

१. 'अस्याः' इति ग-घ-पाठः. २. 'कापि मलिनत्वाशङ्कया स्वामिसमर्पितगृहकृत्यपराङ्मुखी' इति ख-पाठः. ३. 'मइलिएण' इति ख-ग-पाठः. ४. 'कोऽपि युवा कामुकधर्मेमग्नौ समाधाय स्वामिप्रायं प्रकाशयन्मारुतेनाप्रज्वलत्यग्नौ कुध्यन्तीं नायिका-माह' इति ख-पाठः. ५. 'खिद्यस्व' इति ग-पाठः.

नवोढायाः कस्याश्चिद्वृत्तनगर्भयोगिन्याः कान्तं प्रत्यनुरागातिशयं प्रतिपादयन्ती
काचिदाह—

किं किं दे पडिहासइ सहीहिँ इअ पुच्छिआएँ मुद्राए ।
पढमुग्गअदोहँणीए णवरं दइअं गआ दिट्ठी ॥ १५ ॥

[किं किं ते प्रतिभासते सखीभिरिति पृष्ठाया मुग्धायाः ।
प्रथमोद्गतदोहदिन्याः केवलं दयितं गता दृष्टिः ॥]

किमिति । प्रतिभासते रोचते । दयितेऽभिलाषमेव सूचितवतीत्यर्थः । यद्वा सपत्नीं प्रति
सासूयस्य सपत्नीजनस्योपालम्भवादोऽयम् । मुग्धाया इति मोहाद्रर्भ्यासमप्यगण-
यन्त्याः । प्रथमेति । बहुप्रसूताश्च गर्भखेदखिन्नाः सुरतायासं परिहरन्ति । इय त्वननुभू-
तप्रसूतिखेदा प्रियसंभोगं ~~र~~भिलषतीति भावः ॥

प्रोषितपतिका काचिद्विरहदाहदुःसहत्व व्यञ्जयन्ती कान्तसमागमविषये सखीजनं
त्वरयितुं चन्द्राम्यर्थनच्छलेनाह—

अमअमअ गअणसेहर रअणीमुहतिलअ चन्द दे छिवसु ।
छित्तो जेहिँ पिअअमो ममं पि तेहिँ विअ करेहिँ ॥ १६ ॥

[अमृतमय गगनशेखर रजनीमुखतिलक चन्द्र हे स्पृश ।
स्पृष्टो यैः प्रियतमो मामपि तैरेव करैः ॥]

अमणिति । देशब्दः सानुनयसंबोधने । अमृतमयेत्यनेन जगज्जीवनहेतुत्वम्, गगनशे-
खरेत्यनेनाखिललोकलोचनानन्दकारित्वम्, रजनीमुखतिलकेत्यनेनावलाजनपक्षपातित्वम्,
चन्द्रेत्यनेनाह्लादकत्वं व्यज्यते । एवविश्रोऽपि मा निर्दयं दहसि, मत्कान्तं पुनरमृतशिशिरैः
करैः स्पृशसीत्यतोऽद्यापि नायातीति भावः ॥

सखि मुञ्च श्वेदम् । अद्य श्रो वा तत्रागमिष्यति कान्तः । किं त्वागतोऽप्यसौ त्वया
सप्रणयरोपमुपालम्भैः श्वेदयितव्य इति सखीभिरुक्ता प्रोषितभर्तृका आह—

गैहइ सो वि पउरथो अहं अ कुप्पेज्ज सो वि अणुणेज्ज ।
इअ कस्स वि फलइ मणोरहाणँ माला पिअअमम्मि ॥ १७ ॥

[ऐष्यति सोऽपि प्रोषितो अहं च कुपिष्यामि सोऽप्यनुनेष्यति ।
इति कस्या अपि फलति मनोरथानां माला प्रियतमे ॥]

१. 'दोहलिणीए' इति ग-पाठः; 'दोहलिणी' इति ख-पाठः. २. 'एहिइ' इति
ख-ग-पाठः. ३. 'अणुणिज्ज' इति ग-पाठः. ४. 'आगमिष्यति' इति ग-पाठः.
५. 'अथाहं' इति ग-पाठः.

गृहईति । कान्तस्य निरनुकोशत्वात्, आत्मनश्च कान्तावधीरणभीष्टत्वात्, इयच्चिरं प्रेमानुबन्धस्यासंभाव्यमानत्वाच्च सर्वमेतन्मनोरथमात्रमिलाशयेनाह—इतीति । कस्यापि धन्यजनुष एतत्सपद्यते । मम तु मन्दभाग्यायाः कुत एतदिति भावः ॥

कथमधुना दुर्बलोऽसीति मित्रेण पृष्टस्य कान्तस्य बहुमहिलाकृष्टिं कापि सेष्योपालम्भमन्यापदेशेनाह—

दुग्गअकुटुम्बअट्टी कँ णु मए धोइएण सोढव्वा ।

दसिओसरन्तसलिलेण उअह रुण्णं व पडएण ॥ १८ ॥

[दुर्गतकुटुम्बाकृष्टिः कथं नु मया धौतेन सोढव्या ।

दशापसरत्सलिलेन पश्यत रुदितमिव पटकेन ॥]

दुग्गएति । सोढव्येत्यनन्तरं इति शङ्कया इति शेषः । तथा चैवंविधशङ्कामात्रेण खेदाद्दशागलज्जलच्छलेनाचेतनोऽपि पटो रोदिति, अयं तु विदग्धो महिलाछन्दानुवृत्त्या कथं न खिन्नः स्यादिति भावः । यद्वा कापि वेश्या धनदानेन विना बहूनां ग्रामप्रधानानामाकर्षणादुद्वेगं कुट्टनीं प्रति सूचयन्तीत्यं कथयति ॥

कोऽप्यात्मनः पराधीनवृत्तित्वमनुरागातिशयं च नायिकां प्रति ख्यापयन्नायिकागृहगामिवत्समन्यापदेशेनाह—

कोसँम्बकिसलअवण्णअ तण्णअ उण्णामिएहिँ कण्णेहिँ ।

हिअअट्टिअँ घरँ वच्चमाण धवलत्तणं पाव ॥ १९ ॥

[कोशाप्रकिसलयवर्णं तर्णक उन्नामिताभ्यां कर्णाभ्याम् ।

हृदयस्थितं गृहं व्रजन्धवलत्वं प्राप्नुहि ॥]

कोसम्बेति । धवलत्वं श्रेष्ठता षण्डत्वं वा । स्वेच्छाचारितामिति यावत् । अहमिव पराधीनवृत्तिर्मा भूरिति भावः । अथवा यां वृद्धा कामयसे तस्यास्त्वं तर्णक इवेति कयाचित्कंचित्प्रत्युच्यते ॥

कापि भावजिज्ञासार्थं कृतकनिद्रानिमीलिताक्षं कपोलचुम्बनपुलकिताङ्गत्वेन विदितमिथ्यास्वापं कान्तमाह—

अलिअपसुत्तअविणिमीलिअच्छ दे सुहअ मज्झ ओआसम् ।

गण्डपरिउम्बणापुलइअङ्ग ण पुँणो चिराइस्सम् ॥ २० ॥

[अलीकप्रसुप्तकविनिमीलिताक्ष हेँ सुभग ममावकाशम् ।

गण्डपरिचुम्बनापुलकिताङ्ग न पुनश्चिरैरिष्यामि ॥]

१. 'कुटुम्बकृष्टिः' इति घ-पाठः. २. 'हृदयेप्सितं' इति ग-घ-पाठः. ३. 'उणो' इति ग-पाठः. ४. 'ददस्व सुभग ममावकाशम्' इति ग-पाठः. ५. 'चिरयिष्ये' इति ग-घ-पाठः.

अलिएति । हे सुभग, ममावकाशं देहीति शेषः । 'देसु धअ मज्झ' इति क्वचित्पाठः । अत्र हे धव, ममावकाशं देहीति योज्यम् । केचित्तु—'देसु हअमज्झ इति पदच्छेदः । हतमध्य अङ्गविन्यासरुद्धमध्य देहि अवकाशम् । अर्थान्मम ।' इत्याहुः । गण्डेति । एतेन नायिकाया इङ्कितज्ञानमन्योन्यानुरागश्च यूनोर्दर्शितः ॥

वेश्याहानार्थमागते नायकमित्रे गृहीतान्यभुजंगमाच्छादयन्ती वेश्यामाता दुहितरमाह—

असमत्तमण्डणाविअ वच्च घरं से सकोउहल्लस्स ।

वोलाविअहलहलअस्स पुत्ति चित्ते ण लग्गिहिसि ॥ २१ ॥

[असमाप्तमण्डनैव व्रज गृहं तैस्य सकौतूहलस्य ।

व्यतिक्रान्तौत्सुक्यस्य पुत्रि चित्ते न लगिष्यसि ॥]

असमत्तेति । मण्डनकरणेनास्या विलम्बो नान्यप्रसङ्गेणेति भावः ॥

कश्चिन्नागरिकः कामिनीजनचित्तहरणार्थं रजस्वलामुखचुम्बनेनात्मनः कामुकवार्तिशयं प्रकटयन्नाह—

आअरपणामिओट्टुं अवडिअणासं अँसंहअणिडालम् ।

वण्णधिअँतुँप्पमुहिँए तीए परिउम्बणं भरिमो ॥ २२ ॥

[आदरप्रणामितौष्ठमघटितनासमसंहर्तललाटम् ।

वर्णघृतलिप्तमुख्यास्तस्याः परिचुम्बनं स्मरामः ॥]

आअरेति । हरिद्रादिवर्णप्रधानं घृतं वर्णघृतम् । देशविशेषे रजस्वलामुखं चिह्नार्थं वर्णघृतेन लिप्यत इत्याचारः । तस्या या मया त्वयि प्राक्कथितसौन्दर्या । परि सर्वतः कपोलादा । यद्वा प्रोषितः कश्चित्प्रियायाः स्पृष्टक नामानुरागातिशयसूचकमालिङ्गनं स्मरन्नात्मानं विनोदयतीति गाथार्थः ॥

जनसवाधेऽपि प्रियं प्रत्युद्भटभावा सखी शिक्षयितुं कापि प्रच्छन्नकामुकोक्तं कुलजायां गाम्भीर्यगुणमाह—

अण्णासआँ देन्ती तह सुरए हरिसविअसिअकवोला ।

गोसे वि ओणअमुही अँह सेत्ति पिआं ण सँहधिमो ॥ २३ ॥

१. 'मण्डणं विअ' इति ग-पाठः. २. 'अस्य' इति ग-पाठः. ३. 'व्यतिक्रान्तरणरणकस्य' इति ग-पाठः; 'व्यतिक्रान्तहलहलकस्य' इति घ-पाठः. 'हलहलकं कामौत्सुक्यमिति देशी' इति कुलबालदेव. ४. 'असंघअल्लिाडम्' इति ग-पाठः. ५. 'तु-पशब्दो देशी लिप्ते वर्तते' इति कुलबालदेव. ६. 'निटिलम्' इति घ-पाठः. ७. 'स्मरामि' इति ग-पाठः. ८. 'सहसेत्ति पिआ' इति ग-पाठः; 'अहसेत्ति पिआ' इति क्वचित्पाठः. अह इयमर्थे । इयं सा प्रियेति वदर्थः. ९. 'सहहिमो' इति ग-पाठः.

[आज्ञाशतानि ददती तथा सुरते हर्षविकसितकपोला ।
 प्रातरप्यवनतमुखी ईयं सेति प्रियां न श्रद्धमः ॥]

अण्णोति । हर्षविकसितकपोला सती । तथा आज्ञाशतानि गृहाणाधरं मुञ्च चिकुरमित्यादीनि ददती । गोसे प्रातः । अह इयं सेयमिति । प्रथमैव न भवतीत्यर्थः । लोकसमक्षं गूढाकारतैव नायकप्रीतिहेतुः, न तु धार्ष्ट्यमिति भावः ॥

काचित्पत्युरन्यस्यामनुरागमात्मनि चाननुराग कुलीनतानमस्कारच्छलेनाह—

पिअविरहो अप्पिअदंसणं अ गरुआइँ दो वि दुक्खाइँ ।
 जीएँ तुमं कैरिज्जसि तीएँ णमो आहिजाईए ॥ २४ ॥

[प्रियविरहोऽप्रियदर्शनं च गुरुके द्वे अपि दुःखे ।

यया त्वं कार्यसे तस्यै नम आभिजात्यै ॥]

पिएति । करोतिरत्रानुभवार्थकः । अतएव देवदत्तो दुःखमनुभवतीत्यर्थं दुःखं करोतीति प्रयोगः । आभिजात्यै कुलीनतायै । ऋतुस्नानादौ बन्धुजनाभ्यर्थना धर्म वानुरन्धानः कुलीनतया मामुपागतोऽसि, न तु स्नेहेनेत्याशयः ॥

कथमयं गमनाय कृतारम्भोऽपि न प्रस्थित इति कस्यचित्प्रश्ने तद्वयस्यः सपरिहासमाह—

एँक्को वि कैलसारो ण देइ गन्तुं पँआहिणवलन्तो ।

किं उण बाहाउलिअं लोअणजुअलं पिअअमाए ॥ २५ ॥

[एकोऽपि कृष्णसारो न ददाति गन्तुं प्रदक्षिणं चलन् ।

किं पुनर्बाष्पाकुलितं लोचनयुगलं प्रियतमायाः ॥]

एक इति । पक्षे व्याधाकुलितम् । किं पुनरिति । लोचनयुगलमपि यतः कृष्णसारमिति भावः । एतेन कान्तास्नेहनिगडबद्धोऽयं न गच्छतीति सूचितम् ॥

अनुनीयमानमप्यनुनयमगृह्णन्तं प्रणयिनी सप्रेमदण्डमाह—

ण कुणन्तो विअ माणं णिसासु सुहसुत्तदरविबुद्धाणम् ।

सुण्णइअपासर्परिमूसणवेअणँ जइ सिजाणन्तो ॥ २६ ॥

१. 'सहसा प्रियेति न' इति ग-पाठः. 'असौ सेति' इति घ-पाठः २ 'कारिज्जइ' इति क-पाठः. ३ 'अभिजात्यै' इति ग पाठः. ४ 'एको वि' इति क-पाठः. ५. 'किष्णसारो' इति ख. पाठः. ६. 'पाहिणवलन्तो' इति क-पुस्तके, 'दाहिणचलन्तो' इति च ख-पुस्तके पाठः. ७. 'चलन्' इति ग-घ-पाठः. ८. 'नयनयुगल' इति घ-पाठः. ९. 'परिमूसण' इति ख-ग-पाठः.

[नाकरिष्य एव मानं निशासु सुखसुप्तदरविबुद्धाम् ।
शून्यीकृतपार्श्वपरिमोषणवेदनां यद्यज्ञास्यः ॥]

णेति । निशासु स्वकान्तया सह सुखसुप्तानां किञ्चिद्विबुद्धानां ततोऽन्याभिसारिण्या
तया शून्यीकृतेन पार्श्वेन यत्परिमोषणवञ्चनं तेन या वेदना तां यद्यज्ञास्यः सा वेदना यदि
त्वया ज्ञाता भवेत्तदा त्वं मानं नाकरिष्य एवेति संबन्धः । समैवायं दोषः । यद्यहं पति-
व्रता न स्यां तदा किं त्वमेव करोषीति भावः ॥

कृतकलहयोर्दंपत्यो रात्रिवृत्ताकलनार्थमागता प्रियसखी प्रणयरोषभङ्गार्थमाह—

पणअकुविआणँ दोहँ वि अलिअपसुत्ताणँ माणइल्लाणम् ।
णिच्चलणिरुद्धणीसासदिण्णकण्णाणँ को मल्लो ॥ २७ ॥

[प्रणयकुपितयोर्द्वयोरप्यलीकप्रसुप्तयोर्मनैवतोः ।
निश्चलनिरुद्धनिःश्वासदत्तकर्णयोः को मल्लः ॥]

पणएति । निश्चलेति । प्रयत्नधृतनिःश्वासत्वेन कृतकप्रसुप्तम्, तथाविधनिःश्वासाकर्णन-
तत्परतया चाभिलाषित्वं सूचितम् । को मल्ल इत्युपालम्भप्रश्नः । न कोऽपीत्यर्थः । परस्प-
रावधीरणासमर्थौ वृथैव युवामात्मानं खेदयथ इति भावः ॥

काचिद्वृत्ती नायिकाया देवरानुरक्तत्वेनासाध्यत्वं सूचयन्ती जारं प्रत्याह—

णवलअपहरं अङ्गे जहिं जहिं महइ देवरो दाउम् ।
रोमञ्चदण्डराई तहि तहिं दीसइ वहुए ॥ २८ ॥
[नवलताप्रहारभङ्गे यत्र यत्रेच्छति देवरो दातुम् ।
रोमाञ्चदण्डराजिस्तत्र तत्र दृश्यते बध्वाः ॥]

प्रोषितभर्तृका प्राणेशसमीपगाभिनमध्वगं सखीजनं वा तदानयनत्वरार्थमाह—

अज्ज मए तेण विणा अणुहूअसुहाँ संभरन्तीए ।
अहिणवमेहाणँ रवो णिसामिओ वज्झपडहो व्व ॥ २९ ॥

१. 'न कुर्वन्त्येव' इति घ-पाठः. २ 'विबुद्धानाम्' इति घ-पाठः. ३. 'परि-
मर्षण' इति ग घ-पाठ. ४. 'यदि हि जानन्ति' इति घ-पाठः. ५. 'दोए वि'
इति ख-पाठः. ६. 'दिह' इति ग-पाठः. ७. 'मानान्वितयो' इति ग-पाठः. ८. 'ण-
वलरूपहारभङ्गे' इति ख-पाठः. ९. 'देवरो दासु' इति ख-पाठः. १०. 'यस्मिन्-
स्मिन्महति' इति ग-पाठ. ११. 'तस्मिन् तस्मिन्' इति ग-पाठ. १२. 'अनुभू-
तसुरत' इति घ-पाठः.

[अद्य मया तेन विना अनुभूतसुखानि संस्मरन्त्या ।

अभिनवमेघानां रवो निशामितो वध्यपटह इव ॥]

अञ्जेति । गर्जितश्रवणाद्वर्षास्वनुभूतसुखानि संस्मरन्त्या मया मेघानां शब्दो वध्यपटह इव वध्यस्थानं नीयमानस्य दोषघोषणापटहध्वनिरिव श्रुत इत्यर्थः । एतेन वर्षास्वनागच्छति तस्मिन्नदूरवर्ति मे मरणमित्यवगम्य यद्युक्त तद्विधीयतामिति सूचितम् ॥

ग्रामपालपुत्र प्रति दूती कस्याश्चित्संगमायोत्साहयितुं सोपालम्भमाह—

‘णिक्वि जाआभीरुअ दुइंसण णिम्बईडसारिच्छ ।

गामो गामिणिणन्दण तुञ्ज एक तह वि तणुआइ ॥ ३० ॥

[निष्कृप जायाभीरुक दुर्दर्शन निम्बकीटसंदृक्ष ।

ग्रामो ग्रामणीनन्दन तव कृते तथापि तनुकायते ॥]

णिक्विवेति । अनुरक्तकामिनीजनवैमुख्यान्निष्कृप । ‘णिक्विअ’ इति पाठे निष्क्रिय क्रियाशून्य । जायाभीरुक भार्यापरतन्त्र । अत एवास्वच्छन्दप्रचारत्वादुर्दर्शन दुर्लभदर्शन । निम्बकीटमदृक्ष, तिक्ररुचित्वादसुन्दरमहिलानुरागाच्च । अभव्यरुचितया द्वयोः साम्यम् । ग्रामणीनन्दनेति भयशून्यताप्रदर्शनपरं संबोधनम् । ग्रामो ग्रामनिवासिविलासिनीजन. कथ त्वत्सगमः स्यादिति चिन्तया तनुकायते दुर्बलायत इति कामिनीजनानुरागकथनेन कमनीयत्व वर्णितम् ॥

कमपि सुभटयोषिदभिलाषिणं विमृश्यकारिणमुत्साहयितु तस्याः पत्यावनिच्छया मुखसाध्यतां पुरस्य च सुखनिर्गमप्रवेशतया निरपायतां दूती सुभटस्तुतिव्याजेनाह—

पहरवणमग्गविसमे जाआ किच्छेण लहइ से णिहम् ।

गामणिउत्तस्स उरे पल्ली उण सँ सुहं सुवइ ॥ ३१ ॥

[प्रहारव्रणमार्गविषमे जाया कृच्छ्रेण लभते तस्य निद्राम् ।

ग्रामणीपुत्रस्योरसि पल्ली पुनः सँ सुखं स्वपिति ॥]

पहरेति । उरे इति उरसि पुरे वा । प्रहारव्रणकिणैर्विषमे निम्नोन्नतकर्कशे तस्योरसि जाया कृच्छ्रेण निद्रा लभते । अनिच्छन्त्यपि भयात्तमालिङ्ग्य स्वपित्तीत्यर्थः । पुरपदे तु—प्रहरवनमार्गविषमे प्रहरगम्यो यो वनमार्गस्तेन विषमे दुर्गमे । पल्ली, लक्षणया पल्ली-

१. ‘णिक्विअ’ इति ग-पाठ . २. ‘दुइंसण’ इति ग-पाठः . ३. ‘निष्क्रिय’ इति घ-पाठः . ४. ‘णिम्बकीड’ इति ख-पाठः . ५. ‘सदृश’ इति ग-घ-पाठः . ६. ‘तनुभवति’ इति ग-घ पाठः . ७. ‘से’ इति क-ख-पाठ . ८. ‘सुअइ’ इति ख-पाठः . ९. ‘तस्य’ इति घ-पाठः .

निवासी जनः, सुखं स्वपिति । न कोऽपि जागार्तात्यर्थः । जाया पुनः कृच्छ्रेण । बहुव-
ल्लभत्वात्तस्य तज्जाया सावसरैव । अतस्तत्र गच्छेति जारं प्रति दूतीवचः ॥

अन्यनायिकानाम्ना सबोध्यानुनयन्तं खण्डिता सविनयोपालम्भमाह—

अह संभाविअमगगो सुहअ तुए जेठ्व णवरँ णिव्वूहो ।

हँहिं हिअए अण्णं अण्णं वाआइ लोअस्स ॥ ३२ ॥

[अयं संभावितमार्गः सुभग त्वयैव केवलं चिर्व्यूढः ।

इदानीं हृदयेऽन्यदन्यद्वाचि लोकस्य ॥]

अहेति । इदानीं लोकस्य हृदयेऽन्यत् वाच्यन्यत् । तव तु यदेव हृदये तदेव वाचि ।
यतो मां प्रति हृदयबाह्येनापि प्रियवचसा सैवानुनीता, न त्वहमिति भावः ॥

प्रणयकुपिता काचित्पृष्ठाभिमुखसुप्त कान्तमाह—

उह्माँ णीससन्तो किँति मह परम्मुहीँ सअणद्धे ।

हिअअं पँलीविअ वि अणुसएण पुट्टिँ पलीवेसि ॥ ३३ ॥

[उष्णानि निःश्वसन्कमिति मम पराङ्मुख्याः शयनार्थे ।

हृदयं प्रदीप्याप्यनुशयेन पृष्ठं प्रदीपयसि ॥]

उह्माँति । शयनैकदेशे पराङ्मुख्यास्त्वच्चिन्तामकुर्वत्या इति भावः । मम हृदयम-
नुशयेन सपत्नीसमुत्कर्षजनितेन प्रदीप्योष्णैर्निःश्वासैर्मम पृष्ठं किं प्रदीपयसि । तामेव
बल्लभासुपगच्छ । अलीकदाक्षिण्येन मामात्मानं च किं खेदयसीति भावः ॥

दूती कस्याश्चिद्विरहिण्या अवस्था नायकं प्रत्याह—

तुह विरहे चिरआरअ तिण्णा णिवडन्तवाहमइलेण ।

रइरहसिहरधरण व मुहेण छाहि त्विअ ण पत्ता ॥ ३४ ॥

[तव विरहे चिरकारक तस्या निपतद्वाष्पमलिनेन ।

रविरथशिखरध्वजेनेव मुखेन च्छायैव न प्राप्ता ॥]

तुहेति । चिरकारक, अवधिदिवसलङ्घनात् । छाया कान्तिरातपाभावश्च । 'छाया
मूर्त्यप्रभा कान्तिः प्रतिबिम्बमनातपः' इत्यमरः । तदेवं विरहविधुरामनुकम्पस्वेत्याशयः ॥

नववधूं प्रति सतीवृत्तशिक्षार्थं कापि बन्धुवधूराह—

दिअरस्स असुद्धमणस्स कुल्लवहू णिअअकुड्डुलिहिआइँ ।

दिअहं कहेइ रामाणुलग्गसोमित्तिचरिआइँ ॥ ३५ ॥

१. 'वेअ' इति ख-ग-पाठः. २. 'णिव्वुहो' इति ख-पाठः. ३. 'एहिहिं' इति ख-
पाठः. ४. 'असौ' इति घ-पाठः. ५. 'कीग' इति ख-पाठः. ६. 'पलीरिअं विअ' इति
घ-पाठः; 'पलीअ वि उ' इति ख-पाठः. ७. 'तिस्सा' इति क-ख-पाठः. ८. 'कुलव-
हूआ' इति क-पाठः. ९. 'णिअकुड्डु' इति क-ख-पाठः.

[देवरस्याशुद्धमनसः कुलवधूर्निजककुञ्जलिखितानि ।

दिवसं कथयति रामानुलभसौमित्रिचरितानि ॥]

दिअरस्सेति । अयमाशयः—कुलस्त्रिया रामायणवृत्तान्तं गृहभित्तौ विलिख्य तत्र विमातृजेऽपि रामे सभार्येऽनुलग्नानि लक्ष्मणस्य चरित्राणि कथयित्वा दुष्टहृदयो देवरः प्रत्याख्येयः, न तु प्रकटम् । कुट्टम्बविघटनादिभयादिति भावः ॥

सतां सख्यपि विनाशकारणे विनाशो न भवतीत्यसती खदोषप्रच्छादनार्थमाह—

चत्तरर्घरिणी पिअदंसणा अ तरुणी पउत्थपइआ अ ।

असईसैपज्जिआ दुग्गआ अ ण हु खण्डिअं सीलम् ॥ ३६ ॥

[चत्वरगृहिणी प्रियदर्शना च तरुणी प्रोषितपतिका च ।

असतीप्रैतिवेशिनी दुर्गता च न खलु खण्डितं शीलम् ॥]

चत्तरेति । चत्तरे राजमार्गे गृह यस्याः । प्रियदर्शना सुन्दरी । असत्याः कुलटायाः प्रतिवेशिनी । अत्र चत्वरगृहिणीत्वादेः शीलखण्डनकारणस्य सत्त्वेऽपि तदभावाद्द्विशेषोक्तिरलकारः—‘विशेषोक्तिरखण्डेषु कारणेषु फलावचः’ इति तल्लक्षणात् ॥

नदीतटकदम्बनिकुञ्जदत्तसकेतेन कान्तेन विप्रलब्धा नायिका ‘तत्राहं गता, एवं तु नागतः’ इति तं श्रावयन्ती सखीजनमाह—

ताल्लरभमाउलखुडिअकेसरो गिरिणईएँ पूरेण ।

दरबुडुउवुडुणिवुडुमहुअरो हीरइ कलम्बो ॥ ३७ ॥

[जलावर्तभ्रमाकुलखण्डितकेसरो गिरिनद्याः पूरेण ।

दरमभ्रोन्मभ्रनिमभ्रमधुकरो हियते कदम्बः ॥]

ताल्लरेति । ताल्लरो जलावर्त इति देशी । जलावर्तानां भ्रमो भ्रमणं तेनाकुलः । अत एव खण्डितकेसरः । अत्र भ्रष्टकेसरतया गलितमकरन्देऽपि कदम्बे भ्रमरस्येयमीदृशी दृढस्नेहता । तव तु अस्तु तावत्प्रेम्णश्चिरानुबन्धः, संप्रत्येवाहं त्वया छलितेति सरोष उपालम्भः ॥

दूती कामुकं प्रति कस्याश्चित्पतिव्रताया धनाद्यसाध्यतां प्रतिपादयन्ती आह—

अहिआअमाणिणो दुग्गअस्स छाहिँ पँअस्स रक्खन्ती ।

णिअबन्धवाणँ जूरइ घरिणी विहवेण एत्ताणम् ॥ ३८ ॥

१ ‘घरणी’ इति क-पाठः. २. ‘सहज्जिआ’ इति क-पुस्तके, ‘सअज्जिआ’ इति च ख-पुस्तके पाठः. ३. ‘सहवासिनी’ इति ग-पाठः. ४. ‘भ्रमात्खण्डित’ इति ग-पाठः. ५. ‘स्फुटितकेशरो’ इति घ-पाठः. ६. ‘दरमभ्रमभ्रोन्मभ्र-’ इति ग-पुस्तके, ‘दरमभ्रोन्मभ्रनिमलमधुकरो’ इति च घ-पुस्तके पाठः. ७. ‘पइअस्स’ इति क-पुस्तके, ‘पिअस्स’ इति च ग-पुस्तके पाठः.

[सद्भावस्नेहभरिते रक्ते रंज्यत इति युक्तमिदम् ।

अन्यहृदये पुनर्हृदयं यद्दीयते तज्जनो हसति ॥]

सम्भावेति । यद्वा काचिद्वृत्ती अभियोज्यायाः पत्यावनुरागभङ्गार्थं तस्मिन्नसन्तमपि दोषमुद्गावयन्ती इदमाहेति ॥

विमृश्यकारिणं नायकं नायिकासंगमाय दूती प्रोत्साहयितुमाह—

आरम्भन्तस्स ध्रुवं लच्छी मरणं वि होइ पुरिसस्स ।

तं मरणमणारम्भे वि होइ लच्छी उण ण होई ॥ ४२ ॥

[आरम्भमाणस्य ध्रुवं लक्ष्मीर्मरणं वा भवति पुरुषस्य ।

तन्मरणमनारम्भेऽपि भवति लक्ष्मीः पुनर्न भवति ॥

आरम्भेति । तत्किमित्यतिसूक्ष्मप्रेक्षितया लक्ष्मीमिवानुवर्तमानां तामुपेक्षस इति भावः॥

चिरविरहमपि सहन्ते स्त्रियस्तत्किमेवमुद्विग्नासीति वदन्तीं कामपि विरहोत्कण्ठता सनिर्वेदमाह—

विरहाणलो सहिज्जइ आसाबन्धेन वल्लहजणस्स ।

एकरगामपवासो माए मरणं विसेसेइ ॥ ४३ ॥

[विरहानलः सह्यत आशाबन्धेन वल्लभजनस्य ।

एकग्रामप्रवासो मातर्मरणं विशेषयति ॥]

विरहेति । प्रत्याशाहेत्वभावान्मरणातिरिच्यत इत्यर्थः ॥

सुरतसमये नायकस्य वैमनस्य कथयन्तीं नायिकां प्रति दूती आह—

अक्खडइ पिआ हिअए अण्णं महिलाअणं रमन्तस्स ।

दिट्ठे सरिसम्मि गुणेऽसरिसम्मि गुणे अणीसन्ते ॥ ४४ ॥

[अस्खलति प्रिया हृदये अन्यं महिलाजनं रममाणस्य ।

दृष्टे सदृशे गुणे असदृशे गुणे अदृश्यमाने ॥]

अक्खडइति । आस्खलति । स्मृतिपथमुपैतीत्यर्थः । अन्यस्त्रीप्रसङ्गे भर्तुर्हृदये समानोत्कृष्टापकृष्टगुणाश्रयतया प्रिया स्मृतिपथं याति । न तु त्वयि वैराग्यादिति भावः । यद्वा कामिनीजनचित्ताकर्षणाय कश्चिदात्मनो बहुवनितोपभोगेन कामुकत्वातिशयं ख्यापयन्निदमाह ॥

१. 'स्नेहमये' इति ग-पुस्तके, 'स्नेहभृते' इति च घ-पुस्तके पाठः. २. 'रक्तीभूयते' इति ग-पाठः. ३. 'आरम्भं क्रियमाणस्य' इति ग-पाठः. ४. 'असरिस्सम्मि गुणे अइसन्ते' इति ख-पाठः. ५. 'स्मृतिं याति' इति घ-पाठः. ६. 'अतिशयेवेति' इति ग-पाठः.

[अभिजात्यमानिनो दुर्गतस्य छायां पत्यू रक्षन्ती ।

निजैवान्धवेभ्यः क्रुध्यति गृहिणी विभवेनौगच्छद्भ्यः ॥]

अहिआएति । 'पत्ताणम्' इति पाठे प्राप्तेभ्य इत्यर्थः । छायां महत्त्वम् । पति-
चित्तानुवृत्त्यर्थं बन्धुजनस्याप्युपहारं न बहु मन्यते । किं पुनः कामिजनस्येति भावः ॥

कामुकजनाभियोगनिरासार्थं दूती स्वाधीनपतिकायाः सुचरितमाह—

साहीणे वि पिअअमे पत्ते वि खणे ण मण्डिओ अप्पा ।

दुग्गअपउत्थवइअं सअज्झिअं सण्ठवन्तीए ॥ ३९ ॥

[स्वाधीनेऽपि प्रियतमे प्राप्तेऽपि क्षणे न मण्डित आत्मा ।

दुर्गतप्रोषितपतिकां प्रतिवेशिनीं संस्थापयन्त्या ॥]

साहीण इति । क्षणे मदनमहोत्सवादौ प्राप्तेऽपि प्रतिवेशिनीं संस्थापयन्त्या अनुद्विमां
कुर्वन्त्या । कदाचित्कृतमण्डना मामवलोकयेयमुद्विमा खण्डितचरित्रा स्यात् इत्याशङ्कया
या आत्मानं न मण्डयति तस्या दूरे स्त्रीलखण्डनसाहस इति भावः । अथवा प्रतिवे-
शिनीस्थापनार्थमनया मण्डनं न कृतम्, न तु कामुकान्तरविरहखिन्नयेति सखीदोषप्र-
च्छादनार्थं सख्या वचनमिदमिति ॥

नायिकानुरागकथनेन दूती नायकमनुकूलयितुमाह—

तुज्झ वैसइ त्ति हिअअं इमेहिँ दिट्ठो तुमं ति अँच्छीहिँ ।

तुह विरहे किर्सिआँ तिए अज्जाँ वि पिआँ ॥ ४० ॥

[तव वसतिरिति हृदयमाभ्यां दृष्टस्त्वमित्यक्षिणी ।

तव विरहे केशितानीति तस्या अज्जान्यपि प्रियाणि ॥]

काचित्खण्डिता बहुधा कृतव्यलीकमनुनयन्तं नायकमाह—

सब्भावणेहभरिए रत्ते रज्जिज्जइ त्ति जुत्तमिणम् ।

अणहिअए उण हिअअं जं दिज्जइ तं जणो असह ॥ ४१ ॥

१. 'अभिजाति' इति ग-घ-पाठः. २. 'निजवान्धवान्निन्दति' इति ग-पाठः.
३. 'आगच्छतः' इति ग-पुस्तके, 'गच्छद्भ्यः' इति च घ-पुस्तके पाठः. ४. 'उत्सवे'
ति ग-पाठः. ५. 'स्थापयन्त्या' इति घ-पाठः. ६. 'वसहिति' इति क-पाठः.
७. 'अच्छिद्रम्' इति ख-ग-पाठः. ८. 'किसिआअ' इति क-पाठः. ९. 'केशितानीति'
ति ग-पुस्तके, 'केशानीति' इति घ-पुस्तके पाठः.

मानिनीमनुनेतुं दूती यौवनावनिलतामाह—

णइऊरसच्छहे जोव्वणम्मि अइपवसिएसु दिअसेसु ।

अणिअत्तासु अ राईसु पुत्ति किं दड्डमाणेण ॥ ४५ ॥

[नदीपूरसदृशे यौवने अतिप्रोषितेषु दिवसेषु ।

अनिवृत्तासु च रात्रिषु पुत्रि किं दग्धमानेन ॥]

णइति । कतिपयदिनस्थाश्रित्वेन यौवनस्य नदीपूरसादृश्यम् । कतिपयदिनानुभाव्ययौ-
वनसुखविधातकारित्वाद्वाहाहार्होऽयं मानस्यज्यतामिति भावः ॥

कापि निशाभ्यर्थनकाकुवादश्रावणेन विरहासहत्वं व्यञ्जयन्ती कान्तगमनाक्षेपार्थ-
माह—

कल्लं किर खरहिअओ पवसिइहि पिओ त्ति सुण्णइ जणम्मि ।

तह वड्ड भअवइ णिसे जह से कल्लं विअ ण होइ ॥ ४६ ॥

[कल्यं किल खरहृदयः प्रवत्स्यति प्रिय इति श्रूयते जने ।

तथा वर्धस्व भगवति निशे यथा तस्य कल्यमेव न भवति ॥]

कल्लमिति । कल्यं प्रातः । 'प्रत्युषोऽहर्मुखं कल्यम्' इत्यमरः । खरहृदयः अस्मत्पीडान-
भिज्ञत्वान्निष्ठुरहृदयः । यद्वा प्रातरयं गमिष्यति त्व खच्छन्दं विहरेति जारं प्रति
स्वैरिण्या उक्तिरियम् ॥

सखीमौग्ध्यकथनच्छलेन तत्कान्तगमनाक्षेपार्थं काचिदाह—

होन्तपहिअस्स जाआ आउच्छणजीअधारणरहस्सम् ।

पुच्छन्ती भमइ घरं धरेण पिअविरहसहिरीओ ॥ ४७ ॥

भविष्यत्पथिकस्य जाया अपृच्छन्जीवधारणरहस्यम् ।

पृच्छन्ती भ्रमति गृहं गृहेण प्रियैर्विरहसहनशीलाः ॥]

होन्तेति । आपृच्छन् गमनप्रश्न. प्रिये याम्यहमित्येवंरूपः । तत्र यज्जीवधारणं तदर्थं

१. 'णइपूर' इति क-ख-पाठः. २. 'दिअहेसु' इति क-ग-पाठः. ३. 'अणिअणि-
अत्तासु' इति क पाठः. ४. 'अतिप्रवसिनेषु' इति ग-पाठः. ५. 'अनिवृत्तास्वपि' इति
ग-पाठः. ६. 'पवसिहि' इति ख-पाठः. ७. 'पिअ' इति ख-पाठः. ८. 'कल्पे' इति
ग-घ-पाठः. ९. 'खलहृदयः' इति क-ग-पाठः. १०. 'प्रवसिष्यते' इति ग-पाठः.
११. 'घरे घरेण' इति क-पाठः. १२. 'आगामिक्षणजीवधारणरहस्यम्' इति ग-पुस्तके,
'पुनर्दर्शनप्रश्नजीवधारणरहस्यम्' इति च घ-पुस्तके पाठः. १३. 'गृहं गृहं' इति घ-पाठः.
१४. 'प्रियविरहसहिष्णूः' इति ग-पाठः.

रहन्यमुपायं पृच्छन्ती । अनेन अस्तु तावद्विरहः, तव गमनसमय एव मुग्धाया जीवि-
ताशा सदग्धेति ध्वनितम् ॥

काविस्वाधीनभर्तृका पत्युरनन्यपरताकथनेनान्यकामिन्यवकाशनिरासाय स्वसौभा-
ग्यसाह—

अण्णमहिलापसङ्गं दे देव करेसु अम्ह दइअस्स ।

पुरिसा एकन्तरसा ण हु दोसगुणे विआणन्ति ॥ ४८ ॥

[अन्यमहिलाप्रसङ्गं हे देव कुर्वस्माकं दयितस्य ।

पुरुषा एकान्तरसा न खलु दोषगुणौ विजानन्ति ॥]

अण्णेति । देशवदः सातुनयसंबोधने । हे देव, अस्माकं दयितस्यान्यमहिलाप्रसङ्गं
कुरु । खलु यस्मात् पुरुषा एकान्तरसा गुणदोषौ न जानन्ति । अन्तशब्दः स्वरूपवाची ।
एकरसा इत्यर्थः । यद्वा पत्युरन्यासङ्गप्रार्थनेनावसरमिच्छन्त्या प्रच्छन्नरताभिलाषो जारं
प्रति सूच्यते ॥

स्वयं दूती पथिकमाह—

थोअं पि ण णीसरई मज्झण्णे उह सरीरतल्लुक्का ।

आअवभएण छाही वि पाहिअ ता किं ण वीसमसि ॥ ४९ ॥

[स्तोकमपि न निःसरति मध्याह्ने पश्य शरीरतल्लीना ।

आतपभयेन च्छायापि पथिक तत्किं न विश्राम्यसि ॥]

थोअमिति । आतपखिन्नाः पथिका यस्यां छायायां विश्राम्यन्ति, सा अचेतना
छायाप्यातपभयेन बहिर्न निष्कामति, किं पुनश्चेतन इति । ततश्च मध्याह्ने कोऽपि
बहिर्न निर्यातीति विविक्तनिरपायमध्याह्नाभिसारसुखमनुभवाव इत्याशयः ॥

विरहोत्कण्ठिता ज्वरश्लाघाछलेन चिरागतकान्तोपालम्भमाह—

सुहउच्छअं जणं दुल्लहं पि दूराहि अम्ह आणन्त ।

उअआरअ जर जीअं पि णेन्त ण कआवराहोऽसि ॥ ५० ॥

[सुखपृच्छकं जनं दुर्लभमपि दूरादस्माकमानयन् ।

उपकारक ज्वर जीवमपि नैथन्न कृतापराधोऽसि ॥]

१. 'देव' इति क-ख-पाठः. २. 'विजाणन्ति' इति क-पाठः. ३. 'अन्यस्त्रीप्रसङ्गं'
इति ग पाठः. ४. 'कुरुष्वास्माकं' इति घ-पुस्तके, 'कुरुष्वास्मद्' इति च ग-पुस्तके
पाठः. ५. 'एकरसा' इति ग-पाठः. ६. 'उव सरीरअल' इति क-पाठः. ७.
'आणेत' इति ग-पाठः. ८. 'उवआरअ' इति क-पाठः. ९. 'दूरान्मम कृते' इति
ग-पाठः. १०. 'गृह्णन्' इति ग-पाठः.

सुहेति । सुहउच्छअशब्दोऽस्वास्थ्यवार्ताकारके । तेन लोकभयादागतम्, न तु क्षेहादिति भावः । अस्माकं दुर्लभमपि दूरादानयन् । अत एव दुर्लभप्रियानयनादुपकारकं ज्वर, जीवमपि नयन्न कृतापराधोऽसि । एवं मां प्रयत्नेहे त्वयि मम मरणमेव श्रेयः । तच्च त्वद्दर्शनपूर्वं ऋसाधयता ज्वरेण ममोपकार एव कृतो न त्वपकार इति भावः ॥

खण्डितं फानित्मुञ्चप्रश्नार्थमागतं कान्तं प्रति सेर्ष्यमाह—

आमजरो मे मन्दो अहव ण मन्दो जणस्स का तन्ती ।

सुहउच्छअ सुहअ सुअन्धअन्ध मा अन्धिअं छिवसु ॥ ५१ ॥

[आमज्वरो मे मन्दोऽथवा न मन्दो जनस्य का चिन्ता ।

सुखपृच्छक सुभग सुगन्धगन्ध मा गन्धितां स्पृश ॥]

आमेति । अजीर्णोत्पन्नो ज्वर आमज्वरः । त्वयि क्रोधेन रात्रौ जागरणादिति भावः । आमशब्दः संप्र्याप्तुमताविति केचित् । जनस्योदासीनस्य महु खाददुःखितस्य धतः किमनेन प्रश्नेनेति भावः । हे सुखपृच्छक अस्वास्थ्यवार्ताकारक, बहुवल्लभत्वाभग. प्रियात्तृगत्तसंक्रान्तपरिमलत्वात्सुगन्धगन्ध, गन्धितां संजातज्वरगन्धां मा मा श । मदत्तस्पर्शसक्रान्तज्वरगन्धः सन् प्रेयस्या. कृतापराधो मा भूरित्याशयः ॥

रतिरभसात्क्रान्तमाक्षिप्यारब्धपुरुप्रायितां सौकुमार्यादल्पायासेनैव श्रान्तां कान्तः । ममाह—

सिहिपिच्छलुलिकेसे वेवन्तोरु विणिमीलिअद्धच्छि ।

दरपुगिसाइरि विसुमरि जाणसु पुगिसाणँ जं दुःखम् ॥ ५२ ॥

[शिखिपिच्छलुलितकेशे वेपमानोरु विनिमीलितार्धाक्षि ।

ईपैत्पुरुपायिते विश्रामशीले जानीहि पुरुषाणां यदुःखम् ॥]

ई निष्कामितस्य पुनरुपाजितवैभवस्य भुजंगस्य समागमाय प्रेरयन्तीं जननीं प्रति ह—

पेम्मस्म विरोहिअसंधिअस्स पच्चक्खदिट्ठविलिअस्स ।

उअअस्म वै ताविअसीअलस्स विरसो रसो होइ ॥ ५३ ॥

[प्रेम्णो विरोधितसंधितस्य प्रत्यक्षदृष्टव्यलीकस्य ।

उदकस्यैव तापितशीतलस्य विरसो रसो भवति ॥]

‘गन्धिरं’ इति क-ख-पाठः. २. ‘गन्धशीला’ इति घ-पाठः. ३. ‘दरपुरुपा-
इति ग-पुस्तके, ‘दरपुरुपायितशीले’ इति च घ-पुस्तके पाठः. ४. ‘विलअस्स’
-पाठः. ५. ‘वि’ इति क-पाठः. ६. ‘संहितस्य’ इति ग-पाठः.

पेम्मस्सेति । प्रत्यक्षेति श्रुतेऽनुमिते च विप्रिये प्रतीकार. संभवति । दृष्टे तु नास्तीति भावः । पर्युपास्यमानोऽप्यनौ नानुरक्तो भविष्यति किमित्यस्थाने मा प्रेरयसीति भावः ॥ बहुशोऽनुभूतेऽर्थं भविष्यत्यपि भूतवत्प्रत्ययो भवतीति निदर्शयन्कश्चिद्बन्ध्याः पतिशौर्यबहुमानमाह—

वज्रपडणाइरिक्कं पइणो सोऊण सिञ्जिणीघोसम् ।

पुसिआइं करिमरिऐं सरिसवन्दीणं पि णंअणाइं ॥ ५४ ॥

[वज्रपतनातिरिक्कं पत्युः श्रुत्वा शिञ्जिनीघोषम् ।

प्रोञ्छितानि बन्ध्या सैदृशबन्दीनामपि नयनानि ॥]

वज्जेति । करिमरी बन्दी । अतिचमत्कारकारित्वाद्ब्रह्मपतनातिरिक्तम् । 'मौर्वी ज्या शिञ्जिनी गुणः' इत्यमरः । आगतो मे भर्ता भवतीरपि मोचयिष्यति । तत्किमद्यापि :खेनेति भावः ॥

बन्ध्या जाताभिलाषश्चोरयुवा पतिशौर्याभिमानिन्यास्तस्या उत्साहभङ्गार्थमाह—

करिमरि अआलगज्जिरजलआसणिपडनपडिरवो एसो ।

पइणो धणुरवकङ्किरि रोमञ्चं किं मुहा वहसि ॥ ५५ ॥

[बेन्दि अकालगर्जनशीलजलदाशनिपतनप्रतिरव एषः ।

पत्युर्धनूरवाकङ्कणशीले रोमाञ्चं किं मुधा वहसि ॥]

भुजंगान्तरप्ररोचनाय दुहितुः सौकुमार्यातिशयं सुरतक्षमत्वं च ख्यापयन्ती वेद्या-माता भुजंगनिन्दाछलेनाह—

सहइ सहइ त्ति तह तेण रमिआ सुरअदुंविअद्वेण ।

पम्माअसिरीसाइं व जह से जाआइं अङ्गाइं ॥ ५६ ॥

[सहते सहत इति तथा तेन रमिता सुरतदुर्विदग्धेन ।

प्रम्लानशिरीषाणीव यथास्या जातान्यङ्गानि ॥]

सहइति । सुरतदुर्विदग्धेन सुरतावसानानभिज्ञेन ॥

नायकं प्रति कस्याश्चिदनुरागातिशय प्रतिपादयन्ती दूती आह—

अगणिअसेसजुआणा बालअ वोलीणलोअमज्जाआ ।

अह सा भमइ दिसामुहपसारिअच्छी तुह कएण ॥ ५७ ॥

१. 'अच्छीहिं' इति ख-पाठः; 'अस्तूहिं' इति च क-पाठः. २. 'ज्याशब्दम्' इति ग-पाठः. ३. 'सदृशबन्दीना' इति घ-पाठः. ४. 'करमर्थकालगर्जितजलदा' इति ग-पाठः. ५. 'काङ्कणि' इति ग-पाठः. ६. 'रमिआ' इति क-पाठः. ७. 'दुर्विअद्वेण' इति क-पाठः. ८. 'पम्माइअ' इति क-पाठः. ९. 'यथा तस्या' इति घ-पाठः.

[अगणिताशेषयुवा बालक व्यतिक्रान्तलोकमर्यादा ।

अथ सा भ्रमति दिशामुखप्रसारिताक्षी तव कृतेन ॥]

अगणिएति । हे बालक, स्त्रीरत्नपरिहारात् स्त्रीवधपातकाचिन्तनाच्च हिताहितान-
भिज्ञ, न गणिताः शेषास्त्वदन्ये युवानो यया सा, लज्जाल्यागात्यक्तलोकमर्यादा, सा पू-
र्वोक्तसौन्दर्याद्यनेकगुणा तव कृतेन त्वदर्शनेच्छया दिक्षुखेषु प्रसारिताक्षी सती भ्रमति ।
यावद्दशमीभवस्था गच्छति तावदेनामनुकम्पस्वेति भावः ।

बहुवल्लभस्य साध्वी काचिन्नायिका श्वश्रूं प्रति भर्तृशौर्यं प्रकाशयन्ती असतीसपत्नी-
नामभिसारसज्जता सूचयति—

अज्ज ळ्वेअ पउत्थो उज्जाअरओ जणस्स अज्जे अ ।

अज्जे अ हलिहापिञ्जराइँ गोलाणइतडाइँ ॥ ५८ ॥

[अद्यैव प्रोषित उज्जागरको जनस्याद्यैव ।

अद्यैव हरिद्रापिञ्जराणि गोर्दानदीतटानि ॥]

अज्जेति । मम पतिरद्यैव प्रोषितः । अर्थात्सद्भ्रामप्रसङ्गेणेति लभ्यते । जनस्योज्जाग-
रोऽद्यैव । चोरादिभयात् अभिसरणाभियोगाच्चेति भावः । गोदावरीतीराण्यद्यैव हरिद्रा-
पिञ्जराणि । हरिद्रोद्धर्तिताङ्गप्रक्षालनेनासतीनामङ्गरागग्रहणादिति भावः ॥

बन्धुवधूः कुलवधूशिक्षार्थं सतीवृत्तमाह—

असरिसचित्ते दिअरे सुद्धमणा पिअअमे विसमसीले ।

ण कहइ कुडुम्बविहडणभएण तणुआअए सोहा ॥ ५९ ॥

[असदृशचित्ते देवरे शुद्धमनाः प्रियतमे विषमशीले ।

न कथयति कुटुम्बविघटनभयेन तनुकायते लुषा ॥]

असरिसेति । असदृशचित्ते दुष्टचित्ते । प्रकाश्यमानं यद्दोषावहं तद्रोप्यमिति भावः ॥
कलहान्तरितायाः सखी तत्कान्तेन तद्भावजिज्ञासार्थं पृष्टा तमाह—

चित्ताणिअदइअसमागमम्मि कअमण्णुआइँ भरिऊण ।

सुण्णं कलहाअन्ती सहीहिँ रुण्णा ण ओहसिआ ॥ ६० ॥

१. 'अगणिताशेषयुवका' इति ग-घ-पाठः. २. 'गोलाणइअ तूहाइँ' इति क-पु-
स्तके, 'गोलाए तूहाइ' इति च ख-पुस्तके पाठः. ३. 'उज्जागरणमपि' इति ग-पाठः.
४. 'गोदावरीनद्याः स्रोतासि' इति ग-पुस्तके, 'गोदावर्यास्तीराणि' इति घ-पुस्तके,
'गोदायाः कूलानि' इति च ख-पुस्तके, पाठः; ५. 'शुद्धमनस्का' इति ग-पाठः.
६. 'चिन्ताणिइअ' इति क-पाठः.

[चित्तानीतदयितसमागमे कृतमन्युकानि स्मृत्वा ।

शून्यं कैलहायमाना सखीभी रुदिता नोपहंसिता ॥]

चित्तेति । कृतो मन्युर्यैस्तानि कृतमन्युकानि । मन्युकारणानीत्यर्थः । सखीभी रुदिता शोचितेत्यर्थः । कार्येण रोदनेन स्वकारणीभूतस्य शोकस्य लक्षणात् 'रुदि' चातोर-कर्मकत्वाद्यथाश्रुतस्यासंगतेः त्वदनुयानपरायास्तस्यास्तथाविधं मन्मथोन्मादमवैश्यसखीभिस्ता प्रति शोकः कृतः, न पुनरुपहासकारणे सत्यप्युपहास इति भावः ॥

प्रच्छन्नरताभिलाषिणं नागरिकं प्रति कुलजाभिसारिका सवैदग्ध्यमाह—

हिअअण्णएहिँ समअं असमत्ताइं पि जह सुँहावन्ति ।

कज्जाइँ मणे ण तहा इअरेहिँ समाविआइं पि ॥ ६१ ॥

[हृदयज्ञैः सममसमाप्तान्यपि यथा सुखयन्ति ।

कार्याणि मन्ये न तथा इतरैः समापितान्यपि ॥]

हिअएति । हृदयज्ञैरिद्वित्तज्ञैः । इतरैरनिक्रितज्ञैरगूढाकारैश्च । एतेन त्वद्विधविदग्धेन समं संकल्पसमागमोऽपि वरम्, न पुनः पामरसमागम इति सूचितम् । यद्वा स्वपुरुषस्य पामरताप्रकाशनेन तद्विषयको विरागो जारं प्रत्यनुरागश्च सूचितः । अधमानुरक्ता प्रति सखीवचन वा ॥

कोमलाम्राङ्कुरप्रदर्शनेन घनागमं सूचयन्ती कान्ता कान्तस्य गमनाक्षेपार्थमाह—

दरफुडिअसिप्पिसंपुडणिलुक्कहालाहलग्गळेप्पणिहम् ।

पैक्कम्बट्टिविणिग्गअकोमलमम्बङ्कुरं उअह ॥ ६२ ॥

[ईषत्स्फुटितशुक्तिसपुटनिर्लीनहालाहलाग्रपुच्छनिभम् ।

पक्काम्रास्थिविनिर्गतकोमलाम्राङ्कुरं पश्यत ॥]

दरेति । हालाहलो 'बँहानिया' इति प्रसिद्धो जन्तुविशेषः । 'हालाहलो ब्रह्मर्षे' इति मेदिनीकोषः । निलीनान्त हालाहलविशेषणम् ॥

१. 'कृतमन्यूनसंस्मृत्य' इति ग-पाठः. २. 'कलहायन्ती' इति ग-पाठः.
३. 'न पुनर्हंसिता' इति घ-पाठः. ४. 'हिअअअण्णएहिँ' इति क-पाठः. ५. 'मु-
हावेति' इति ख-ग-पाठः. ६. 'समाप्तान्यपि' ग-घ-पाठः. ७. 'पिक्कम्बट्टि' इति
क-ख-पाठः. ८. 'निष्ठस' इति ग-पाठः. ९. 'ओटनीति प्रसिद्धो जन्तुः' इति
कुलबालदेवः.

असत्वररतप्रवृत्तये गृहस्य जनसंचारशून्यतां सूचयितुं जारं वान्यमनस्कं कर्तुं
काचिदाह—

उअह पडलन्तरोइण्णणिअअतन्तुद्धपाअपडिलग्गम् ।

दुल्लक्खसुत्तगुत्थेक्कवउलकुसुमं व मक्कडअम् ॥ ६३ ॥

[पश्यत पटलान्तरावतीर्णनिजकतन्तूर्ध्वपादप्रैतिलग्नम् ।

दुर्लक्ष्यसूत्रग्रथितैकवकुलकुसुममिव मर्कटकम् ॥]

उअहेति । पटलान्तरावतीर्णे निजकतन्तौ ऊर्ध्वपादैः प्रतिलग्नं मर्कटकं लूतां प-
श्यत । 'अथ मर्कटकः सस्यभेदे वानरलूतयोः' इति मेदिनी ॥

पुराणदेवकुलस्य निर्जनतां सूचयन्ती कुलटा जारमाह—

उअरि दरदिट्ठथैण्णुअणिलुक्कपारावआणं विरुएहिं ।

णित्थणइ जाअवेअणं सूलाहिण्णं व देउलअम् ॥ ६४ ॥

[उपरीषट्ठशङ्कुनिलीनपारावतानां विरुतैः ।

निस्तनति जातवेदनं शूलाभिन्नमिव देवकुलम् ॥]

उअरीति । ईषदिति कलशस्य भग्नत्वात्किंचिदवशिष्टक्रीलकं देवकुलं निलीनानां
पारावतानां विरुतैः स्तनति । एतेन रतिसमये पारावतरतानुकारि कण्ठकूजितमयल-
सिद्धम्, क्रियमाणमप्यनुपलक्ष्यत्वादविरुद्धमिति सूचितम् । नायकस्य दीर्घरमणार्थं
चमत्कारमुत्पादयितुं शूलाभिन्नमिवेत्युत्प्रेक्षणम् । तथा च कामशास्त्रम्—'कल्लोलिनीका-
ननकंदरादौ दुःखाश्रये चार्पितचित्तवृत्तिः । मृदुदुतारम्भमभिन्नधैर्यैः श्लथोऽपि दीर्घं
रमते रतेषु ॥' इति ॥

'निजभर्तुरेवाप्रियास्मि, तत्किं तव मया दुर्भंगया' इति निरस्यन्तीं नायिकां प्रति
साभिलाषः कश्चिदाह—

जइ होसि ण तस्स पिआ अणुदिअहं णीसहेहिं अङ्गेहिं ।

णवसूअपीअपेऊसमत्तर्पाडिअव किं सुवसि ॥ ६५ ॥

[यदि भवसि न तस्य प्रियानुदिवसं निःसहैरङ्गैः ।

नवसूतपीतपीयूषमत्तमहिषीवत्सेव किं स्वपिषि ॥]

१. 'गुच्छेक्क' इति क-ख-पाठः. २. 'परिलग्नम्' इति ग-पाठः. ३. 'खण्णुअणि-
लीण' इति क-पाठः. ४. 'देअउलम्' इति ग-पाठः. ५. 'उपरि दरदृष्ट्याणुकनिलीन'
इति ग-पाठः. ६. 'देवलकम्' इति क-पाठः. ७. 'ता दिअहं' इति ग-पाठः. ८. 'प-
ङ्गेअव' इति ग-पाठः. ९. 'प्रिया तद्विवसं' इति ग-पाठः.

पत्तो इति । प्राप्तोऽतिक्रान्तः क्षण उत्सवो न शोभते । तत्र दृष्टान्तः—अतिप्रभाते पूर्णिमाचन्द्र इव । संप्रदानरहितश्च परितोपो न शोभते । अत्र दृष्टान्तः—अन्तविरसः काम इव । एवं च 'अइप्पहाअव्व पुण्णिमाअन्दो । अन्तविरसोव्व कामो' इत्येव युक्तः पाठः ॥

विज्ञा उपक्रम एव भद्रं विरुद्धं च जानन्तीति दर्शयन्कश्चिदाह—

पाणिगहणे विवअ पव्वईएँ णाअं सहीहिँ सोहग्गम् ।

पसुवइणा वासुइक्कणम्मि ओसारिए दूरम् ॥ ६९ ॥

[पाणिग्रहण एव पार्वत्या ज्ञातं सखीभिः सौभाग्यम् ।

पशुपतिना वासुकिकङ्कणेऽपसारिते दूरम् ॥]

पाणीति । पार्वत्या भयपरिहारार्थं वासुकेरपसारणं दृष्ट्वा तस्यामनुरागातिशयरूपं सौभाग्यं ज्ञातमिति भावः ॥

नवमेघोदयदर्शनाद्गीष्मान्तस्यावधेर्लङ्घनं मत्वा दयितस्यान्यवनिताप्रसाक्तिं संभाव्योद्वि-
त्रायाः प्रोषितपतिक्रायाः समाश्वासनार्थं सखी आह—

गिन्हे द्वग्गिमसिमइलिआँइँ दीसन्ति विज्झसिहराईं ।

आससु पउत्थवइए ण होन्ति णवपाउसव्भाईं ॥ ७० ॥

[श्रीष्मे द्वाग्निमधीमलितानि दृश्यन्ते विन्ध्यशिखराणि ।

आश्वसिहि प्रोषितपतिके न भवन्ति नवप्रावृड्भ्राणि ॥]

कापि प्रथमसंगमेऽनुरागातिशयं दर्शयन्तं बहुवल्लभं कान्तमादिमध्यावसानेष्वेकरूपप्र-
णयानुवृत्त्यर्थमाह—

जेत्तिअमेत्तं तीरईं णिव्वोदुँ देसु तेत्तिअं पणअम् ।

ण अणो विणिअत्तपसाअदुँक्खसहणक्खमो सव्वो ॥ ७१ ॥

[यावन्मात्रं शक्यते निर्वाहुं देहि त्वावन्तं प्रणयम् ।

न जनो विनिवृत्तप्रसाददुःखसहनक्षयः सर्वः ॥]

जेत्तिएति । विनिवृत्तो य प्रसादः प्रणयस्तेन जात यदुःख तत्सहनक्षम इत्यर्थः । ए-
तेनाननुभूतप्रणयखण्डना त्वदनुरक्ताहं त्वया प्रणयखण्डने कृते न जीवामीति सूचितम् ॥

१. 'णाणं' इति ख-पाठः. २. 'दु ख' इति ग-पाठः. ३. 'निर्वाहयितुं ददस्व' इति ग-पाठः. ४. 'तावन्मात्रं' इति घ-पाठः.

जईति । यदि तस्य प्रिया न भवसि तर्हि निःसहैः सुरतश्रमखिन्नैरङ्गैरुपलक्षिता त्वं नवप्रमूतायाः पीतेन पीयूषेणाभिनवदुग्धेन मत्ता महिषीवत्सेव किं स्वपिषि । 'पीयूषं सप्तदिवसावधिक्षीरे तथा मृते' इति मेदिनीकोषः । 'पीयूषममृते नव्यसूतधेनोः पयस्यपि' इति तु हैमः । सश्रमः सुरतजागर एव ते सौभाग्यं व्यनक्तीति भावः । पाडी महिषपोत इति देशी ॥

जनापवादभीता बन्धुवधूः प्रोषितपतिकां कुलटामाह—

हेमन्तिआसु अइदीहरासु राईसु तं सि अविणिहा ।

चिरअरपउत्थवइए ण सुन्दरं जं दिआ सुवसि ॥ ६६ ॥

[हैमन्तिकार्षतिदीर्घासु रात्रिषु त्वमस्यविनिद्रा ।

चिरतरप्रोषितपतिके न सुन्दरं यद्विवा स्वपिषि ॥]

हेमन्तीति । अविनिद्रेति जागरहेतोः प्रियसंभोगस्याभावान्निद्राविच्छेदशून्येत्यर्थः । न सुन्दरम् । असतीशङ्काहेतुत्वादयुक्तमित्यर्थः ॥

कर्दमभयादुत्प्लुत्य मम पदस्थाने तथा पदं न्यस्तं न त्वनुरागादिति प्रियां निलुचानं काचिदाह—

जइ चिक्खल्लभउप्यअपअमिणमलसाइ तुह पए दिण्णम् ।

ता सुहअ कण्टइज्जन्तमङ्गमोह्णिं किणो वहसि ॥ ६७ ॥

[यदि कर्दमभयोत्प्लुतपदमिदमलसया तव पदे दत्तम् ।

तत्सुभगं कण्टकितमङ्गमिदानीं किमिति वहसि ॥]

जईति । अलसया मन्दगमनया । यदीयं तव प्रिया न भवति तदा कथमनया तव पदस्थाने स्पृष्टे रोमाश्वस्ते जात इति भावः ॥

अत्यन्तमनुरक्तस्यापि दानविमुखस्य भुजंगस्योपालम्भार्थं दुहितृशिक्षार्थं च वेद्यामाताह—

पत्तो छणो ण सोहइ अइप्पहाअन्मि पुण्णिमाअन्दो ।

अन्त विरसो अ कामो असंपआणो अ परिओसो ॥ ६८ ॥

[प्राप्तः क्षणो न शोभते अतिप्रभाते इव पूर्णिमाचन्द्रः ।

अन्तविरस इव कामो असंप्रदानश्च परितोषः ॥]

१. 'अइदीहतरासु' इति क-पाठः. २. 'हैमनीषु' इति ग-पाठः. ३. 'अतिदीर्घतरासु' इति क-ख-पाठः. ४. 'त्वमसि विनिद्रा' इति ग-पाठः. ५. 'भयप्लुत' इति घ-पाठः. ६. 'कण्टकायमानं' इति घ-पाठः. ७. 'किं वहसि' इति घ-पाठः. ८. 'खणो' इति ख-पाठः. ९. 'प्राप्त उत्सवो' इति ग-पाठः. १०. 'प्रभाते पूर्णिमा' इति ग-पाठः. ११. 'अन्तविरसश्च' इति ग-पाठः.

‘प्रिये, किमेवमद्यापि प्रणयवैमुह्यं तव’ इति प्रियेणोक्ता मानिनी तस्याः स्थिरलेह-
तामात्मनश्चानुरागमाविष्कुर्वन्ती तमाह—

बहुवल्लहस्स जा होइ वल्लहा कह वि पञ्चदिअहाइं ।

सा कि छट्टं मग्गई कत्तो मिट्टं अ बहुअं अ ॥ ७२ ॥

[बहुवल्लभस्य या भवति वल्लभा कथमपि पञ्च दिवसानि ।

सा किं षष्ठं मृगयते कुतो मृष्टं च बहुकं च ॥]

बहु इति । बहयो वल्लभा यस्य स बहुवल्लभस्तस्य या वल्लभा भवति सा कथंचित्पञ्च-
दिवसानि मृगयते । सा विदितकान्ताभिप्राया षष्ठं दिवसं किं मृगयते । नैव मृगयत
इत्यर्थः । कुतो न मृगयत इत्याशङ्क्याह—कुतो मृष्टं च बहुकं चेति । सुकृतातिशयल-
भ्यमेतत् कुतो मे मन्दभाग्याया इत्याशयः । ‘वा तु क्लीबे दिवसवासरौ’ इत्यमरः । यद्वा
अभिमतप्रियस्य सदा सभोगालाभात्खिद्यमाना नायिकां बोधयन्त्याः सख्या इयमु-
क्तिरिति ध्येयम् ॥

कापि पत्यावन्ययोषावकाशनिरासार्थं स्वसौभाग्यमात्मनश्च पत्यावनुरागमाह—

जं जं सो णिज्झाअइ अँङ्गोआसं महं अणिमिसच्छो ।

पच्छाएमि अ तं तं इच्छामि अ तेण दीसन्तम् ॥ ७३ ॥

[यद्यत्स निर्ध्यायत्यङ्गावकाशं ममानिभिषाक्षः ।

प्रच्छादयामि च तं तमिच्छामि च तेन दृश्यमानम् ॥]

ज जमिति । निर्ध्यायति पश्यति ॥

कलहान्तरितायाः सखी तत्कान्तमनुनयाय प्रोत्साहयितुमाह—

दिढमण्णुदूँमिआएँ वि गहिओ दइअम्मि पेच्छह इमाए ।

ओसरइ बालुआमुट्टि उँव्व माणो सुरसुरन्तो ॥ ७४ ॥

[दृढमन्युदूनर्यापि गृहीतो दयिते पश्यतानया ।

अपसरति बालुकामुष्टिरिव मानः सुरसुरायमाणः ॥]

दिडेति । दृढमन्युदूनर्याप्यनया दयितया दयिते गृहीतो मानः सुरसुरायमाणो बालु-
कामुष्टिरिवापसरतीत्यन्वयः ॥

१. ‘मग्गइ छट्ट’ इति ग-पाठः. २. ‘बहुल’ इति ख-पाठः. ३. ‘मार्गयति’ इति
ग-पाठः. ४. ‘मिष्ट’ इति क-ख-पाठः. ५. ‘अङ्गं आसम्मि मह’ इति ग-पाठः. ६. ‘अङ्गं
पार्श्वे मम’ इति ग-पाठः. ७. ‘दुम्मिआए’ इति ग-पुस्तके, ‘दूणआइ’ इति च ख-पु-
स्तके पाठः. ८. ‘इव्व’ इति ग-पुस्तके, ‘ओव्व’ इति च ख-पुस्तके पाठः. ९. ‘दुर्मन-
स्कया’ इति ग-पाठः. १०. ‘प्रेक्षख’ इति ग-पुस्तके, ‘प्रेक्षध्वं’ इति च घ-पुस्तके पाठः.

सुरतासक्ता कान्चिच्चिररमणार्थं कान्तमन्यमनस्कं कर्तुमाह—

उअ पोम्मराअमरगअसंवलिआ ण्हअल्लोओ ओअरइ ।

णहसिरिकण्ठब्भट्ट व्व कण्ठिआ कीररिञ्छोली ॥ ७५ ॥

[पश्य पद्मरागमरकतसंवलिता नभस्तलादवतरति ।

नभःश्रीकण्ठभ्रष्टेव कण्ठिका कीरपङ्क्तिः ॥]

उएति । कीरपङ्क्तिर्नभस्तलादवतरतीति संबन्ध । नभःश्रियः कण्ठाञ्जुष्टा कण्ठिके-
वेत्युत्प्रेक्षा । कण्ठिका 'कण्ठा' इति ख्यात आभरणविशेषः । पद्मरागैर्मरकतैश्च संवलि-
तेति कण्ठिकाविशेषणम् । शुकानां हरितवर्णत्वान्मरकतसाम्यम्, तत्तुण्डानां च लोहित-
त्वात्पद्मरागसाम्यं द्रष्टव्यम् ॥

कापि विदितदुश्चरितेन पत्या दुर्गस्थानाभिरुद्धा जारप्रहिता दूतीमन्यापदेशेनाह—

ण वि तह विँएसवासो दोग्गच्चं मह जणेइ संतावम् ।

आसंसिअत्थविँमणो जह पणइजणो णिअत्तन्तो ॥ ७६ ॥

[नापि तथा विदेशवासो दौर्गत्यं मम जनयति संतापम् ।

आशंसितार्थविमनो यथा प्रणयिजनो निवर्तमानः ॥]

णवीति । विदेशे कुग्रामे बन्धनस्थाने च वासोऽवस्थानम्, दौर्गत्यं दारिद्र्य गतिनिरो-
धश्च मम तथा संतापं न जनयति यथा आशंसिते आशावेशयुक्ते अर्थे धने प्रियसगमे च
विमना निष्प्रत्याशः सन्निवर्तमानः प्रणयिजनः सप्रश्रयो बन्धुजनः कान्तप्रहितदूतीजनश्च ।
इदानीं नाभिसर्तुं समयस्तेन निवर्तस्वेति जारं प्रत्युक्तिर्वा ॥

पथिकच्छलेनालिन्दकोषितस्य जारस्य रताभिलाषं सूचयन्ती दूती कुलटामाह—

खन्धग्गिणा वणेसुं तणेहिँ गामम्मि रक्खिओ पहिओ ।

णअरवसिओ णँडिज्जइ साणुसएण व्व सीएण ॥ ७७ ॥

[स्कन्धाग्निना वनेषु तृणैर्ग्रामे रक्षितः पथिकः ।

नगरोषितः खेर्धते सानुशयेनेव शीतेन ॥]

खन्धेति । स्कन्धाग्निना बृहत्काष्ठाग्निना । 'स्कन्धाग्निः स्थूलकाष्ठाग्नि' इति हारावली ।
खेद्यते इत्यर्थे णडिज्जइ इति देशो । अस्या शिशिरनिशायामनन्यगतिकस्यास्य पथिकवरा-
कस्य लमेव शरणमिति भावः । यद्वा नगरे तृणकाष्ठादेर्दुर्लभत्वान्नागरिकाणां च निर्द-

१. 'णहअलाहि' इति क-पुस्तके, 'णहअलाउ' इति च ग-पुस्तके पाठः. २. 'ओस-
रइ' इति क-पाठः. ३. 'विदेस' इति क पाठः. ४. 'दोगच्चं व्व' इति ग-पाठः. ५. 'वि-
मुहो' इति क-ख-पाठः. ६. 'दौर्गल वा' इति ग-पाठः. ७. 'णणिज्जइ' इति ग-पाठः.
८. 'न नीयते' इति ग-पुस्तके, 'न खेद्यते' इति च घ-पुस्तके पाठः.

यत्वाच्छीतभीतस्य तव मत्संनिधौ स्वाप एव शरणमिति खयंदूत्याः पथिकं प्रति स्वाश-
याविष्करणमेतत् ॥

नागरिकः कामिन्यन्तरप्रलोभनार्थमात्मनो विदग्धकामुकतां दृढज्ञेहता च प्रकाश-
यन्नाह—

भरिमो से गहिआहरधुअसीसर्पहोलिरालआउलिअम् ।

वअणं परिमलतरलिअभमरालिपइण्णकमलं व ॥ ७८ ॥

[स्वरामस्तस्या गृहीताधरधुतशीर्षेप्रघूर्णनशीलालकाकुलितम् ।

वदनं परिमलतरलितभ्रमरालिप्रकीर्णकमलमिव ॥]

भरिमो इति । दशनक्षतार्थं गृहीतेऽधरे ध्रुते शीर्षे प्रघूर्णनशीलैरलकैराकुलितं परिमलेन
तरलिता इतस्ततो भ्रमन्ती या भ्रमराणामालिः पङ्क्तिस्तया प्रकीर्णं व्याप्त कमलमिव स्थितं
तस्या वदनं स्वराम इति संबन्धः ॥

सहचरप्रलोभनार्थं विटः कस्याश्चित्सौभाग्यगर्वसूचकं बिम्बोकमाह—

हल्लफलह्णाणपसाहिआणं छणवासरे सवत्तीणम् ।

अज्जाएँ मज्जणाणाअरेण कहिअं व सोहग्गम् ॥ ७९ ॥

[उत्साहतरलत्वज्ञानप्रसाधितानां क्षणवासरे सपत्नीनाम् ।

आर्यया मज्जनानादरेण कथितमिव सौभाग्यम् ॥]

हल्लेति । हल्लफलमुत्साहतरलत्वम् । तेन ज्ञानप्रसाधिताना क्षणवासरे उत्सवदिवसे
सपत्नीना मध्ये आर्यया श्रेष्ठयुवत्या मज्जनानादरेण ज्ञानावज्ञया सौभाग्यं कथितमिव ।
बिम्बोकाख्येनालंकारेण सौभाग्यप्रकटनादिति भावः । तल्लक्षणं च साहित्यदर्पणे—
‘बिम्बोकस्त्वतिगर्वेण वस्तुनीष्टेऽप्यनादरः’ इति । हल्लफलशब्दः कटुष्णजलवाचक इति
केचित् । पाठान्तरे तु मार्जनं प्रसाधनं तत्रानादरेणावज्ञयेति व्याख्येयम् ॥

कांचिद्धरिद्रादिना ज्ञानीयद्रव्येण कृतज्ञाना केशसंमार्जनेन प्रकटितकुचबाहुमूलां कम-
नीयदर्शनामुद्दिश्य कश्चित्सस्पृहमाह—

ह्णाणहलिदाभरिअन्तराँ जालाँ जालवलअस्स ।

सोहन्ति किलिच्चिअकण्टएण कं काहिसी कअत्थम् ॥ ८० ॥

१. ‘पहुण्णआलआ’ इति क-पाठः. २. ‘अस्याः’ इति ग-पाठः. ३. ‘धूत’ इति घ-
पाठः. ४. ‘प्रघूर्णमान’ इति ग-पाठः. ५. ‘अज्जाइ’ इति क-ख-पाठः. ६. ‘किंचिदुष्णसु-
गन्धिचिक्कणजलज्ञान’ इति ग-पुस्तके, ‘हारिद्रजलज्ञान’ इति च घ-पुस्तके पाठः. ७.
‘उत्सववासरे’ इति ग-पाठः. ८. ‘ईश्वरसुतया’ इति ग-पाठः. ‘हल्लफलशब्दः कोष्णचिक्क-
णसुगन्धिजले, अज्जाशब्दश्च देशी ईश्वरसुतायां वर्तते’ इति कुलबालदेवव्याख्यानम्. ९.
‘मज्जनानादरेण मार्जनानादरेण वा’ इति ख-पाठः. १०. ‘किलिच्छिअ’ इति क-पाठः.

[स्नानहरिद्राभृतान्तराणि जालानि जालवलयस्य ।

शोधयन्ती श्लुद्रकण्टकेन कं करिष्यसि कृतार्थम् ॥]

लाणिति । जालवलयं केशसंमार्जनी तस्या जालानि किलिञ्चिअं सूक्ष्मकाष्ठं तदेव सूक्ष्माप्रत्वात्कण्टकस्तेन शोधयन्ती कं कृतार्थं करिष्यसीति साधारणशब्दप्रयोगात्तस्याः कुलटात्वं व्यज्यते । यद्वा कमिति काका न कमपीति लभ्यते । कङ्कतिकासंस्कारेणैव कालातिपातादिति भावः । अथवा उद्वर्तनलम्बवलयमलापनयनप्रयत्नानुमितविशुद्धि-स्नानां पुष्पवतीं प्रति साभिलाषस्य नागरिकस्येयमुक्तिः । अत्र जालप्रधानस्य वलयस्य कङ्कणस्य जालानि शोधयन्ती संधिलम्बं मलमपनयन्ती कं कृतार्थं करिष्यसि । त्वत्सं गमेनाद्य कस्य जन्म सफलं भविष्यतीति भावः ॥

नायकस्य प्रवासनिषेधार्थं सततोपभोगेऽप्यवैरस्यार्थं खलत्रचनस्याग्रहणार्थमकारणले-ह्रविच्छेदपरिहारार्थं च विदग्धनायिका, तत्सखी वा गाथाद्वयेनाह—

अहंसणेण पेम्मं अवेइ अइदंसणेण वि अवेइ ।

पिसुणजणजम्पिएण वि अवेइ एमेअ वि अवेइ ॥ ८१ ॥

[अदर्शनेन प्रेमापैत्यतिदर्शनेनाप्यपैति ।

पिशुनजनजल्पितेनाप्यपैत्येवमेवाप्यपैति ॥]

पूर्वगाथामेव स्फुटीकर्तुमाह—

अहंसणेण महिलाअणस्स अइदंसणेण णीअस्स ।

मुखस्स पिसुणअणजम्पिएण एमेअ वि खलस्स ॥ ८२ ॥

[अदर्शनेन महिलाजनस्यातिदर्शनेन नीचस्य ।

मूर्खस्य पिशुजनजल्पितेनैवमेवापि खलस्य ॥]

अहंसणेणेति । महिलेति स्त्रीणां लघुहृदयत्वादिति भावः । नीचस्येति न तु त्वद्विध-सत्पुरुषस्येति भावः । मूर्खस्येति न तु विज्ञस्येत्याशयः । एवमेवापि कारणं विनापि । खलस्य न तु त्वद्विधसुजनस्येति भावः ॥

प्रथमगर्भायाः सुभगायाः स्तनकालिमकथनच्छलेन प्रसवानन्तरं भाविस्तनपतनोत्तर-कालमपि स्नेहानुवर्तनमङ्गीकारयितुं सखी तत्कान्तमाह—

पोट्टपडिएहिँ दुःखं अच्छिज्जइ उण्णएहिँ होऊण ।

इअ चिन्तआणँ मण्णे थणाणँ कसणं मुहं जाअम् ॥ ८३ ॥

१. 'वंशकण्टकेन' इति ग-पाठः. 'किलिञ्चिअशब्दो वंशे, जालवलयशब्दश्च केशप-एकारकद्रव्यविशेषे, जालशब्दश्च कङ्कतिकाखाते वर्तते' इति कुलबालदेवः. २. 'इत्थ-च' इति ग-पाठः.

[उदरपतिताभ्यां दुःखं स्थीयत उन्नताभ्यां भूत्वा ।

इति चिन्तयतोर्मन्ये स्तनयोः कृष्णं मुखं जातम् ॥]

पोष्टेति । लोकेऽपि यः प्रथमं प्रणयबहुमानादिना उन्नतो भूत्वा दैववशाद्दुर्गतः सन्न-
दरभरणव्यग्रो भवति तस्यापि चिन्तया मुखं श्यामं भवतीति ध्वनिः ॥

अभियोज्यामभियोगं ग्राहयितुं दूती नायकस्यानुरागातिशयमाह—

सो तुञ्ज कए सुन्दरि तह छीणो सुमहिलो हलिअउत्तो ।

जह से मच्छरिणीएँ वि दोच्चं जाआएँ पडिवण्णम् ॥ ८४ ॥

[स तैव कृते सुन्दरि तथा क्षीणः सुमहिलो हालिकपुत्रः ।

यथा तस्य मत्सरिण्यापि दूत्यं जायया प्रतिपन्नम् ॥]

सो इति । सुमहिल इत्यनेन रूपवद्भार्योऽपि त्वय्यनुरक्त इति नायिकास्तुतिर्ध्वन्यते ।
हालिकपुत्र इत्यनेनार्जवं धनिकत्वं च प्रवृत्त्यङ्गं दर्शयति । मत्सरिण्यापि दूत्यं प्रतिपन्न
पतिमरणभयादिति भावः । तद्यदि नानुमन्यसे तदा पुरुषवधपातकं ते भविष्यती-
त्याशयः ॥

कलहान्तरिता चिरागते कान्ते सखेहोपालम्भमाह—

दक्खिण्णेण वि एत्तो सुहअ सुहानेसि अम्ह हिअआइं ।

णिक्कइअवेण जाणं गओ सि का णिव्वुदी ताणम् ॥ ८५ ॥

[दाक्षिण्येनाप्यागच्छन्सुभगं सुखयस्यस्माकं हृदयानि ।

निष्कैतवेन यासां गतोऽसि का निर्वृतिस्तासाम् ॥]

दक्खिण्णेणेति । यासां समीपमिति शेषः ॥

पतिं प्रत्यन्ययोपावकाशनिरासार्थं स्वाधीनभर्तृका ताडितस्यापि प्रियस्योपचाराति-
शयं प्रथयन्ती स्वसौभाग्यमाह—

एकं पहरुठ्ठिवण्णं हत्थं मुहमारुएण वीअन्तो ।

सो वि हसन्तीएँ मए गहिओ वीएण कण्ठम्मि ॥ ८६ ॥

[एकं प्रहारोद्विज्रं हस्तं सुखमारुतेन वीजयन् ।

सोऽपि हसन्त्या मया गृहीतो द्वितीयेन कण्ठे ॥]

एकमिति । प्रहारेणोद्विज्रमेकं मदीयं हस्तं सुखमारुतेन वीजयन्स मयापि द्वितीयेन
हस्तेन कण्ठे गृहीत इति सबन्धः ॥

१. 'आस्यते उन्नतैर्भूत्वा' इति घ-पाठः. २. 'तुह कएण' इति ग-पाठः. ३. 'झीणो'
इति क-पुस्तके, 'झिण्णो' इति च ख-पुस्तके पाठः. ४. 'तव कृतेन' इति ग-पाठः.
५. 'प्रहारघातं' इति घ-पाठः.

केलिकलहनिष्कान्तां कान्तानुगम्यमानां नायिकां निवर्तयितुं तत्सखी आह—

अवलम्बितमाणपरम्मुहीर्णं एन्तस्स माणिणि पिअरस ।

पुट्टपुलउग्गमो तुह कहेइ संमुहट्टिअं हिअअम् ॥ ८७ ॥

[अवलम्बितमानपराङ्मुख्या आगच्छतो मानिनि प्रियस्य ।

पृष्ठपुलकोद्गमस्तव कथयति संमुखस्थितं हृदयम् ॥]

अवेति । अवलम्बितेन मानेन पराङ्मुख्याः न तु पारमार्थिकेनेति भावः । तत्र पृष्ठपुलकोद्गमः समुखस्थितं हृदयमागच्छते प्रियाय कथयतीति संबन्धः । तदलीकरोषमिमं त्यजेत्याशयः ॥

दीर्घोद्भट्टरोषां मानिनीं शिक्षयितुं सखी मानिन्यन्तरस्तुतिमाह—

जाणइ जाणावेउं अणुणअविइविअमाणपरिसेसम् ।

अइरिक्कम्मि वि विणआवलम्बणं सच्चिअ कुणन्ती ॥ ८८ ॥

[जानाति ज्ञापयितुमनुनयविद्रावितमानपरिशेषम् ।

विर्जनेऽपि विनयावलम्बनं सैव कुर्वती ॥]

जाणइति । विजनेऽपि एकान्तेऽपि रतिसमये इति यावत् । विनयावलम्बनं कटाक्षभुजप्रक्षेपाद्यद्वरणात् धार्ष्ट्यपरिहारं कुर्वती सैव अनुनयेन विद्रावितस्य दूरीकृतस्य मानस्य परिशेषमवशेषं ज्ञापयितुं जानाति । नान्येत्यर्थः । मानिनी मानावस्थायामपि प्रियमेवानुवर्तते न तु त्वमिव परिभवतीति भावः ॥

एकस्यामेवानुरक्त बहुबल्लभं नायकमुद्दिश्य कापि कृष्णव्याजेनाह—

मुहमारुएण तं कल्ल गोरअं राहिआएँ अवणेन्तो ।

एताणँ बल्लवीणं अण्णाणँ वि गोरअं हरसि ॥ ८९ ॥

[मुखमारुतेन त्वं कृष्ण गोरजो राधिकाया अपनयन् ।

एतासां बल्लवीनामन्यासामपि गौरवं हरसि ॥]

मुहेति । हे कृष्ण, त्वं मुखमारुतेन राधिकाया गोरजश्चक्षुरजोऽपनयन् । चक्षुःप्रविष्टरजोऽपनयनच्छलेन चुम्बन्नित्यर्थः । एतासां पुरोवर्तिनीनामन्यासामपि बल्लवीनां

१. 'पुट्टि' इति ख-पाठः. २. 'उग्गओ' इति क-पाठः. ३. 'संमुहट्टिअं' इति क-पुस्तके, 'समुहट्टिअ' इति च ख-पुस्तके पाठः. ४. 'विइविअ' इति क-पाठः. ५. 'वीरेकामे वि' इति ख-पुस्तके, 'पइ रिक्कव्विअ' इति च ग-पुस्तके पाठः. ६. 'अतिरिक्तमेव' इति ग-पाठः. 'पइरिक्कशब्दोऽतिरिक्ते । पइरिक्केति विजने देशइति केचित् । तदा पइरिक्कम्मि वि इति पाठः । विजनेऽपीत्यर्थः ।' इति कुलबालदेवः. ७. 'सत्य' इति घ-पाठः. ८. 'एआणं' इति ख-ग-पाठः. ९. 'रावाया' इति ग-पाठः.

गौरव हरसि । सौभाग्यगर्वखण्डनादिति भावः । यद्वा गौरवं गौरतां हरसि । अपमानेन कृष्णीकृष्णादिति भावः ॥

स्वण्डिना बहुशः कृतापरार्थं क्षमस्वेति वदन्तं कान्तमाह—

किं दाव कआ अहवा करेसि कैरिस्सि सुहअ एत्ताहे ।

अवराहाणँ अलज्जिर् साहसु कअए खमिज्जन्तु ॥ ९० ॥

[किं तावत्कृता अथवा करोषि कैरिष्यसि सुभगेदानीम् ।

अपराधानोमलज्जाशील कथय कतरे क्षम्यन्ताम् ॥]

किमिति । ये पूर्वं कृता यानिदानी करोषि करिष्यसि वा एतेषां भूतवर्तमानभविष्यतां मध्ये कतरे अपराधाः क्षम्यन्ताम् । न केऽपि क्षन्तु शक्यन्त इति निषेधमुखेन के वा न सोडास्तवापराधा इति ध्वनितम् ॥

दूती दुर्विदग्धं नायकं शिक्षयितुमाह—

णूमेन्ति जे पहुत्तं कुविअं दासा व्व जे पसाअन्ति ।

ते व्विअ महिलाणँ पिआ सेसा सामि व्विअ अराआ ॥ ९१ ॥

[गोपायन्ति ये प्रभुत्व कुपितां दासा इव ये प्रसादयन्ति ।

त एव महिलानां प्रियाः शेषाः स्वामिनं एव वराकाः ॥]

णूमेन्तीति । ये स्वकीयं प्रभुत्वं कान्ताविषये गोपायन्ति न प्रकटयन्ति । दण्डादिकं न प्रयुञ्जत इत्यर्थः । ये च कुपिता नायिकामनुनयपूर्वकं प्रसादयन्ति त एव महिलानां प्रिया वल्लभाः । शेषाः ततोऽन्ये दण्डप्रयोक्तारोऽनुनयपराङ्मुखाश्च महिलानां स्वामिन एव । न तु वल्लभा इत्यर्थः । वराकाः प्रेमसद्भावाप्राप्त्या शोच्या इत्यर्थः ॥

पूर्वमादरेण प्रवृत्तं पश्चाद्भ्रमदेशायामुदासीनं नायकमुपालब्धुं दूती भ्रमरापदेशेनाह—

तइआ कअग्घ महुअर ण रमसि अण्णासु पुँप्फजाईसु ।

बद्धफलभारगुरुइँ मालइँ एहिँ परिच्चअसि ॥ ९२ ॥

[तदा कृतार्थं मधुकर न रमसेऽन्यासु पुष्पजातिषु ।

बद्धफलभारगुर्वी मालतीमिदानीं परित्यजसि ॥]

१. 'कारिसि' इति क-ग-पाठः. २. 'कहेसु' इति ग-पाठः. ३. 'करिष्यसि वा सुभग एतावत्काले' इति ग-पाठः. ४. 'निर्लज्ज' इति ग-पुस्तके, 'अलज्जाशीलायां स कतरे' इति च घ-पुस्तके पाठः. ५. 'ण कुर्वन्ति' इति ग-पाठः. ६. 'पहुत्थं' इति ख-पाठः. ७. 'दासव्व' इति ख-ग-पाठः. ८. 'न कुर्वन्ति' इति ग-घ-पाठः. ९. 'दासवत्' इति ग-पाठः. १०. 'पुष्पजाइसु' इति ग-पाठः. ११. 'तदा कृतार्थ' इति ग-पुस्तके, 'तया कृतार्थ' इति च घ-पुस्तके पाठः.

तद्वा इति । कृतोऽर्घः पूजाविधियेन । कृतादरेति यावत् । 'मूल्ये पूजाविधावघ.' इत्यमरः । 'किंअघ' इति पाठे कृतघ्नेत्यर्थः । बद्धेन फलभारेण गुर्वामित्यनेन लताया मकरन्दराहिल्यं नायिकायाश्च विपरीतरताक्षमत्वं व्यज्यते । तेन प्रथमं तथा चाट्टशत-प्रपञ्चितप्रणयस्य तवेद स्वार्थपरतामात्रमनुचितमित्युपालम्भो व्यङ्ग्यः । संप्रति नोपभोगयोग्येति जारं प्रति दूत्या उक्तिरिति कश्चित् ॥

नागरिकानुरोधेन प्रतिपन्नदूतीभावया मातुलान्या कथितसौन्दर्यं तं प्रत्यनुरक्ता नायिका तामाह—

अविअह्वेपेक्खणिज्जेण तक्खणं मामि तेण दिट्ठेण ।

सिखिणअपीएण व पाणिएण तह्व विअ ण फिट्ठा ॥ ९३ ॥

[अवितृष्णप्रेक्षणीयेन तत्क्षणं मातुलानि तेन दृष्टेन ।

स्वप्नपीतेनेव पानीयेन तृष्णैव नै भ्रष्टा ॥]

अवीति । अथ वा तत्रैव स्थितं जारं प्रत्यन्यापदेशेन त्वदर्शनाभिलाषो मम न गत इति व्यज्यते ॥

संकेतस्थानान्तरानुसरणाय जारं प्रति प्रथमसंकेतमङ्गं श्रावयन्ती कुलटा सुजनप्रशंसाछलेनाह—

सुअणो जं देसमलंकरेइ तं विअ करेइ पवसन्तो ।

गामासण्णुम्मूलिअमहावट्टाणसारिच्छम् ॥ ९४ ॥

[सुजनो य देशमलंकरोति तमेव करोति प्रवसन् ।

ग्रामासन्नोन्मूलितमहावटस्थानसदृक्षम् ॥]

सुअणो इति । सुजनो यं देश निवासेनालंकरोति तमेव देशं प्रवसन्सन् ग्रामासन्न उन्मूलितो यो महावटस्तत्स्थानसदृशं करोतीत्यर्थः । यथा प्रोषितसुजनो देशो रहोवृत्ति-विश्रामाद्यभावाद्विदग्धान्दुःखयति तथा उन्मूलितवटस्थानमपि दुःखयतीत्यर्थः ॥

स्मर्तव्योऽहमिति गमनसमये वदन्त भविष्यत्पथिकं प्रति आह—

सो णाम संभरिज्जइ पव्भसिओ जो ख्वणं पि हिअआहि ।

संमरिअव्वं च कअं गअं च पेम्मं णिरालम्बम् ॥ ९५ ॥

[स नाम संस्मर्यते प्रअद्यो यः क्षणमपि हृदयात् ।

स्मर्तव्यं च कृतं गतं च प्रेम निरालम्बम् ॥]

१. 'पेछणिज्जेण' इति ख-ग-पाठः. २. 'भगिनि' इति ग- पुस्तके, 'अतुलितेन' इति च घ-पुस्तके पाठः. ३. 'नापगता' इति ग-घ-पाठः. ४. 'सुजणो' इति क-पाठः. ५. 'सदृशम्' इति ग-घ-पाठः. ६. 'खणम्मि हिअआहिं' इति ग-पाठः. ७. 'स्मरणीयं च' इति ग-पुस्तके, 'सस्मृत्यं च कृतं' इति च घ-पुस्तके पाठः.

नो इति । प्रेम यदैव स्तैर्व्यमर्थात्प्रियस्मरणार्हं कृतं तदैव निरालम्बं सद्गतम् । नि-
राश्रयन्वाप्तमिति भावः ॥

दृती मन्दस्नेहं विरलदर्शनं नायकं नायिकानुरागकथनेनानुकूलयितुमाह—

पासं व सा कवोले अज्ज वि तुह् दन्तमण्डलं बाला ।

उद्धिन्नपुलकवृत्तिवैष्टपरिगतं रक्खइ वराई ॥ ९६ ॥

[न्यासमिव सा कपोलेऽद्यापि तव दन्तमण्डलं बाला ।

उद्धिन्नपुलकवृत्तिवैष्टपरिगतं रक्षति वराकी ॥]

पासमिति । बाला प्रथमं त्वत्कृतशीलखण्डना सा वराकी उद्धिन्नपुलकवृत्तिमण्ड-
लेन परिगतं सर्वतो दृष्टितं तव दन्तमण्डलं मण्डलाकारं दन्तक्षतं न्यासनिक्षेपमिवा-
द्यापि रक्षति । शटे वयि तस्यास्तादृशोऽनुरागो न युक्त इति वराकीपदेन ध्वन्यते ।
तदेवमनुरक्तमनुकम्पाहामनुवर्तस्वेति भावः ॥

कार्यगौरवलङ्घितावधिस्ते बल्लभस्तत्समाप्त्यनन्तरमेवागमिष्यतीत्याश्वासयन्तीं मातु-
लानीं प्रोषितभर्तृका मनिर्वेदं सासूर्यं चाह—

दिट्ठा चूआ अग्घाइआ सुरा दक्खिणाणिलो सहिओ ।

कज्जाई त्विअ गरुआई यामि को बल्लहो कस्स ॥ ९७ ॥

[दृष्टाश्चूता आघ्राता सुरा दक्षिणानिलः सोढः ।

कार्याण्येव गुरुकाणि मातुलानि को बल्लभः कस्य ॥]

दिट्ठेति । मन्मथोन्मादहेतव आघ्राङ्कुरा दृष्टाः । वसन्ते कान्तेन सह पानकेलिशी-
लनार्थं परिष्कृतायाः सुराया गन्धोऽनुभूतः । मलयानिलः सोढः । अतः कार्याण्येव
गुरुकाणि । दुःखैकभागिन्या मम जीवितस्य एतान्येव महान्ति प्रयोजनानि । एतदनु-
भवश्रमेव हतजीवितं न लजामि । तथा च कः कस्य बल्लभः । येनाद्यापि तद्विरहे
जोषार्मात्यात्मानं प्रति निर्वेदो व्यज्यते । यद्वा कार्याण्येव गुरुकाणीति युवत्यन्तरसमा-
गमं सूचयन्त्याः स्वयंदूत्या उक्तिरिति कश्चित् । कार्याण्येव तस्य बहुमतानि कथमन्यथा
वरान्तोऽपि नागत इति भावः । किं च बाल्लभ्यमपि कार्यनिबन्धनं न तु स्वभावसिद्धमि-
त्यभिप्रेत्याह—को बल्लभः कस्येति । तथैव सनिहितया तस्य प्रयोजनं न तु व्यवहितया
मयेति बल्लभं प्रत्यसूया व्यज्यते । नायकान्तरविमोहनाय स्वनायके वैराग्यं सूचयन्त्याः
स्वयंदूत्या उक्तिरियमिति कश्चित् ॥

१. 'वेष्टन' इति क-ख-पाठः. २. 'सूआ' इति ग-पाठः. ३. 'नूता' इति
घ-पाठः. ४. 'भागिनि' इति ग-पुस्तके, 'मातुलि' इति च घ-पुस्तके पाठः.

सदा संनिहितपतिके न त्वमभिज्ञासि प्रवासगतप्रियप्रेमनिर्भरसुरतविलसितानामिति
सहयोक्ता स्वाधीनभर्तृका तामाह—

रमिऊण पअं पि गओ जाहे उँवऊहिउं पडिणिउत्तो ।

अह अं पैउत्थपइआ व्व तक्खणं सो पवासि व्व ॥ ९८ ॥

[रिंत्वा पदमपि गतो यदोर्पेगूहितुं प्रतिनिवृत्तः ।

अहं प्रोषितपतिकेव तत्क्षणं स प्रवासीव ॥]

रमिऊणेति । मानं धत्स्वेति बोधयन्तीं सखीं प्रति स्वस्य मानासाम् अर्थ्यं प्रकाशयन्त्या
नायिकाया उक्तिरिति कश्चित् ॥

कस्मिन्नपि यूनि जाताभिलाषा कुलटा निजपतिं प्रति वैराग्यं व्यञ्जयन्ती तमाह—

अँविइहूपेच्छणिज्जं समसुहदुःखं विइण्णसवभावम् ।

अण्णोण्णहिअअलग्गं पुण्णेहिँ जणो जणं लहइ ॥ ९९ ॥

[अवितृष्णप्रेक्षणीयं समसुखदुःखं वितीर्णसद्भावम् ।

अन्योन्यहृदयलग्नं पुण्यैर्जनो जनं लभते ॥]

अवीति । मम त्वकृतपुण्यायाः कुत एवविधप्रियप्राप्तिरित्याशयः । मन्दस्नेहस्य पत्यु-
व्रत्तमनुकूलयितुं पतिव्रताया इयमुक्तिरिति कश्चित् ॥

कथं दुःखप्रदेऽपि पत्यौ न विरक्तासीति भेदयन्तीं दूतीं प्रत्याख्यातुं पतिव्रता पत्या-
नुरागातिशयमाह—

दुःखं देन्तो वि सुहं जणेइ जो जस्स वल्लहो होइ ।

दइअणहर्दूणिआणं वि वडुइ थंणाणँ रोमञ्चो ॥ १०० ॥

[दुःखं दददपि सुखं जनयति यो यस्य वल्लभो भवति ।

दयितनखर्दूनयोरपि वर्धते स्तनयो रोमाञ्चः ॥]

१. 'अवऊहिउं पडिणिउत्तो' इति ग-पाठः. २. 'पडल्लवइअव्व' इति ग-पाठः.
'रमित्वा' इति ग-पुस्तके, 'रमित्वा' इति च घ-पुस्तके पाठः. ४. 'अवगूहितु' इति
ग-पाठः. ५. 'प्रतिनिवर्तमानः' इति ग-पाठः. ६. 'अथाहं' इति ग-पाठः. ७. कुल-
देवस्त्वस्या गाथायाः प्राक् 'धण्या बहिरा अन्वा ते व्विअ जीअन्ति म्माणुसे लोए ।
णन्ति पिसुणवअण खलाण ऋद्धि ण पेक्खन्ति ॥' [धन्या बहिरा अन्धास्त एव
नेत मानुषे लोके । न शृण्वन्ति पिशुनवचन खलानामृद्धि न प्रेक्षन्ते ॥]' इत्येकां
मधिका पठति । घ-पुस्तकेऽप्यस्या गाथाया 'धन्या बहिरा—' इत्यादिच्छाया
८. 'दुम्मिआण' इति ग-पाठः. ९. 'धणआण' इति ग-पाठः. १० 'दुमैनस्क-
' इति ग-पाठः. घ-पुस्तके 'दु ख दददपि—' इत्यादिगाथाछाया द्वितीयशतकप्रा-
लिखितास्ति.

रसिअजणहिअअदइए कइवच्छलपमुहसुकइणिम्मविए ।
सत्तसअम्मि समत्तं पढमं गाहासअं एअं ॥ १०१ ॥

[रसिकजनहृदयदयिते कविवत्सलप्रमुखसुकविनिर्मिते ।
सप्तशतके समाप्तं प्रथमं गाथाशतकमेतत् ॥]

द्वितीयं शतकम् ।

मानमवलम्ब्य पत्युरनुनयमुख तावदनुभवेति स्वसखीं शिक्षयेति वदन्ती कामपि
स्वी मपरिहासमाह—

धरिओ धरिओ विअलइ उअएसो पिहसहीहिँ दिज्जन्तो ।
मअरद्धवाणपहारजैज्जरे तीएँ हिअअम्मि ॥ १ ॥

[धृतो धृतो विगलत्युपदेशः प्रियसखीभिर्दीयमानः ।
मकरध्वजवाणप्रहारजर्जरे तस्या हृदये ॥]

धृतो धृतः पुनः पुनर्धृतः । विगलति नावतिष्ठते ॥

नदीनटनिकुञ्जे दत्तसकेतेन कान्तेन विप्रलब्धा नायिका तत्रात्मगुम्फने नदीपूरेण संके-
तमनाः स्त्रीजातेश्च प्रेमानुबन्धदार्यं जार प्रति श्रावयन्ती स्वसखीमाह—

तडसंठिअणीडेकन्तपीलुआरक्खणेक्कदिण्णमणा ।
अगणिअविणिवाअभआ पूरेण समं वहइ काई ॥ २ ॥

[नटमस्थितनीडैकान्तशावकरक्षणैकदत्तमनाः ।

अगणितविनिपातभया पूरेण समं वहति काकी ॥]

नटमंस्थितस्य नीडस्यैकान्ते विद्यमाना ये शावकास्तेषां रक्षणे दत्तं मनो यया एता-
न्ती काकी अगणितविनिपातभया तरुणा सहैवानन्तरभावि स्वस्य मज्जनमगणयन्ती सती
पूरेण नवजन्तैर्धेन सम वहति ॥

१ कुलबालदेवस्तु अस्मिन्नेव शतके वर्तमानामेकपञ्चाशत्संख्याकाम् 'ति णमह जस्स
परच्छे-' इत्यादिगाथामत्र द्वितीयशतकारम्भे मङ्गलाचरणत्वेन पठति. २. 'धरिअ धरि-
ओ वि' इति क-पुस्तके, 'धिरिअ धिरिअ' इति च ख-पुस्तके पाठः. ३. 'जज्जरिए' इति
क-पाठः. ४ घ-पुस्तके 'धृतो धृतो-' इत्यादिगाथाच्छायानन्तरं 'करयुगगृहीतयगो-
दाननभरनिवेशिताधरदलस । संस्मृतपाञ्चजन्यस्य नमत कृष्णस्य रोमाञ्चम् ॥' इय
गाथाच्छायाविक्रान्ति. ५. 'पीलुकरक्षणैक' इति ग-पाठः. 'पीलुकः शावकः' इति
कुलबालदेवः. ६. 'विनिपातभरा' इति घ-पुस्तकपाठः.

मधूकपुष्पावचयव्याजेन कृताभिसारा कुलटा जारं प्रत्यात्मनश्चिररताभिलाषं सूचय-
न्ती मधूकतरुमाह—

बहुपुष्पभरोणामिअभूमीगअसाह सुणसु विण्णत्तिम् ।

गोलातटविअडकुडङ्गमहुअ सणिअं गलिज्जासु ॥ ३ ॥

[बहुपुष्पभरावनामितभूमीगतशाख शृणु विज्ञप्तिम् ।

गोदातटविकटनिकुञ्जमधूक शनैर्गलिष्यसि ॥]

बहुपुष्पभरेणावनमिता भूमिगताः शाखा यस्येति मधूकविशेषणम् । शनैः क्रमेण ग-
लिष्यसीत्यनेन चिरं मया ते सगमो भविष्यतीति सूचितम् ॥

कस्याश्चिन्मधूककुसुमावचयप्रसङ्गेन मधूकतरुसमीपनिकुञ्जः संकेतस्थानमासीत् । स
च क्रमेण कुसुमापगमे सति भग्न इति परिशिष्टकुसुमावचय कुर्वती रुदतीं दृष्ट्वा नाग-
रिकः सहचरमाह—

णिप्पच्छिमाइँ असई दुःखालोआइँ महुअपुँफ्फाइँ ।

चीए बन्धुस्स व अट्टिआइँ रुअईँ समुच्चिणइ ॥ ४ ॥

[निष्पश्चिमान्यसती दुःखालोकानि मधूकपुष्पाणि ।

चितायां बन्धोरिवास्थीनि रोदैनशीला समुच्चिनोति ॥]

निष्पश्चिमानि परिशिष्टानि । दुःखालोकानि तदवचयव्याजलभ्यजारसमागमस्य
तदपाये दुर्लभत्वादिति भावः ॥

नायकस्यास्थिरप्रेमतया तद्वचनमस्वीकुर्वतीं नायिकामभिसुखीकर्तुं कश्चिद्विदग्ध
आह—

ओ ह्मिअअ मडहसरिआजलरअहीरन्तदीहदारु व्व ।

ठाणे ठाणे व्विअ लग्गमाण केणावि डञ्जिहसि ॥ ५ ॥

[हे १ हृदय स्वल्पसरिज्जलरयहियमाणदीर्घदारुवत् ।

स्थाने स्थाने एव लगत्केनापि धक्ष्यसे ॥]

स्वल्पसरितो जलरयेण हियमाणं काष्ठं यथा स्थले स्थले लगत्केनापि दह्यते तथा
एवमपि कस्यामपि सुभगायां लग्नं सत्तया क्षणविरहेणापि लक्ष्यस इत्यर्थः । एतेना-
भेमतजनाप्राप्त्या ममास्थिरस्नेहत्वम्, न तु दुर्विदग्धत्वादिति ध्वनितम् । मडहशब्दः
स्वल्पवाचकः ॥

१. 'शनैर्न गलिष्यसि' इति घ-पाठः. २. 'उप्फाइँ' इति क-ख-पाठः. ३. 'रुदती'
ति ग-पाठः. ४. 'हा हृदय' इति घ-पाठः. ५. 'क्षुद्रनदी' इति ग-पाठः.

बन्धुजनं प्रति सख्याः सौभाग्यं काचिदाह—

जो 'तीएँ अहरराओ रत्ति उव्वासिओ पिअअमेण ।

सो विवअ दीसइ गोसे सवत्तिणअणेसु संकन्तो ॥ ६ ॥

[यस्तस्या अधररागो रात्राबुद्धासितः प्रियतमेन ।

स एव दृश्यते प्रातः सपत्नीनयनेषु संक्रान्तः ॥]

गोसे प्रातः । तथाविधाधरदर्शनजनितेर्ध्या सपत्नीनयनेष्वरुणिमोदयादिति भावः । ए-
कस्याः सौभाग्यवर्णनेन तत्सपत्नीना मुखसाध्यत्वं मूचयन्त्या दूत्या इयमुक्तिरिति कश्चिन् ॥

हलिकवन्वाः पतिलेहपरीक्षोपायं दर्शयन्ती काचित्स्वर्षी शिक्षयितुमाह—

गोलाअडट्टिअं पेछिऊण गहवइमुअं हलिअसोह्वा ।

आढत्ता उत्तरिउं दुँःखुत्ताराएँ पअवीए ॥ ७ ॥

[गोदावरीतटस्थितं प्रेक्ष्य गृहपतिमुतं हलिकसुषा ।

आरब्धा उत्तरीतु दुँःखोत्ताराया पदव्या ॥]

किमय मामवलम्बते न वेति जिज्ञासया विषममार्गेणावतरीतुमारब्धेत्यर्थः ॥

अभिलषितनायकं प्रलोभयितु तं प्रत्यात्मसौभाग्यं श्रावयन्ती कापि मरीमाह—

चलणोआसणिसण्णस्स तस्स भग्गिओ अणालवन्तस्स ।

पाअङ्कुटावेट्टिअकेसदिढाअडुणमुँहेल्लिम् ॥ ८ ॥

[चरणावकाशनिषण्णस्य तस्य स्वरामोऽनालपतः ।

पादाङ्कुटावेष्टितकेशदृढाकर्षणसुखम् ॥]

प्रणयकोपेनानुनयमगृह्णन्त्या मम चरणावकाशे निषण्णस्य तस्य मदीयपादाङ्कुटेना-
वेष्टितानां केशानां दृढाकर्षणेन जातं यत्सुखं तत्स्वराम इत्यर्थः ॥

सकेतस्थाने जारं प्रति पथिकस्यावस्थितिं श्रावयन्ती कुलटा मरीमाह—

फालेइ अच्छभल्लं व उअह कुग्गामदेउलद्वारे ।

हेमन्तआलपहिओ विञ्झाअन्तं पलालग्गिम् ॥ ९ ॥

[पाटयत्यच्छभल्लमिव पश्यत कुग्रामदेवकुलद्वारे ।

हेमन्तकालपथिको विर्ध्नीयमानं पलालाग्निम् ॥]

१. 'तीअ' इति ख-ग-पाठः २. 'प्रभाते दृश्यते' इति घ-पाठः. ३. 'आरद्वा' इति ग-पाठः. ४. 'दुक्खुत्ताराइ' इति ख-ग-पाठः. ५. 'अवतरितुं' इति घ-पुस्तके, 'उत्तर्तुं' इति च ग-पुस्तके पाठः. ६. 'दुःखोत्तारायाः पदव्याः' इति घ-पाठः. ७. 'सुहम्' इति क पाठः. ८. 'सुखकेलिम्' इति ग-पाठः. ९. 'वुञ्झाअन्तं' इति ग-पाठः. १०. 'निर्वा-
प्यमाणं' इति ग-पुस्तके, 'निर्वातं' इति च घ-पुस्तके पाठः.

च्छमलो भङ्कः । पाठ्यमानस्य पलालक्षारकूटस्य बहिः श्यामत्वात् अन्तश्च
ताकारवहिसंबन्धाद्भङ्कसाम्यं बोध्यम् ॥

।मतडागसमीपनिभृतदेशे दत्तसंकेतेन जारेण विप्रलब्धा विमलजलानयनच्छलेना-
।।ते तत्रात्मगमनं तं प्रति श्रावयन्ती तत्र दृष्टाद्भुतकथनच्छलेन पितृभगिनीमाह—

कमलाअरा ण मलिआ हंसा उड्ढाविआ ण अ पिउच्छा ।

केणोवि गामतडाए अब्भं उत्ताणअं व्वूढम् ॥ १० ॥

[कमलाकरा न मृदिता हंसा उड्ढायिता न च पितृष्वसः ।

केनापि आमतडागे अभ्रमुत्तानितं क्षिप्तम् ॥]

।लजलप्रतिबिम्बितस्याकाशस्योत्तानतया भानादियमुत्प्रेक्षा ॥

।प्रवासं श्रुत्वा विमनस्कां गृहकृत्यपराङ्मुखी वधूं प्रति श्वश्रूरुपालम्भच्छलेनाह—

केण मणे भग्गमणोरहेण संलाविअं पवासो त्ति ।

सविसाईं व अलसाअन्ति जेण बहुआएँ अङ्गाईं ॥ ११ ॥

[केन मन्ये भग्गमनोरथेन संलापितं प्रैवास इति ।

सविषाणीवालसायन्ते येनै वध्वा अङ्गानि ॥]

।पतिप्रवासवात्तश्रवणेन विमनस्कायाः प्रोष्यत्पतिकायाः पत्यावनुरागातिशयं
।यन्ती दूती तस्या असाध्यतां जार प्रति सूचयतीति बोध्यम् ॥

।सखीमिद्धिताकारगोपनं शिक्षयितुं गोपीनां कृष्णतारुण्यानुभवामिव्यञ्जकहसि-
।।ह—

अज्जवि वालो दामोअरो त्ति इअ जम्पिए जसोआए ।

कह्मुहपेसिअच्छं णिहुणं हसिणं वअवहूहिं ॥ १२ ॥

[अद्यापि वालो दामोदर इति जल्प्यते यशोदया ।

कृष्णमुखप्रेषिताक्षं निभृतं हसितं व्रजवधूमिः ॥]

।मूतविविधसुरतविमर्दे कृष्णे अस्य वचनस्यासंबद्धान्तरत्वेन हास्यहेतुत्वाज्जातोऽपि
।।गध्यान्न प्रकाशित इति भावः ॥

।तलाए अब्भं उत्ताणअ' इति ख-पाठः. २. 'उत्तानकं' इति ग-पाठः.
।विअं' इति ग-पाठः. ४. 'अग्रे प्रवासीति' इति घ-पाठः. ५. 'येन' इति घ-पु-
।स्त. ६. 'इति किल जल्पित यशोदायै' इति घ-पाठः. ७. 'प्रहिताक्षं' इति

कापि सज्जनस्तुतिव्याजेन दृढत्वेहानुवृत्त्यर्थं नायकमाह—

ते विरला सप्पुरिसा जाण सिणेहो अहिण्णमुहराओ ।

अणुदिअहवड्डमाणो रिणं व पुत्तेसु संकमइ ॥ १३ ॥

[ते विरलाः सत्पुरुषा येषां स्नेहोऽभिन्नमुखरागः ।

अनुदिवसवर्धमानो ऋणमिव पुत्रेषु संक्रामति ॥]

अभिन्नेति । आदिमध्यान्तेषु तुल्यमुखप्रसाद इत्यर्थः ॥

कापि जनसमक्षमुद्भटभावा सखी शिक्षयितुं कृष्णानुरक्तगोप्या वैदग्ध्यमाह—

णच्चणसलाहणणिहेण पासपरिसंठिआ णिउणगोवी ।

सँरिसगोविआणँ चुम्बइ कवोलपडिमागअं कह्म ॥ १४ ॥

[नर्तनश्लाघननिभेनं पार्श्वपरिसंस्थिता निपुणगोपी ।

सँदशगोपीनां चुम्बति कपोलप्रतिमागतं कृष्णम् ॥]

नर्तनेति सम्यङ् नृत्यतीति कर्णे कथनव्याजेनेत्यर्थः ॥

कापि कान्तगमनाक्षेपार्थं वर्षागममाह—

सव्वत्थ दिँसामुहपसँरिएहिँ अण्णोण्णकडअलग्गोहिँ ।

छलिँ व्व मुअइ विञ्झो मेहेहिँ विसंघडन्तेहिँ ॥ १५ ॥

[सर्वत्र दिशामुखप्रसृतैरन्योन्यकटकलत्रैः ।

छल्लीमिव मुञ्चति विन्ध्यो मेघैर्विसंघटमानैः ॥]

अन्योन्य कटके पर्वतनितम्बे लत्रैर्विसंघटमानैर्विशिष्यद्भिः । छल्ली वल्कलम् । त्वचमिति यावत् । 'छल्ली वीरुधि संताने वल्कले कुसुमान्तरे' इति मेदिनीकोषः ॥

तथैवापरगाथामाह—

आलोअन्ति पुलिन्दा पव्वअसिहरट्टिआ धँनुणिसण्णा ।

हत्थिउलेहिँ व विञ्झं पूरिज्जन्तं णवव्वभेहिँ ॥ १६ ॥

[आलोकयन्ति पुलिन्दाः पर्वतशिखरस्थिता धँनुर्निषण्णाः ।

हस्तिकुलैरिव विन्ध्यं पूर्यमाणं नवात्रैः ॥]

१. 'ऋणं' इति ग-पाठः. २. 'पुत्रे' इति घ-पाठः. ३. 'गोपी' इति ख-पाठः.
 ४. 'सरिगोविआण' इति क-ख-पाठः. ५. 'व्याजेन' इति ग-पाठः. ६. 'परिष्ठिता' इति ग-पुस्तके, 'परिस्थिता' इति च घ-पुस्तके पाठः. ७. 'सदृग्गोपीनां' इति घ-पाठः.
 ८. 'दिम्मुह' इति ग-पाठः. ९. 'सर्वदिशामुखप्रसृतै' इति घ-पुस्तके, 'सर्वत्र दिञ्जुखप्रसारिभिः' इति च ग-पुस्तके पाठः. १०. 'कञ्चुकमिव' इति ग-पुस्तके, 'त्वचमिव' इति च घ-पुस्तके पाठः. ११. 'घणुम्मि णिसण्णा' इति क-पाठः. १२. 'अध्वनि निषण्णाः' इति घ-पाठः.

पुलिन्दाः शबराः । धनुषि निषण्णाः क्षितितलनिहिताटनीकं धनुरवलम्ब्य स्थिताः
सन्तो वर्णध्वनिमहत्त्वादिना हस्तिकुलसदृशैर्नवमेघैः पूर्यमाणं विन्ध्यं पश्यन्तीत्यर्थः ।
शबराणां पर्वतशिखरेऽवस्थानात् विन्ध्यवनेऽभिसारभयं प्रतिपादयन्त्या नायिकाया जारं
प्रतीयमुक्तिरिति केचित् ॥

प्रोषितभर्तृकामाश्वासयन्ती सखी पथिकागमनयोग्यं वर्षालयमाह—

वणद्वमसिमइलङ्गो रेहइ विञ्झो गणोहिँ धवलेहिँ ।

खीरोअमन्थणुच्छलिअदुद्धसित्तो व्व महुमहणो ॥ १७ ॥

[वनद्वमषीमलिनाङ्गो राजते विन्ध्यो घनैर्धवलैः ।

क्षीरोदमथनोच्छलितदुग्धसित्त इव मधुमथनः ॥]

वनद्वेत्यादिविशेषणेन तृणकण्टकादिदाहाद्वर्त्मनः सुगमता दर्शिता । धवलैरिति ज-
लापायादिति भावः ॥

कस्मिन्नप्युज्ज्वलवेषे पुंसि जायायाश्चक्षुःप्रीतिमुपलभ्य कुपितं नायक बोधयितु वि-
नापि सुरतेच्छा चक्षुरागो भवत्येवेति सखी निदर्शयितुमाह—

वन्दीअ णिहअबन्धवविमणाइ वि पँकलो त्ति चोरजुआ ।

अणुराएण पलोइऔं गुणेषु को मच्छरं वहइ ॥ १८ ॥

[वन्धा निहतबान्धवविमनस्कयापि प्रवीर इति चोरयुवा ।

अनुरागेण प्रैलोकितो गुणेषु को मत्सरं वहति ॥]

निहतबान्धवत्वेन विमनस्कयापि वन्धा चोरयुवा प्रवीर इति हेतोरनुरागेण प्रलो-
कितः । गुणानुरागादालोकितवती, ननु सुरताभिलाषादिति भावः ॥

नायकान्तरं प्रत्यसाध्यत्वं सूचयन्ती दूती व्याधवधूसौभाग्यं वर्णयति—

अज्ज कइमो वि दिअहो वाहवहू रूवजोव्वणुम्मत्ता ।

सोहग्गं धँणुहँम्पच्छलेण रच्छासु विकिरइ ॥ १९ ॥

[अद्य कतमोऽपि दिवसो व्याधवधू रूपयौवनोन्मत्ता ।

सौभाग्यं धँनुस्तष्ट्वक्छलेन रथ्यासु विकिरति ॥]

सततसुरतासत्तिकृतदौर्बल्यादाकष्टमशक्यत्वात्कृतावतक्षणस्य धनुषस्त्वक्छलेन सौ-

१. 'छीरोअ' इति ग-पाठः. २. 'एक्कलो' इति क-पाठः. 'पक्कल' इति ग-पाठः.
'पक्कलशब्दो दर्पवति यूनि वर्तते' इति कुलबालदेवः. ३. 'विलोकितो' इति ग-पुस्तके,
'विलोमितो' इति च घ-पुस्तके पाठः. ४. 'धनूरम्पच्छलेन' इति ग-पाठः. 'रम्पशब्दः
कच्छे वर्तते' इति कुलबालदेवः. ५. 'रम्प' इति ग-पाठः. ६. 'धनुस्तक्षण' इति घ-पाठः.

भाग्यं विकिरतीत्यर्थः । रम्पशब्देन तत्क्षणप्रभवसूक्ष्मत्वगुच्यते । अतिसुरतासक्तं मित्रं प्रति तन्निवृत्त्यर्थं सहचरोक्तिरिति कश्चित् ॥

तमेवार्थं भङ्ग्यन्तरेणाह—

उक्त्विखण्डमण्डलिमारुण गेहङ्गणाहि वाहीए ।

सोहृगगधअवडाअ व्व उअह धणुरुम्परिञ्छोली ॥ २० ॥

[उत्क्षिप्यते मण्डलीमारुतेन गेहाङ्गणाद्वाधस्त्रियाः ।

सौभाग्यध्वजपताकेव पश्यत धेनुःसूक्ष्मत्वक्पङ्क्तिः ॥]

मण्डलीमारुतेन वातमण्डल्या । सौभाग्यमेव ध्वजस्तस्य पताकेव । आत्मनो विज्ञ-
त्वख्यापनार्थं नागरिकस्य सहचरं प्रतीयमुक्तिरिति कश्चित् ॥

अनुक्तमप्यर्थं लिङ्गदर्शनाज्जनो जानातीति दर्शयन्ती काचित्सखीमिङ्गितरक्षणार्थमाह—

गअगण्डत्थलगिहसणमअमइलीकअकरञ्जसाहाहिं ।

एत्तीअ कुलहराओ णाणं वाहीअ पइमरणम् ॥ २१ ॥

[गजगण्डस्थलनिघर्षणमदमलिनीकृतकरञ्जशाखाभिः ।

आगच्छन्त्या कुलगृहाज्जातं व्याधस्त्रिया पतिमरणम् ॥]

गजानां गण्डस्थलनिघर्षणे सति मदेन मलिनीकृताभिरित्यर्थः । कुलगृहात्पिनृगृहात् । पतिभयेन पलायितानां गजानां पुनरागमनस्य पतिमरणाव्यभिचारित्वेन पतिमरणमनु-
मितमित्यर्थः । नायिकान्तरासक्तस्य पूर्ववद्गजमारणसामर्थ्याभावात्पतिर्मेरिष्यतीति नि-
श्चितमित्यर्थं इति कश्चित् ॥

पूर्वप्रियाप्रेमानुवृत्तिशिक्षार्थं नागरिकः सहचरं प्रति कस्यचिद्वाधस्य दक्षिणनाय-
कतां वर्णयति—

णववहुपेम्ममतणुइओ पणअं पढमघरणीअ रक्खन्तो ।

आलिहिअदुप्परिअल्लं पि णेइ रण्णं धणुं वाहो ॥ २२ ॥

१. 'धणुहरोरम्प' इति ग-पाठः. २. 'मारुतैः' इति घ-पाठः. ३. 'गृहाङ्गणाद्वा-
ध्याः' इति ग-पुस्तके, 'गेहाङ्गणाद्वाह्यात्' इति च घ-पुस्तके पाठः. ४. 'पश्यत' इति
ग-पुस्तके नास्ति. ५. 'धनुर्मनोरम्परिञ्छोली' इति ग-पुस्तके, 'पश्य धनुस्तक्षणरि-
ञ्छोली' इति च घ-पुस्तके पाठः. ६. 'आगत्य' इति घ-पाठः. ७. 'व्याधवध्वा' इति
ग-पुस्तके, 'व्याध्या' इति च घ-पुस्तके पाठः. ८. 'अलिहिअदुप्परिअल्लं' इति
ख-पाठः.

[नववधूप्रेमैतनूकृतः प्रणयं प्रथमगृहिण्या रक्षन् ।
तैनूकृतदुराकर्षमपि नयत्यरण्यं घनुर्व्याधः ॥]

तक्षणादिना तनूकृतमपि दुराकर्षमित्यर्थः । प्रथमगृहिण्याः साभ्यत्वं सूचयितुं चार
प्रति दूत्या उक्तिरियमिति कश्चित् ॥

सुभगां प्रति कथमपि कुपितस्य प्रियस्य पुनः पुनः सप्रतिज्ञं यत्तत्संगमोपेक्षावचनं
तस्यासंबद्धान्यत्वेन हास्यैकहेतुतामपरा तन्महिला सोपालम्भमाह—

हासाविओ जणो सामलीअ पढमं पसूअमाणए ।

वहहवौएण अलं मम त्ति बहुसो भणन्तीए ॥ २३ ॥

[हासितो जनः श्यामया प्रथमं प्रसूयमानया ।

वह्मवौदेनालं ममेति बहुशो भणन्त्या ॥]

यथा श्यामया वरस्त्रिया प्रथमं प्रसूयमानया वह्मभसमागमस्य प्रसवदुःखहेतुत्वाद्वह्म-
वादेन वह्मभाभिधानेन । वह्मभस्य नामग्रहणेनापीति यावत् । ममाल नास्ति प्रयोजन-
मिति बहुशो भणन्त्या पुनः प्रियोपगमाल्लोको हासितस्तथा तवापीदं वचनमिति भावः ॥

अकैतवे प्रियेऽलमलीकप्रसक्तिशङ्कयेत्याश्वासयन्तीं मातुलानीं प्रोषितभर्तृका सति-
वेदमाह—

कैअवरहिअं पेम्मं णत्थि त्विअ मामि माणुसे लोए ।

अह होइ कस्स विरहो विरहे होत्तम्मि को जिअइ ॥ २४ ॥

[कैतवरहितं प्रेम नास्त्येव मातुलानि मानुषे लोके ।

अथ भवति कस्य विरहो विरहे भवति को जीवति ॥]

भवति जायमाने । कथमन्यथा तद्विरहेऽप्यह जीवामि स च मा परित्यज्य तिष्ठ-
तीति भावः ॥

कस्याश्चिद्भीष्टनायिकायाः स्नानावसरेऽङ्गप्रक्षालनार्थं वह्मपरिवर्तनोद्धाटितावयवदर्श-
नेन तृप्तः कामिनीजनमनोहरणार्थमात्मनः कामुकत्वातिशयं कश्चिदाह—

अच्छेरं व णिहिं विअ सग्गे रज्जं व अमअपाणं व ।

आसि म्ह तं महुत्तं विणिअंसणदंसणं तीए ॥ २५ ॥

१. 'प्रेम्णा' इति ग-पाठः. २. 'अलिखितदुरा-' इति ग-घ-पाठः. 'अलिखितमत-
नूकृतम्' इति कुलबालदेवः. ३. 'राएण' इति ग-पाठः. ४. 'श्यामलया' इति घ-
पाठः. ५. 'रागेणालं' इति ग-घ-पाठः. ६. 'भगिनि' इति ग-पुस्तके, 'मातुलि'
इति च घ-पुस्तके पाठः. ७. 'भवत्यपि' इति ग-पाठः. ८. 'आसं ह' इति ग-पाठः.

[आश्चर्यमिव निधिमिव स्वर्गे राज्यमिवामृतपानमिव ।

आसीदस्माकं तन्मुहूर्तं विनिर्वसनदर्शनं तस्याः ॥]

अस्माकं तस्यास्तद्विनिर्वसनदर्शनम् । विवध्नायास्तस्या आलोकनमिति यावत् । मुहूर्तमात्रं नेत्रोल्लासहेतुत्वादाश्चर्यमिव । परमसुखहेतुत्वान्निधिमिव । निधिरिवेत्यर्थः । प्राकृते लिङ्गविभवत्यादेरनियमात् । निधीश्वरत्वलाभात्स्वर्गराज्यमिव । अतिशयिततृप्तिकारित्वान्मदनानलक्लान्तसकलशरीरनिर्वृतिकरणाच्चामृतपानमिवासीदित्यर्थः ॥

आत्मन्यनुरागं सपत्न्या च विद्वेषमुत्पादयितुं काव्यस्थिरप्रेमाण नायिकान्तरासक्तं नायकमाह—

सा तुज्झ वल्लहा तं सि मज्झ वेसो सि तीअ तुज्झ अहम् ।

वालअ फुडं भणामो पेम्मं किर बहुविआरं त्ति ॥ २६ ॥

[सा तव वैल्लभा त्वमसि मम द्वेष्योऽसि तस्यास्तवाहम् ।

वालक स्फुटं भणामः प्रेम किल्लं बहुविकारमिति ॥]

त्वमसि मम वल्लभा इति विपरिणतानुषङ्गः । तवाहमित्यत्रापि द्वेष्येति विपरिणतानुषङ्गः । बालक उचितानभिज्ञ । बहुविकारमिति प्रकृतिभेदेन बहुप्रकारमित्यर्थः । अनुरक्तां मा विहायाननुरक्तायां तस्यामासक्तिस्तव रसाभासावहेति भावः ॥

पत्युर्वैदग्ध्यमात्मनश्च सौभाग्यविनयादिगुणं सूचयन्ती स्वाधीनभर्तृका प्रसाधिकामाह—

अहं लज्जालुइणी तस्स अ उम्मच्छराइं पेम्माइं ।

सहिआअणो विं णिउणो अलाहि किं पाअराएण ॥ २७ ॥

[अहं लज्जालुस्तस्य चोन्मत्सराणि प्रेमाणि ।

सखीजनोऽपि निपुणोऽर्पगच्छ किं पादरागेण ॥]

उन्मत्सराण्युद्गतानि । उदरालक्तकादिष्वव्याजप्रवृत्तानीत्यर्थः । सखीजनश्च निपुणः । किञ्चिद्द्विहात्रेण लक्ष्यतीत्यर्थः । अलाहिशब्दो निवारणे । अपगच्छेत्यर्थः । किं पादरागेणेति चरणयोरारुण्यस्य स्वतःसिद्धत्वात् । उदरादिषु चरणचिह्नोदयहेतुना लाक्षारसेन किं प्रयोजनमिति भावः ॥

१. 'विनिर्वसन' इति घ-पाठः. २. 'वल्लभा मम त्वं द्वेष्योऽसि' इति ग-पुस्तके, 'वल्लभा त्वमसि मम प्रियस्त्वमसि तस्या' इति च घ-पुस्तके पाठः. ३. 'खलु विकारमिति' इति घ-पाठः. ४. 'अहं अ' इति ग-पाठः. ५. 'अ' इति ग-पाठः. ६. 'अहं च' इति ग-पाठः. ७. 'लज्जालुकिनी' इति घ-पाठः. ८. 'अलाभि' इति घ-पाठः.

अरण्ये दत्तसंकेताया गोप्या विरहपीडां संकेतस्थानगमनं च सूचयन्ती दूती जारं प्रत्याह—

मधुमासमारुआहमहुअरझंकारणिञ्भरे रण्णे ।

गाअइ विरहक्खरॉबद्धपहिअमणमोहणं गोवी ॥ २८ ॥

[मधुमासमारुताहतमधुकरझंकारनिर्भरेऽरण्ये ।

गायति विरहाक्षरबद्धपथिकमनोमोहनं गोपी ॥]

मधुमासमारुतेन दक्षिणानिलेनाहते मधुकरझंकारैः पूरिते अरण्ये विरहाभिव्यञ्जकै-
रक्षरैराबद्धत्वात्पथिकमनोमोहनं यथा भवति तथा गोपी गायति । अस्मद्वनितानामपी-
दश क्लेशो भविष्यतीति पथिकानां मोहो भवतीति भावः । गृहगमनाय पथिकान्तर
त्वरयितुं पथिकस्येयमुक्तिरिति केचित् ॥

कलहान्तरिताया निष्कारणमानग्रहनिन्दाछलेन दूती जारस्यागमनावसरमाह—

तह माणो माणधणाएँ तीअ एमेअ दूरमणुबद्धो ।

जह से अणुणीअ पिओ एकग्गाम विवय पउत्थो ॥ २९ ॥

[तथा मानो मानधनया तैया एवमेव दूरमनुबद्धः ।

यैथा तस्या अनुनीय प्रिय एकग्राम एव प्रोषितः ॥]

एवमेव कारणं विनैव । एकग्रामे विद्यमानस्यापि प्रियादर्शनाभावात्प्रवाम एवेति
भावः ॥

विदग्धाः पत्युः परवनितासक्तिमुपायेन वारयन्तीति कापि सखीं शिक्षयितुमाह—

सालोए विवअ सूरै घरिणी घरसामिअस्स घेत्तूण ।

णेच्छन्तस्स वि पाए धुअइ हसन्ती हसन्तस्स ॥ ३० ॥

[सालोक एव सूर्ये गृहिणी गृहस्वामिनो गृहीत्वा ।

अनिच्छतोऽपि पादौ धावति हसती हसतः ॥]

असमय एव पादप्रक्षालनादन्यस्त्रीसमीपगमनप्रतिषेधे गृहिण्यास्तात्पर्यमवगल्य हसतो
गृहस्वामिनः पादौ गृहिणी विदिताभिप्रायाहमनेनेति हसती सती प्रक्षालयतीत्यर्थः ॥

१. 'बद्ध' इति घ-पाठः. २. 'माणहणाए' इति ग-पाठः. ३. 'मानहताया इत्थमेव'
इति ग-पाठः. ४. 'तस्या मे अदूरमनुबद्धः' इति घ-पाठः. ५. 'यथास्या' इति ग-घ-
पाठः. ६. 'गृहस्वामिकस्य' इति ग-पाठः. ७. 'धावयति' इति ग-पुस्तके, 'प्रक्षालयति'
इति च घ-पुस्तके पाठः. ८. 'हसन्ती हसमानस्य' इति घ-पाठः.

अन्यस्त्रीनाम्ना व्यवहरन्तं कान्तं प्रति किं ते दृष्टवल्मपि क्षीणमिति न शर्त्ता सरा
निवारयन्ती खण्डिता सविनयोपालम्भमाह—

वाहरउ मं सहीओ तिरसा गोत्तेण किं त्थ भणिण्ण ।

थिरपेम्मा होउ जहिं तैहिं पि मा किं पि णं भणह ॥ ३१ ॥

[व्याहरतु मां सख्यस्तस्या गोत्रेण किमत्र भणितेन ।

स्थिरप्रेमा भवतु यत्र तत्रापि मा किमप्येनं भणत ॥]

गोत्रेण नाम्ना । 'गोत्र तु नात्रि च' इत्यमरः ॥

दुष्टदूतीप्रत्याख्यानार्थं कापि साध्वी प्रोषितभर्तृका दैवोपालम्भच्छ्लेनात्मनः पला-
वनुरागातिशयमाह—

रूअं अच्छीसु ठिअं फरिसो अङ्गेषु जम्पिअं कण्णे ।

हिअअं हिअए णिहिअं विओइअं किं त्थ देव्वेण ॥ ३२ ॥

[रूपमक्षणोः स्थितं स्पर्शोऽङ्गेषु जल्पितं कर्णे ।

हृदयं हृदये निहितं विद्योजितं किमत्र दैवेन ॥]

तस्य रूपसौकुमार्यप्रियवचनसद्भाववर्तनानि भावयन्ती मा न विरहः पीडयतीति
भावः ॥

प्रोषितभर्तृकायाः सखी तत्कान्तसमीपगामिन पथिक प्रति गत ॥ विपत्ता विरहा-
वस्थामाह—

सअणे चिन्तामइअं काऊण पिअं णिमीलिअच्छीए ।

अप्पाणो उवऊढो पसिठिलवलआहि वाहाहि ॥ ३३ ॥

[शयने चिन्तामयं कृत्वा प्रियं निमीलिताक्ष्या ।

आत्मा उपगूढः प्रशिथिलवलयाम्या बाहुभ्याम् ॥]

आनन्दातिशयान्मुकुलितनेत्रया विरहदौर्बल्यात्प्रशिथिलवलयाम्या बाहुभ्यामात्मा
उपगूढ । स्वशरीरमालिङ्गितमित्यर्थः । तद्यावद्दशमीमन्त्रथा न शच्छति तावदनुकम्प-
स्वेति तत्कान्तं प्रति वक्तव्यमिति भावः ॥

कलहान्तरितयोर्यूनोः समञ्जसकरणाय गतागतस्त्रिदा दूती तावदुक्कलयितुमात्मनि-
न्दामाह—

परिहूएण वि दिअहं घरघरभमिरेण अण्णकज्जम्मि ।

चिरजीविएण इमिणा खत्रिअहो दडुकाएण ॥ ३४ ॥

१. 'पेम्मा' इति ग-पाठः. २. 'काहे' इति ग-पाठः. ३. 'यत्र कुत्रापि' इति ग-
पाठः. ४. 'हिअएण समं' इति क-पाठः. ५. 'स्पर्श' इति क-ख-पाठः. ६.
'कर्णयोः' इति ग-पाठः. ७. 'विद्योतितं किं खलु दैवेन' इति घ-पाठः. ८. 'आ-
त्मना पदय रूढः' इति घ-पाठः.

[परिभूतेनापि दिवसं गृहगृहभ्रमणशीलेनान्यकार्ये ।
चिरजीवितेनानेन क्षपिताः स्मो दग्धकायेन ॥]

पक्षे दग्धकाकेन । रोपकदुवचनैः परिभूतेनापि अन्यकार्ये परप्रयोजनार्थं गृहगृह-
भ्रमणशीलेन चिरजीवितेन वृद्धेनानेन दग्धकायेन क्षपिताः स्म उद्वेजिताः स्मः । अ-
न्योऽपि लोष्टप्रक्षेपादिना परिभूतेन अन्नकार्ये अन्नप्राप्त्यर्थमनुदिवसं प्रतिगृहं भ्रमता चि-
रजीवितेन दीर्घायुषा काकेन दध्याद्युपघातादुद्विग्नो भवतीति । अण्णकञ्जम्भि ददृका-
एण इत्यादि श्लिष्टशब्दशक्तिमूलको ध्वनिः । क्षपिताः स्म इत्यर्थे क्षुब्धाः स्म इति वा ॥

दुर्जनसङ्गपरिहारार्थं कोऽपि सहचरमाह—

वसइ जहि चेअ खलो पोसिज्जन्तो सिणेहदाणेहिं ।

तं चेअ आलअं दीअओ व्व अइरेण मइलेइ ॥ ३५ ॥

[वसति यत्रैव खलः पोष्यमाणः स्नेहदानैः ।

तमेवाल्यं दीपकं इवाचिरेण मलिनयति ॥]

स्नेहदानैः स्नेहपूर्वकैर्दानैः । पक्षे तैलादिदानैः । पोष्यमाणः सर्वार्थमानः । पक्षे संदी-
प्यमानः खलो यत्रैव वसति । यदाश्रयेण वसतीत्यर्थः । तमेवाल्यमाश्रयभूतं जनं
भूभागं चाचिरेण मलिनयति सापवादं सान्धकारं च करोतीत्यर्थः ॥

भुजंगं दानोन्मुखं कर्तुं कुट्टनीं कृपणनिन्दामाह—

होन्ती वि णिप्फलच्चिअ र्धेणरिद्धी होइ किविणपुरिसस्स ।

गिह्वाअवसंतत्तस्स णिअअछाहि व्व पहिअस्स ॥ ३६ ॥

[भवन्त्यपि निष्फलैव धेनवः कृपणपुरुषस्य ।

श्रीष्मातपसंतप्तस्य निजकच्छायेव पथिकस्य ॥]

यथा स्त्रीया छाया नात्मनो न वा परस्य संताप हरति तद्वत्कृपणधनमिति भावः ॥
स्फुरितवामनेत्रा प्रोषितभर्तृका स्त्रीणां वामाक्षिस्पन्दस्य शुभसूचकतया प्रियाग-
मनमाकलय्य सपरितोषमाह—

फुरिए वामच्छि तुए जइ एहिइ सो पिओ ज्ज ता सुइरम् ।

संमीलिअ दाहिणअं तुँइ अवि एहं पलोइस्सम् ॥ ३७ ॥

१. 'चिरजीविनामुना खादिताः स्मो' इति ग-पाठः. २. 'व्वेअ' इति क-पाठः.
३. 'दीप इव' इति क-ख-घ-पाठः. ४. 'धणरिद्धी' इति ग-पाठः. ५. 'धनवृद्धि'
इति क-ख-पुस्तकयोः, 'धनर्द्धि' इति च घ-पुस्तके पाठः. ६. 'तुए अविहं पलोइ-
स्सम्' इति ग-पाठः.

स्फुरिते वामाक्षि त्वयि यैद्येष्यति स प्रियोऽद्य तत्सुचिरम् ।
संमील्य दक्षिण त्वयैवैतं प्रेक्षिष्ये ॥]

हे वामनेत्र, त्वया स्फुरिते स्फुरणे कृते सति यदि स प्रियोऽद्यागमिष्यति तदा दक्षिणमक्षि निमील्य तं त्वयैव प्रेक्षिष्ये । त्वामेवैकं प्रियावलोकनेन कृतार्थयिष्यामीत्यर्थः ॥

शुनकापदेशेन कामुकान्तरसंभोगभयं प्रदर्शयन्ती दूती नायकं प्रति नायिकाया अनुरागातिशयमाह—

सुणअपउरम्मि गामे हिण्डन्ती तुह कएण सा बाला ।
पासअसारिण्व घरं घरेण कइआ वि खज्जिहिइ ॥ ३८ ॥

[शुनकप्रचुरे ग्रामे हिण्डमाना तव कृतेन सा बाला ।
पाशकशीरीव गृहं गृहेण कदापि खादिष्यते ॥]

शुनकप्रायकामुकप्रचुरे ग्रामे त्वदर्शनार्थं प्रतिगृह भ्रमन्ती सा बाला कदापि केनापि खादिष्यते । उपभोक्ष्यत इत्यर्थः । अतो नवयौवना एषा यावदन्येन नोपभुज्यते तावदेनां भजस्वेति भावः ॥

यं युवानं प्रति त्वं वद्वानुरागा सोऽस्थिरप्रेमेति कथयन्ती सखी नायिका स्वसौभाग्यगर्वमाह—

अण्णणं कुसुमरसं जं किर सो महइ मैहुअरो पाउम् ।
तं णीरसाणं दोसो कुसुमाणं णेअ भमरस्स ॥ ३९ ॥

[अन्यमन्यं कुसुमरसं यत्किल स इच्छति मधुकरः पातुम् ।
तन्नौरसानां दोषः कुसुमानां नैव भ्रमरस्य ॥]

यथा इच्छानुरूपस्य मधुन एकत्रालाभान्मधुकरो भ्रमति तद्वदयमपीच्छानुकूलनायिकामलभमानश्चाञ्चल्यमवलम्बते । तदेतस्य चाञ्चल्य मया शमयितव्यमिति भावः ॥

मन्दस्नेहं नायकमभिमुखीकर्तुं दूती नायिकाया अनुरागातिशयमाह—

रत्थापइण्णणअणुप्पला तुमं सा पडिच्छए एन्तम् ।
दारणिहिएहिं दोहिं वि मङ्गलकलसेहिं व थणेहिं ॥ ४० ॥

१. 'स्फुरसि' इति ग-पाठः. २. 'यद्यागमिष्यति प्रियतमस्तदा सुचिरम्' इति ग-पाठः. ३. 'त्वया अविघ्नं प्रलोकयिष्ये' इति ग-पाठः. ४. 'हिण्डती' इति घ-पाठः. ५. 'सारीव' इति घ-पाठः. ६. 'गृहे न' इति घ-पाठः. ७. 'पाणलो-इण्णो' इति ग-पाठः. ८. 'स महति पानलोलुपः' इति ग-पाठः. ९ 'नेह' इति घ-पाठः. १०. 'रच्छा' इति ख-ग-पाठः.

वसन्ते प्रियप्रवासगमनश्रवणविधुरां कुलवधूमाश्वासयन्ती विदग्धा सखी
सानुनयमाह—

हरिहिइ पिअस्स णवचूअपल्लवो पढममञ्जरिसणाहो ।

मा रुवसु पुत्ति पत्थाणकलसमुहसंठिओ गमणम् ॥ ४३ ॥

[हरिष्यति प्रियस्य नवचूतपल्लवः प्रथममञ्जरीसनाथः ।

मा रोदीः पुत्रि प्रस्थानकलशमुखसंस्थितो गमनम् ॥]

हे पुत्रि, शकुनच्छलेन मया प्रस्थानकलशे स्थापितो नवचूतपल्लवः प्रियस्य गमनं
हरिष्यति । अतो मा रोदीरित्यन्वयः । वसन्तागमनचिह्नं दृष्ट्वा स्वयमेव स्थास्यतीति
भावः ॥

अनुनयार्थमागतं कान्तं दृष्ट्वा कलहान्तरितात्मनोऽनुरागं सूचयन्ती सपरिहासमाह—

जो कह वि मह सहीहिं छिइं लहिऊण पेसिओ हिअए ।

सो माणो चोरिअकामुअ व्व दिट्ठे पिए णट्ठो ॥ ४४ ॥

[यः कथमपि मम सखीभिश्छिद्रं लब्ध्वा प्रवेशितो हृदये ।

म मानश्चोरकामुक इव दृष्टे प्रिये नष्टः ॥]

प्रणयकलहरूपं छिद्रं लब्ध्वा यो मानः सखीभिर्मम हृदये प्रवेशितः । न तु मया
स्वीकृत इति भावः । स मानः प्रिये दृष्टे सति चोरकामुक इव नष्टः पलायितः ॥

कापि कुसुम्भपुष्पावचयार्थं गतायाः सपत्न्याः शीलखण्डनं जातमिति सूचयन्ती
आह—

सहिआहिं भण्णमाणा थणए लग्गं कुसुम्भपुष्पं त्ति ।

मुद्धवहुआ हसिज्जइ पप्फोडन्ती णहवआइं ॥ ४५ ॥

[सखीभिर्भण्यमाना स्तने लभं कुसुम्भपुष्पमिति ।

मुग्धवधूर्नखपदानि प्रस्फोटयन्ती नखपदानि ॥]

‘शशङ्कं पञ्च नखत्रणानि सान्द्राणि तच्चूचुकचिह्नमाहुः’ इत्यादिकामशास्त्राभिज्ञेन
नायकेन स्तनकुङ्कुलाग्रे निहितं शशङ्कं दृष्ट्वा स्तने कुसुम्भपुष्पं लभमिति सखीभिर्भ-
ण्यमाना मुग्धवधूर्नखपदानि प्रस्फोटयन्ती प्रक्षिपन्ती हस्यते । मुग्धवधूरित्युपालम्भपरं
वचनम् । प्रियदत्तं नखक्षणमपि न जानातीति भावः ॥

१. ‘प्रियतमस्य’ इति ग-पाठः. २. ‘रुदिहि’ इति घ-पाठः. ३. ‘प्रेषितो’ इति
घ-पाठः. ४. ‘चोरिकाकामुक’ इति ग-पाठः. ५. ‘स्तनयोः’ इति ग-पाठः. ६. ‘वधू-
रुपहस्यते’ इति ग-पुस्तके, ‘वधुका प्रहस्यते’ इति च घ-पुस्तके पाठः.

[रथ्याप्रकीर्णनयनोत्पला त्वां सा प्रतीक्षते आयान्तम् ।

द्वारनिहिताभ्यां द्वाभ्यामपि मङ्गलकलशाभ्यामिव स्तनाभ्याम् ॥]

‘तुमं सा पढिच्छए एन्तम्’ इति स्थाने ‘तुमं पुत्ति क पलोएसि’ इति क्वचित्पुस्तके पाठो दृश्यते । ‘त्वं पुत्रि कं प्रलोकयसि’ इति तस्यार्थः । तत्रेत्यं व्याख्या—रथ्या-वलोकनद्वारस्थितिस्तनप्रदर्शनैः कलितशीलखण्डनां कुलवधूं प्रति दूती आह—रथ्येति । अर्थं भावः—नयनोत्पलाभ्या कृतरथ्यापूजा द्वारि कलशाविव स्तनौ निधाय यस्य वर्त्म प्रतीक्षसे तं कथय मया तदानयने यन्नो विधेय इति ॥

अगृहीतानुनयविलक्षं पुनरनुनयविमुखं नायकं प्ररोचयितुं दूती कलहान्तरिताया नायिकायाः पश्चात्तापमाह—

ता रुष्णं जा रुव्वइ ता छीणं जाव छिज्जए अङ्गम् ।

ता णीसैसिअं वराइअ जाव अ सासा पहुप्पन्ति ॥ ४१ ॥

[तावद्द्रुदितं यावद्द्रुद्यते तावत्क्षीणं यावत्क्षीयतेऽङ्गम् ।

तावन्निःश्वसितं वराक्या यावत् [च] श्वासाः प्रभवन्ति ॥]

यावद्द्रोदितुं शक्यते तावद्द्रुदितम् । अङ्गं यावत्क्षीयते यतोऽधिकं क्षीणं न भवति तावत्क्षीणम् । यावच्छ्वासाः प्रभवन्ति तावन्निःश्वसितम् । इदानी क्षीणायाः श्वसितुमपि न शक्तिरिति त्वद्द्रुपेक्षया म्रियमाणा त्वय्यनुरक्तामनुकम्पस्वेत्यर्थः ॥

क्वश्चिदुपरतजायाविरहविधुरमात्मानमनुशोचन्नात्मनः स्थिरस्नेहतासूचनेन नायिका-न्तरं प्ररोचयितुमाह—

समसोक्खदुक्खपरिवड्ढिआणं कालेण रुढपेम्माणम् ।

मिहुणाणं मरइ जं तं खु जिअइ इअरं मुअं होइ ॥ ४२ ॥

[समसौर्ख्यदुःखपरिवर्धितयोः कालेन रुढप्रेम्णोः ।

मिथुनयोर्भ्रियते यत्तत्खलु जीवति इतरन्मृतं भवति ॥]

मिथुनं जायापती । ‘स्त्रीपुसौ मिथुनं द्वन्द्वम्’ इत्यमर । समुदायवाचकोऽप्यर्थं लक्षणया जायायां पत्यौ च प्रयुक्तः । तेनायमर्थः—समाभ्यामुभयोः साधारणाभ्यां सुखदुःखाभ्या परिवर्धितयोः कालवशेन स्थिरप्रेम्णोर्मिथुनयोर्दपत्योर्मध्ये यन्मिथुनं जाया वा पतिर्वा म्रियते तज्जीवति । इतरज्जीवन्मृतं भवति विरहदुःखदग्धाज्जीवितान्मरणमेव वरमिति भावः ॥

१. ‘आगच्छन्तम्’ इति घ-पाठः. २. ‘णीससइ’ इति ग-पाठः. ३. ‘यावन्निः-श्वसाः’ इति घ-पाठः. ४. ‘सुखदुःख’ इति ग-घ-पाठः.

वसन्ते प्रियप्रवासगमनश्रवणविधुरां कुलवधूमाश्वासयन्ती विदग्धा सखी
सानुनयमाह—

हरिहिइ पिअस्स णवचूअपल्लवो पढममञ्जरिसणाहो ।

मा रुवसु पुत्ति पत्थानकलसमुहसंठिओ गमणम् ॥ ४३ ॥

[हरिष्यति प्रियस्य नवचूतपल्लवः प्रथममञ्जरीसनाथः ।

मा रोदीः पुत्रि प्रस्थानकलशमुखसंस्थितो गमनम् ॥]

हे पुत्रि, शकुनच्छलेन मया प्रस्थानकलशे स्थापितो नवचूतपल्लवः प्रियस्य गमनं
हरिष्यति । अतो मा रोदीरित्यन्वयः । वसन्तागमनचिह्नं दृष्ट्वा स्वयमेव स्थास्यतीति
भावः ॥

अनुनयार्थमागतं कान्तं दृष्ट्वा कलहान्तरितात्मनोऽनुरागं सूचयन्ती सपरिहासमाह—

जो कह वि मह सहीहिं छिहं लहिऊण पेसिओ हिअए ।

सो माणो चोरिकासुकु व्व दिट्ठे पिए णट्ठो ॥ ४४ ॥

[यः कथमपि मम सखीभिश्छिद्रं लब्ध्वा प्रवेशितो हृदये ।

स मानश्चोरैकामुक इव दृष्टे प्रिये नष्टः ॥]

प्रणयकलहरूपं छिद्रं लब्ध्वा यो मानः सखीभिर्मम हृदये प्रवेशितः । न तु मया
स्वीकृत इति भावः । स मानः प्रिये दृष्टे सति चोरकामुक इव नष्टः पलायितः ॥

कापि कुसुम्भपुष्पावचयार्थं गतायाः सपत्न्याः शीलखण्डनं जातमिति सूचयन्ती
आह—

सहिआहिं भण्णमाणा थणए लग्गं कुसुम्भपुष्पं त्ति ।

मुद्धवहुआ हसिज्जइ पप्फोडन्ती णहवआइं ॥ ४५ ॥

[सखीभिर्मण्यमाना स्तने लग्नं कुसुम्भपुष्पमिति ।

मुग्धवर्धूर्हस्यते प्रस्फोटयन्ती नखपदानि ॥]

‘शशश्रुतं पञ्च नखत्रणानि सान्द्राणि तच्चूचुकचिह्नमाहुः’ इत्यादिकामशास्त्राभिज्ञेन
नायकेन स्तनकुट्टालाग्रे निहितं शशश्रुतं दृष्ट्वा स्तने कुसुम्भपुष्पं लग्नमिति सखीभिर्म-
ण्यमाना मुग्धवधूर्नखपदानि प्रस्फोटयन्ती प्रक्षिपन्ती हस्यते । मुग्धवधूरित्युपालम्भपरं
वचनम् । प्रियदत्तं नखक्षतमपि न जानातीति भावः ॥

१. ‘प्रियतमस्य’ इति ग-पाठः. २. ‘रुदिहि’ इति घ-पाठः. ३. ‘प्रेषितो’ इति
घ-पाठः. ४. ‘चोरिकाकामुक’ इति ग-पाठः. ५. ‘स्तनयोः’ इति ग-पाठः. ६. ‘वधू-
रुपहस्यते’ इति ग-पुस्तके, ‘वधुका प्रहस्यते’ इति च घ-पुस्तके पाठः.

काप्यात्मनो मरणभयं प्रदर्शयन्ती मन्दस्नेहं नायकमनुकूलयितुमाह—

उन्मूलयन्ति व हिअं इमाइँ रे तुह विरज्जमाणस्स ।

अवहीरणवसविसंठुलवलन्तणअणद्धदिट्ठाइँ ॥ ४६ ॥

[उन्मूलयन्तीव हृदयं इमानि रे तव विरज्यमानस्य ।

अवधीरणवशविसंघुलवलन्नयनार्धदृष्टानि ॥]

रेशब्दः साक्षेपसंबोधने । विरज्यमानस्य तेऽवधीरणवशाद्धिसंघुलमबद्धलक्ष्यं यथा भवति तथा वलन्नयनार्धं येषु एतादृशानि दृष्टान्यालोकनानि मम हृदयमुन्मूलयन्तीवेत्यर्थः । एतेनास्तां तव विरागः । विरागसूचकेनावलोकनेनापि मम मरणावस्था भवतीति सूचितम् ॥

काप्यात्मनो विरहविधुरता सूचयन्ती विरलदर्शनं नायकमाह—

ण मुअन्ति दीहसासं ण रुअन्ति चिरं ण होन्ति किसिआओ ।

धैण्णाओ ताओ जाणं बहुवल्लह वल्लहो ण तुमम् ॥ ४७ ॥

[न मुञ्चन्ति दीर्घश्वासान्न रुदन्ति चिरं न भवन्ति कृशाः ।

धैन्यास्ता यासां बहुवल्लभ वल्लभो न त्वम् ॥]

अस्माभिस्तु त्वामासाद्य सर्वमिदमनुभूयत इति भावः ॥

शय्यागारविनिर्गतायाः प्रियायाः परिवृत्त्यावलोकनं नायकः स्वसौभाग्यख्यापनार्थमाह—

णिहालसपरिघुम्मिरतंसवलन्तद्धतारआलोआ ।

कामस्स वि दुव्विसहा दिट्ठिणिवाआ ससिमुहीए ॥ ४८ ॥

[निद्रालसपरिघूर्णनशीलतिर्यग्बलद्धतारकालोकाः ।

कामस्यापि दुर्विषहा दृष्टिनिपाताः शशिसुख्याः ॥]

सुरतजागरान्निद्रालसः अत एव, परिघूर्णनशीलः, अनुरागातिशयात्तिर्यग्बलद्धतारकालोको येषु तादृशाः शशिसुख्या दृष्टिप्रपञ्चाः कामस्यापि धैर्यच्युति कुर्वन्ति, किं पुनः कामातुराणामिति भावः ॥

काप्यात्मनो जारं प्रत्यनुरागं चिरप्रोषितप्रियागमने च निष्प्रत्याशतां दर्शयन्ती हृदयोपालम्बच्छलेनाह—

जीविअसेसाइ मए गमिआ कहुँ कहुँ वि पेम्मदुहोली ।

एहिँ विरमसु रे डडुहिअअ मा रज्जसु कहिँ पि ॥ ४९ ॥

१. 'अवहीरअसविसंठुल' इति ग-पाठः. २. 'अवधीरितसविसंघुल' इति ग-पाठः.
३. 'धण्णाउ ताउ' इति ग-पाठः. ४. 'दीर्घश्वासं' इति ग-पाठः. ५. 'कृशाङ्गय.' इति घ-पाठः. ६. 'धन्यास्तु तास्तु' इति घ-पाठः. ७. 'परिघूर्णमान' इति ग-पाठः.

[जीवितशेषया मया गमिता कथं कथमपि प्रेमैदुर्दोली ।
इदानीं विरम रे दग्धहृदय मा रज्यस्व कुत्रापि ॥]

प्राप्तानामन्योन्यबन्धकृतो दुर्मोच्यो ग्रन्थिर्दुर्दोलीति प्रसिद्धा । विरहक्षीणतया जी-
वितशेषया मया प्रेमदुर्दोली तस्य मम च प्रेम्णः परस्परानुबन्धित्वादुर्मोचो ग्रन्थिः कथ
कथमपि आगमिष्यतीति प्रत्याज्ञया सखीजनाभ्यर्थनया आत्मबन्धपातकभयाच्च गमिता ।
एतेन प्रियागमनप्रत्याशात्यागः सौभाग्यं दृढभक्तिता चात्मनः सूचिता । तादृशविरहदा-
हमनुभूय पुनरन्यत्रानुरज्यस इति सनिर्वेदमाह—रे दग्धहृदयेति । इदानीं विरम मा
रज्यः कुत्रापि इत्यनेनानुरक्तस्य निषेधायोगाज्जारं प्रत्यनुरागः सूचितः ॥

नायकस्यानुरागवृद्धये दूती कस्याश्चिदन्तनखक्षतावलोकनकौतुकमाह—

अज्जाएँ णवणहक्खअणिरीक्खणे गरुअजोव्वणुत्तुङ्गम् ।
पडिमागअणिअणअणुप्पलच्चिअं होइ थणवट्टम् ॥ ५० ॥

[आर्याया नवनखक्षतनिरीक्षणे गुरुकयौवनोत्तुङ्गम् ।
प्रतिमागतनिजनयनोत्पलार्जितं भवति स्तनपृष्ठम् ॥]

आर्याया वरस्त्रियाः ॥

श्रोत्रेवात्रिमुखं नायकमभिमुखयितुं विपरीतरतानभिज्ञां च नायिकां शिक्षयितुं निस्-
प्रभेदानी भगवतः कृष्णस्य लक्ष्म्याश्च कामपरता नमस्कारच्छलेनाह—

तं णमह जस्स वच्छे लच्छिसुहं कोत्थिहम्मि संकन्तम् ।
दीसइ मअपरिहीणं ससिबिम्बं सूरबिम्ब व्व ॥ ५१ ॥

[तं नमत यस्य वक्षसि लक्ष्मीमुखं कौस्तुभे संक्रान्तम् ।
दृश्यते मृगपरिहीनं शशिविम्बं सूर्यविम्ब इव ॥]

विपरीतरतावस्थायां यस्य वक्षसि कौस्तुभे प्रतिबिम्बितं लक्ष्मीमुखं सूर्यविम्बे प्रति-
बिम्बितं निष्कलङ्कं चन्द्रविम्बमिव दृश्यते तं नमतेत्यन्वयः ॥

प्रियाननुयार्थं दूती कलहान्तरितामाह—

मा कुण पडिवक्खसुहं अणुणेहि पिअं पसाअलोहिल्लम् ।
अइगाहिअगरुअमाणेण पुत्ति रासि व्व छिज्जिहिसि ॥ ५२ ॥

१. 'प्रेमदुर्गंधा' इति घ-पाठः. २. 'रज्ज' इति घ-पाठः. ३. 'ईश्वरसुताया' इति
घ-पाठः. ४. 'स्तनतटं' इति ग-पुस्तके, 'स्तनपटं' इति च घ-पुस्तके पाठः. ५. 'कोत्थ-
अम्मि' इति ग-पाठः. ६. 'बिम्बे' इति ग-पाठः. ७. 'अणुणेषु' इति ग-पाठः.

[मा कुरु प्रतिपक्षसुखमनुनय प्रियं प्रसादलोभयुतम् ।

अतिगृहीतगुरुकमानेन पुत्रि राशिरिव क्षीणा भविष्यसि ॥]

हे पुत्रि, प्रतिपक्षस्य सपत्नीजनस्यावकाशदानेन सुखं मा कुरु । प्रसादाभिलाषिणं प्रियमनुनय । अतिगृहीतगुरुकमानेन राशिरिव क्षीणा भविष्यसि । माषादिराशिरुपरि पाषाणादिना नियन्त्रितो यथा क्षीयत इत्यर्थः । अनुनयलुब्धोऽसौ मानी न त्वामनुनेष्य-
तीति भावः ॥

विरहोत्कण्ठिताया विरहार्तिं व्यञ्जयन्ती दूती तत्कान्तमाह—

विरहकरवत्तदूसहकालिज्जन्तम्मि तीअ हिअअम्मि ।

अंसू कज्जलमइलं पमाणसुत्तं व्व पडिहाइ ॥ ५३ ॥

[विरहकरपत्रदुःसहर्षोव्यमाने तस्या हृदये ।

अश्रु कज्जलमलिनं प्रमाणसूत्रमिव प्रतिभाति ॥]

प्राकृते पूर्वनिपातानियमाहुःसहविरहलक्षणकरपत्रेण पाठ्यमाने तस्या हृदये कज्जल-
मलिनमश्रु प्रमाणसूत्रमिव प्रतिभातीति सबन्धः । तदेवं विरहविधुरामनुकम्पस्वेति
भावः ॥

विदग्धनायिकासंगमोत्सुकं नायकं दूती प्ररोचयितु निषेधमुखेनाह—

दुण्णिक्खेवअमेअं पुत्तअ मा साहसं कैरिज्जासु ।

एत्थ णिहिताइँ मण्णे हिअआइँ पुँणो ण लब्भन्ति ॥ ५४ ॥

[दुर्निक्षेपकमेतत्पुत्रक मा साहसं करिष्यसि ।

अत्र निहितानि मन्ये हृदयानि पुनर्न लभ्यन्ते ॥]

पुत्रकेति विश्वासार्थं सन्नेहसबोधनम् । एतद्दृढयनिक्षेपरूप साहसं मा करिष्यसि ।
यतो दुर्निक्षेपकमेतदिति योजना । लोकेऽपि यो निक्षेपः पुनर्न लभ्यते स दुर्निक्षेप इत्यु-
च्यते । एतेन चाद्वा चतुर्यसौन्दर्यादिभिर्नायिकाया मनोहरत्व व्यज्यते ॥

रतावसाने नायिकाया अपरितोषमाकलय्य विलक्षं नायकं बोधयितुं दूती तस्याश्वि-
ररततादोषपरिहारार्थमाह—

णिँव्वुत्तरआ वि बहू सुरअविरामट्टिइँ अआणन्ती ।

अविरअहिअआ अण्णं पि किं पि अत्थि त्ति चिन्तेइ ॥ ५५ ॥

१. 'प्रसादलोभिष्ठम्' इति ग-पाठः. २. 'क्षीयसे' इति ग-पाठः. ३. 'काडि-
ज्जन्तस्स तीअ हिअअस्स' इति ग-पाठः. ४. 'पाठ्यमानस्य तस्या हृदयस्य' इति
ग-पाठः. ५. 'करेज्जासु' इति ग-पाठः. ६. 'इत्थ' इति ग-पाठः. ७. 'उणो' इति
ग-पाठः. ८. 'इद' इति ग-पाठः. ९. 'विणिवुत्त' इति ख-पाठः.

[निर्वृत्तरतापि वधूः सुरतविरामस्थितिमजानती ।

अविरतहृदन्यदपि किमप्यस्तीति चिन्तयति ॥]

एतेन नायकेच्छानुपालनमौग्ध्यं च नायिकायाः सूचितम् ॥

मुजंगजनं रोचयितुं कुट्टनीं वेश्याप्रेमस्तुतिमाह—

गन्दन्तु सुरअसुहरसतह्लावहराई सअललोअस्स ।

बहुकैअवमग्गविणिम्मिआई वेसाणं पेम्माई ॥ ५६ ॥

[नन्दन्तु सुरतसुखरसतृष्णापहराणि सकललोकस्य ।

बहुकैतवमार्गविनिर्मितानि वेश्यानां प्रेमाणि ॥]

उत्तममध्यमाधमरूपसकललोकस्य सुरते यः सुखरसस्तत्र या तृष्णा तदपहारकाणि यथाभिलषितसपादकानि तथा बहुभिः कैतवमार्गैर्हसितशुष्करुदितचाटुप्रमुखैर्विनिर्मितानि वेश्यास्त्रीणां प्रेमाणि नन्दन्तु । लाभसत्कारादिभाजि भवन्त्वित्यर्थः । 'सुरतरसरभस-तृष्णापहराणि' इति पाठे सरभसानि च तानि तृष्णापहराणि चेति कर्मधारयः ॥

किमिति त्वं कृशासीति सहासं नायकेन पृष्टा विरहोत्कण्ठिता तमाह—

अप्पत्तमण्णुदुक्खो किं मं किसिअत्ति पृच्छसि हसन्तो ।

पावसि जइ चलचित्तं पिअं जणं ता तुह कहिस्सम् ॥ ५७ ॥

[अप्राप्तमन्युदुःखः किं मां कृशेति पृच्छसि हसन् ।

प्राप्स्यसि यदि चलचित्तं प्रियं^{११} जनं तदा तव कथयिष्यामि ॥]

प्रियापराधजश्चित्तक्षोभो मन्युः । न प्राप्तं मन्युकृत दुःखं येन तादृशस्त्व हसन्सन् किं मां कृशेति पृच्छसि । हसन्निलनेन खेहस्य हृदयबाह्यता सूचिता । तदेति । इदानीं कथितेऽपि न ते प्रत्ययो भविष्यति । तवास्थिरक्षेहत्वान्ममेयं दशेति भावः ॥

चिरागतं जारं विरहोत्कण्ठिता सनिर्वेदमाह—

अवहत्थिऊण सहिजम्पिआई जाणं ईकं ण रमिओसि ।

एआई ताई सोक्खाई संसओ जेहिं जीअस्स ॥ ५८ ॥

१. 'विनिवृत्तरता' इति घ-पाठः. २. 'बहुमग्गविणिम्मिआई' इति ग-पाठः. ३. 'सुरआई' इति ग-पाठः. ४. 'सुरतशुभरस' इति घ-पाठः. ५. 'बहुपतिकानां मार्गविनिर्मितानि' इति ग-पाठः. ६. 'वेश्यावनितानां' इति घ-पाठः. ७. 'सुरतानि' इति ग-पाठः. ८. 'मानदुःखः' इति ग-पाठः. ९. 'हसमानः' इति ग-पाठः. १०. 'प्राप्स्यसि यावच्चलचित्तं प्रियं जनं तावत्प्रक्ष्यामि' इति घ-पाठः. ११. 'प्रियाजनं ननस्ते कथयिष्ये' इति ग-पाठः. १२. 'कए तुमं रमिओ' इति ग-पाठः.

[अपहस्तयित्वा सखीजल्पितानि येषां कृते न रमितोऽसि ।
एतानि तानि सौख्यानि संशयो यैर्जीवस्य ॥]

अस्तु तावत्सुखम्, त्वद्विरहादिदानी जीवितमेव संदिग्धमिति भावः ॥
प्रतिवेशिन्यालापच्छलेन दूती मधूकनिकुञ्जे दत्तसंकेतं जारमाह—

ईसालुओ पई से रत्तिं महुअं ण देइ उच्चेउम् ।

उच्चेइ अप्पण च्चिअ माए अइउच्चुअसुहाओ ॥ ५९ ॥

[ईर्ष्याशीलः पतिर्स्तेस्या रात्रौ मधूकं न ददात्युच्चेतुम् ।

उच्चिनोत्यात्मनैव मातरतिर्ऋजुकस्वभावः ॥]

गृहे जायमानस्य जारसमागमस्याज्ञानादजुखभावत्वम् । मधूकनिकुञ्जं मा गच्छ
तस्या गृहमेव गच्छेति जारं प्रति व्यज्यते ॥

वृत्तवन्नाञ्चलं बलादाकृष्यानुनयमगृहीत्वा गच्छन्तीं नायिका नायक आह—

अच्छोडिअवत्थद्वन्तपत्थिए मन्थरं तुमं वच्च ।

चिन्तेसि थणहराआसिअस्स मज्झस्स वि ण भङ्गम् ॥ ६० ॥

[बलादाकृष्टवस्त्रार्धान्तप्रस्थिते मन्थरं त्वं व्रज ।

चिन्तयसि स्तनभरायासितस्य मध्यस्यापि न भङ्गम् ॥]

बलादाकृष्टं वस्त्रार्धान्तं वन्नाञ्चलो यया सा चासौ प्रस्थिता चेति कर्मधारयः ।
अस्तु तावन्मम प्रणयभङ्गः, द्रुतगमनेन स्तनभरायासितस्य मध्यस्यापि भङ्गं न चिन्त-
यसि अहो ते मौग्ध्यमिति भावः ॥

नागरिकः सहचरं प्रत्यात्मनो विज्ञत्वख्यापनाय पथिकप्रपापालिकयोरन्योन्यानुरा-
गमाह—

उद्वच्छो पिअइ जलं जह जह विरलङ्गुली चिरं पहिओ ।

पावालिआ वि तह तह धारं तणुइं पि तणुएइ ॥ ६१ ॥

[ऊर्ध्वाक्षः पिबति जलं यथा यथा विरलाङ्गुलिश्चिरं पथिकः ।

प्रपापालिकापि तथा तथा धारां तनुकामपि तनूकरोति ॥]

पिपासापगमेऽपि जलपानच्छलेन मुखावलोकनकुतूहलादूर्ध्वाक्षः पथिको यथा यथा

१. 'अपहस्त' इति घ-पाठः. २. 'कृते त्व रमितः' इति ग-पाठः. ३. 'ईर्ष्यालुः'
इति ग-पाठः. ४. 'अस्याः' इति ग-पाठः. ५. 'ऋजुस्वभावः' इति घ-पाठः. ६. 'अ-
च्छोडिअ' इति ग-पाठः. ७. 'बलात्' इति ग-पुस्तके नास्ति. ८. 'तन्वीमपि तन्वीं
करोति' इति ग-पाठः.

जलमलनाय शिखरं दृष्टिं सशिरं जलं पिबति तथा तथा प्रपापालिकापि तदनुरोधात्-
न्मुगं वन्दोः कुरुन्त्यर्थं तनुकामपि धारा तनुकरोतीत्यर्थः ॥

कौटिल्यः कसुमः कामपि दुर्लभा नायिकामुपायान्तरेण प्राप्तुमसमर्थो भिक्षाप्राथन-
यत्नेन शयनगृहगतः । सा च तं दृष्ट्वा स्वयमेव भिक्षां दातुं गता । ततो भिक्षादा-
नाय तस्मिन् वधूः किमिति चिरयतीति जिज्ञासमानां श्वश्रूं प्रति सपत्नी भिक्षाचरभि-
ः प्रोचन्त्यानुगमाह—

भिच्छाभरो पेच्छइ णाहिमण्डलं सावि तस्स मुहअन्दम् ।
तं चटुअं अ करङ्कं दोह वि काआ विलुम्पन्ति ॥ ६२ ॥

[भिक्षाचरः प्रेक्षते नाभिमण्डलं सापि तस्य मुखचन्द्रम् ।

तच्चटुकं च करङ्कं द्वयोरपि काका विलुम्पन्ति ॥]

चटुकं भिक्षाग्रतनात्रम् । दर्शयामिति यावत् । करङ्कं भिक्षाग्रहणपात्रं च काका विलु-
म्पन्ति । तत्र मन्त्रं यादवर्तत्यर्थं । द्वयोः परस्परदर्शनमात्रेणानुरागात्स्तम्भोत्पादनात्का-
का तस्मिन् वर्त्मनि भावः ॥

प्रियमनुनें प्रोचयन्ती गगी कलहान्तरितामाह—

जेण विणा ण जिविज्जइ अणुणिज्जइ सो कआवराहो वि ।
पत्ते वि णअग्दाहे भण कस्स ण वल्लहो अग्गी ॥ ६३ ॥

[येन विना न जीव्यतेऽनुनीयते स कृतापराधोऽपि ।

प्राप्तोऽपि नगरदाहे भण कस्य न वल्लभोऽग्निः ॥]

कस्येति अपि तु सर्वस्येत्यर्थः । कृतापराधस्याप्यग्नेः पाकार्थं सर्वैरुपादानादिति
भावः ॥

विदग्धनायकं प्रोचयितुं कापि ग्रामनिन्दाछलेनात्मनो वैदग्ध्यमाह—

वक्कं को पुलइज्जउ कस्स कहिज्जउ सुहं व दुक्खं वा ।

केण समं वं हसिज्जउ पामरपउरे हअग्गामे ॥ ६४ ॥

[वक्कं कः प्रलोक्यतां कस्य कथ्यतां सुखं वा दुःखं वा ।

केन समं वा हस्यतां पामरप्रचुरे हतत्रामे ॥]

इतिज्ञाभावेन कटाक्षादेर्निष्फलत्वादिति भावः ॥

१. 'तच्च चटुकं करङ्कं' इति घ-पाठः. २. 'विहसिज्जउ पामरपौरे' इति ग-पाठः.
३. 'विहस्यतां' इति ग-पुस्तके, 'चाहस्यता' इति च घ-पुस्तके पाठः.

मनोरथप्राप्ताविव मनोरथसिद्धिहेतावपि मनोविकारा भवन्तीति निदर्शयन्नागरिकः
सहचरमाह—

फलहीवाहणपुण्याहमङ्गलं लङ्गले कुणन्तीए ।

असईअ मणोरहगब्धिभणीअ हत्था थरहरन्ति ॥ ६५ ॥

[कार्पासीक्षेत्रकर्षणपुण्याहमङ्गलं लाङ्गले कुर्वत्याः ।

असत्या मनोरथगर्भिण्या हस्तौ थरथरायेते ॥]

कार्पासीक्षेत्रकर्षणार्थं पुण्याहे शुभदिने यन्मङ्गलमालेपनादिदानं तल्लाङ्गले कुर्वत्या
मनोरथगर्भिण्याः अस्यां कार्पासवाट्यां मया रन्तव्यमिति हृदि न्यस्तमनोरथाया अस-
त्या. कुलटाया हस्तौ थरथरायेते कम्पं प्राप्तः ॥

सख्याः शिक्षार्थं सखीजनो धूर्ताचरितमाह—

पहिउडूरणसङ्काउलाहिँ असईहिँ बहलतिमिरस्स ।

आइप्पणेण णिहुअं वडस्स सित्ताई पत्ताई ॥ ६६ ॥

[पैथिकच्छेदनशङ्काकुलाभिरसतीभिर्वहलतिमिरस्य ।

आलेपनेन निभृतं वटस्य सिक्तानि पत्राणि ॥]

उडूरणं छेदनम् । अन्धकारबहुलत्वेन सकेतस्थानस्य वटस्य पत्राणि पथिकाश्छे-
त्स्यन्तीति शङ्कया आकुलाभिरसतीभिरालेपनेन द्रुततण्डुलपिष्टेन निभृतं सिक्तानि ।
काकविष्टाशङ्कया पान्था न च्छेत्स्यन्तीति भावः ॥

दन्तधावनार्थं संकेतस्थानकरञ्जशाखाभञ्जकं धार्मिकं कुलटा सोपालम्भमाह—

भञ्जन्तस्स वि तुह सग्गगामिणो णइकरञ्जसाहाओ ।

पौआ अज्ज वि धम्मिअ तुह कहँ धरणिं विअ छिवन्ति ॥६७॥

[भञ्जतोऽपि तव स्वर्गगामिनो नदीकरञ्जशाखाः ।

पादावद्यापि धार्मिकं तव कथं धरणीमेव स्पृशतः ॥]

क्रान्तवैव स्वर्गं जिगमिषुरग्रपादिकया स्थितो दूरस्थशाखाभङ्गं कुर्वन् कथमद्यापि
स्वर्गं न गतोऽसीति भावः ॥

१. 'फलहीवाहनपुण्याह—' इति ग-पाठः. २. 'थरथरायेते' इति ग-घ-पाठः.
३. 'पथिकोडूनन' इति ग-पाठः. ४. 'आतर्पणेन' इति घ-पाठः. ५. 'भण कह पाआ
अज्ज वि धम्मिअ धरणिं' इति ग-पाठः. ६. 'भञ्जमानस्यापि' इति ग-घ-पाठः.
७. 'शाखायाः' इति ग-पुस्तके, 'शाखाभिः' इति च घ-पुस्तके पाठः. ८. 'तव कथं
पादावद्यापि धार्मिकं धरणीमेव' इति ग-पाठः. ९. 'अपि' इति घ-पाठः.

नायिकान्तरप्रलोभनार्थमात्मनः स्थिरस्नेहता कामुकता च नागरिकः सहचरमाह—

अच्छउ द्वाव मणहरं पिआइ मुहदंसणं अइमहग्घम् ।
तग्गामछेत्तसीमा वि झत्ति दिट्ठा सुहावेइ ॥ ६८ ॥

[अस्तु तावन्मनोहर प्रियाया मुखदर्शनमतिमहार्घम् ।
तद्ग्रामक्षेत्रसीमापि झटिति दृष्टा सुखयति ॥]

सा यत्र ग्रामे वसति तस्य ग्रामस्य यत्क्षेत्रं तस्य सीमापीत्यर्थः ॥

मृतायामपि जायायां हलिकस्य प्रेम्णः प्रशंसाव्याज्रेण कापि मन्दस्नेह नायकमभि-
मुखीकर्तुमाह—

णिक्कम्माहिँ वि छेत्ताहिँ पामरो णेअ वच्चए वसइम् ।
मुअपिअजाआसुँण्णइअगेहदुःखं परिहरन्तो ॥ ६९ ॥

[निष्कर्मणोऽपि क्षेत्रात्पामरो नैव व्रजति वसतिम् ।
मृतप्रियजायाशून्यीकृतगेहदुःखं परिहरन् ॥]

मृता चासौ प्रियजाया च तथा शून्यीकृत यद्रेहं तत्र यदुःखं तत्परिहरन् पामरो
निष्कर्मणः कार्यरहितादपि क्षेत्राद्ब्रजति न व्रजति । ईदृशं तत्प्रेम येन मृतभार्यः पा-
मरो गृहवासादप्यरण्यवासमेव बहु मन्यत इति भावः ॥

प्रोषितभर्तृकायाः सखी तत्कान्तसमीपगामिनं पथिकमाह—

झँञ्झावाउत्तिण्णिअघरविवरपलोट्टसलिलधाराहिँ ।
कुड्डलिहिओहिदिअहं रक्खइ अँज्जा करअलेहिँ ॥ ७० ॥

[झँञ्झावातोत्तृणीकृतगृहविवरप्रपतत्सलिलधाराभिः ।
कुड्यलिखितावधिदिवसं रक्षत्यार्या करतलैः ॥]

अवधिदिवसेऽतिक्रान्ते दुष्करं तस्या जीवनमिति भावः ॥

१. 'ताव' इति ग-पाठः. २. 'सुण्णकइअ' इति ग-पाठः. ३. 'शून्यनिजगृह-
दुःखं' इति घ-पाठः. ४. 'झँञ्झावाउच्छलिअघर' इति ग-पाठः. ५. 'मुद्धा' इति
ग-पाठः. ६. 'वर्षवातोच्छलितगृहविवरप्रवर्तमानसलिल' इति ग-पुस्तके, 'झँञ्झा-
वातोत्तृणितगृहविवरप्रत्यावर्तमानसलिसधाराभ्य.' इति घ-पुस्तके पाठः. ७. 'मुग्धा
करतलाभ्याम्' इति ग-पुस्तके, 'वरस्त्री करतलाभ्याम्' इति च घ-पुस्तके पाठः.

कुलटाया संकेतस्थानगमनत्वर्थार्थं तत्रान्यगमननिषेधार्थं च दूती राजिकापत्रचर्व-
णाकुलमर्कटापदेशेन कामार्तनायकस्य संकेतगतस्य स्थितिमाह—

गोलाणइए कच्छे चक्खन्तो राइआइ पत्ताइ ।

उप्पडइ मक्कडो खोक्खएइ पोट्टं ह पट्टेइ ॥ ७१ ॥

[गोदावरीनद्याः कच्छे चर्वयन्राजिकायाः पत्राणि ।

उत्पतति मर्कटः खोक्खशब्दं करोत्युदरं च ताडयति ॥]

मुहुर्मुहुर्बुद्धीविक्रया त्वां पश्यंस्त्वयि विलम्बमानायां कामार्तिं नाटयन्नस्तीति भावः ॥

पूर्वसुभगयाः सखी तदलंकारेणान्यामसमानां मण्डयितुमिच्छोस्तत्कान्तस्याक्षेपार्थं
स्वभर्तुः स्नेहोचितविधिस्थैर्यमाह—

गह्वइणा मुअसैरिहड्डुण्डुअदामं चिरं वहेऊण ।

वग्गसआइ णेउण णवरिअ अज्जाघरे बद्धम् ॥ ७२ ॥

[गृहपतिना मृतसैरिर्भृहृद्वण्टादाम चिरमूढा ।

वर्गशतानि नीत्वानन्तरमार्यागृहे बद्धम् ॥]

डुण्डुभशब्दो बृहद्वण्टायां वर्तते । गृहपतिना मृतसैरिभस्य बृहद्वण्टायुक्तं दाम चिर-
मूढा तत्सदृशापरमहिषालंकरणार्थं वर्गशतान्यनेकमहिषयूथानि नीत्वा तत्सदृशापरम-
हिषाप्राप्त्या आर्यागृहे चण्डिकायतने बद्धमित्यर्थः । मम भर्त्रा मृतस्य पशोरपि स्नेहवशे-
नैवं कृतम्, त्वं तु जीवन्त्यामेव प्रियभार्याया तदलंकारेणान्यामतदनु रूपामलंकर्तुमिच्छ-
सीत्यनुचितमेतदिति भावः ॥

सपत्नीसपदुत्कर्षोद्विग्नमभिनवसुभगां सान्त्वयन्ती सखी विभवादपि सौभाग्यं गरीय
इति प्रदर्शयन्ती आह—

सिहिपेहुणावअंसा बहुआ वाहस्स गँव्विरी भमइ ।

गअमोत्तिअरइअपसाहणाँ मज्झे सवत्तीणम् ॥ ७३ ॥

[शिखिपिच्छावतंसा वधूर्व्याधस्य गँविता भ्रमति ।

गँजमौक्तिकरचितप्रसाधनानां मध्ये सपत्नीनाम् ॥]

-
१. 'खादन्' इति घ-पाठः. २. 'मर्कटः काशते उदरं चाहन्ति' इति घ-पाठः.
३. 'डुण्डुअह' इति ग-पाठः. ४. 'वग्गसआइ वि णेउण णवरं अज्जाहरे बद्धम्'
इति ग-पाठः. ५. 'सैरिभडुण्डुभदाम चिरं वोढा । यूथशतान्यपि नीत्वा' इति ग-पाठः.
'डुण्डुभशब्दो डोण्डाया वर्तते । डोण्डा मालाविशेषो लोकप्रसिद्ध एव । वर्गशब्दः पशु-
समूहे वर्तते' इति कुलवालदेवः. ६. 'गँविणी भमए । गअमोत्तागहिअपसा' इति
ग-पाठः. ७. 'गर्वशीला' इति घ-पाठः. ८. 'गजमुक्तागृहीतप्रसा-' इति ग-पाठः.

येन करिवरान्हेत्वा तत्कुम्भमुक्ताफलैर्युयं प्रसाधिताः स एवेदानीं मत्संभोगातिप्रम
क्तिक्षीणो मयूरमात्रमारणक्षमः संवृत्त इति सौभाग्येन जातगर्वा भ्रमतीत्यर्थः ॥

कुट्टनी भुजगप्रोत्साहनार्थमाह—

वङ्कच्छिपेच्छिरीणं वङ्कुलविरीणं वङ्कभमिरीणम् ।

वङ्कहसिरीणं पुत्तअ पुण्णेहिं जणो पिओ होइ ॥ ७४ ॥

[वक्राक्षिप्रेक्षणशीलानां वक्रोलपनशीलानां वक्रभ्रमणशीलानाम् ।

वक्रहासशीलानां पुत्रक पुण्यैर्जनः प्रियो भवति ॥]

वक्रत्वादेः कटाक्षनिरीक्षणं साभिप्रायवचनप्रयोगो विभ्रमभङ्गुरं भ्रमणमाशयनिदर्शकं
हसितं चार्थः । पुण्यैरिति धन्यस्त्वमसि येनैवंविधापि मम दुहिता त्वां प्रत्येवमनुरक्तेति
भावः ॥

विजने गोदावरीतीरलतागृहे ध्यानाद्यवस्थित्या संकेतविघ्नकारिणं धार्मिकं कुलटा
काचिदाह—

भ्रमं धम्मिअ वीसत्थो सो सुणहो अज्ज मारिओ तेण ।

गोलाअडविअडकुडङ्गवासिणा दरिअसीहेण ॥ ७५ ॥

[भ्रमं धार्मिक विश्रब्धः स शुनकोऽद्य मारितस्तेन ।

गोदातटविकटकुञ्जवासिना दृप्तसिहेन ॥]

अत्र लतागृहे सिंहसचारेण गमननिषेधो व्यज्यते ॥

विदिताभिप्रायोऽसि मयेति बोधयन्कश्चित्परिहासशीलः कमपि सुवानमाह—

वाएरिएण भरिअं अर्च्छि कॅणऊरउप्पलरण्ण ।

फुँक्कन्तो अयिइहं चुम्बन्तो को सि देवाणम् ॥ ७६ ॥

[वातेरितेन भृतमक्षि कर्णपूरोत्पलरजसा ।

फूत्कुर्वन्नवितृष्णं चुम्बन्कोऽसि देवानाम् ॥]

वातेरितेन कर्णावतसीकृतस्योत्पलस्य रजसा भृत नायिकाया अक्षि तद्रजोपनयनार्थं
फूत्कुर्वन् फूत्कारव्याजेनैवावितृष्णं चुम्बन् तदवलोकनकौतुकेनानिमिषनयनत्वाद्देवाना
मध्ये कृतमो देवस्त्वम् । प्रसिद्धानां देवानामेवविधपुण्यफलभागित्वाभावादिति भावः ॥

१. 'वक्रोदीपनशिलाना' इति घ-पाठः; 'वक्रहसनशीलानां' इति च ग-पाठः.
२. 'धम्मिअ भम' इति ग-पाठः. ३. 'धार्मिक भ्रम विश्रब्धः सश्चा व्यापादित-
स्तेन । गोदावरीतटनिकटकुञ्ज' इति ग-पाठः. ४. 'कण्णरइअउप्पल' इति ग-पाठः.
५. 'फुँक्कन्तअ' इति ग-पाठः. ६. 'चुम्बन्तअ' इति ग-पाठः. ७. 'कर्णरचितोत्पल-
रजसा' इति ग-पाठः.

कान्तानयनत्वर्थार्थं मदनार्तिमभिनयन्ती प्रोषितभर्तृका सखीमाह—

सहि दुम्मेन्ति कलम्बाइं जह मं तह ण सेसकुसुमाइं ।

पूणं इमेसु दिअहेसु वहइ गुडिआधणुं कामो ॥ ७७ ॥

[सखि व्यथयन्ति कदम्बानि यथा मां तथा न शेषकुसुमानि ।

नूनमेषु दिवसेषु वहति गुटिकाधनुः कामः ॥]

गुटिकाकारेण कदम्बकुसुमेन कुसुमान्नो मां तापयतीति भावः । एतेन वसन्तापे-
क्षयापि वर्षाकालो विरहिणा दुःसह इति ध्वनितम् ।

विरहोत्कण्ठितायाः सखी स्त्रीवधपातकभयं दर्शयन्ती तत्कान्तं तदुपगमनार्थमाह—

णाहं दूई ण तुमं पिओ त्ति को अह्व एत्थ वावारो ।

सा मरइ तुज्झ अँअसो तेण अ धम्मक्खरं भणिमो ॥ ७८ ॥

[नाहं दूती न त्वं प्रिये इति कोऽस्माकमत्र व्यापारः ।

सा म्रियते तत्रायशस्तेन च धर्माक्षरं भणामः ॥]

कोऽस्माकमिति प्रियत्वात्तवैव तदनुकम्पनमुचितमित्याशयः ॥

कृतचरणपातमनुनयन्तं कान्तं खण्डिता युवत्यन्तरसङ्गचिह्नं दर्शयन्ती सोपाल-
म्भमाह—

तीअ मुहाहि तुह मुहँ तुज्झ मुहाओ अ मज्झ चलणम्मि ।

हँत्थाहत्थीअ गओ अइदुक्करआरओ तिलओ ॥ ७९ ॥

[तस्या मुखात्तत्र मुखं तव मुखाच्च सम चरणे ।

हस्ताहस्तिकया गतोऽतिदुर्करकारकस्तिलकः ॥]

अत्र तिलकोपालम्भच्छलेन युवत्यन्तरसङ्गचिह्नमाविष्कृतम् ॥

इयमस्मिन्ननुरक्तेति नागरिकः सहचरमवगमयन्नाह—

सामाइ सँमलिज्जइ अद्धच्छिपलोइरीअ मुहसोहा ।

जम्बूदलकअकण्णावअंसँभरिए हलिअपुत्ते ॥ ८० ॥

१. 'कअम्बाइ' इति ग-पाठः. २. 'दिअसेसु' इति ग-पाठः. ३. 'दुर्मनायन्ते'
इति ग-पाठः; 'दूनयन्ति' इति घ-पाठः. ४. 'विरहे' इति ग-पाठः. ५. 'वल्लभ' इति
ग-पाठः. ६. 'तव विरहे' इति ग-घ पाठः. ७. 'भणामि' इति ग-पाठः. ८. 'हत्थिन्व'
इति ग-पाठः. ९. 'चरण' इति ग-पुस्तके, 'चरणयोः' इति च घ-पुस्तके पाठः.
१०. 'दुस्तर' इति घ-पाठः. ११. 'सामलीए' इति ग-पाठः. १२. 'भमिरे हलिअउत्ते'
इति ग-पाठः.

[श्यामायाः श्यामलायतेऽर्धाक्षिप्रलोकनशीलाया मुखशोभा ।

जम्बूदलकृतकर्णावतंसभ्रमणशीले हलिकपुत्रे ॥]

संकेतस्थानसूचकेन जम्बूपत्रेण कृतः कर्णावतसो येन तादृशश्चासौ भ्रमणशील-
श्चेति कर्मधारयः । तथाभूते हलिकपुत्रे सति निह्ववार्थमर्धाक्षिप्रेक्षणशीलायाः श्यामाया
मुखशोभा संकेतसमयलङ्घनवैलक्ष्येण खेदेन च श्यामलायते । स्वयमेव मलिना भवती-
त्यर्थं ॥

कलहान्तरिता कान्तानुनयाय दूतीमाह—

दूइ तुमं विअ कुसला कक्खडमउआइँ जाणसे वोहुँम् ।

कण्डूइअपण्डुरँ जह ण होइ तह तं कॅरेज्जासु ॥ ८१ ॥

[दूति त्वमेव कुसला कर्कशमृदुकानि जानासि वक्तुम् ।

कण्डूयितपाण्डुरं यथा न भवति तथा तं करिष्यसि ॥]

यथा कण्डूयनकौशलेन कण्डूः शाम्यति वैरूप्यं च न भवति, तथा त्वमपि मृदुकण्ड-
केन तथा वक्ष्यसि यथासौ नोद्विजते मा च भजत इत्याशयः ॥

कमपि बहुवल्लभं नायकं प्रति दूती कस्याश्चिदनुरागमाह—

महिलासहस्रभरिण तुह हिअए सुहअ सा अमाअन्ती ।

दिअहं अणण्णकम्मा अङ्गं तणुअं पि तणुएइ ॥ ८२ ॥

[महिलासहस्रभृते तव हृदये सुभग सा अमान्ती ।

दिवसमर्नन्यकर्मा अङ्गं तनुकमपि तनूकरोति ॥]

अमान्ती स्थानमलभमाना । दिवसं व्याप्य । प्रतिदिनमिति यावत् । प्रतिदिनं
त्वत्समागमोपायचिन्तया क्षीयत इत्यर्थः ॥

कोऽपि कस्यांचिदनुरागातिशयं सूचयन्सहचरमाह—

खणमेत्तं पि ण फिट्ठइ अणुदिअहविइण्णगरुअसंतावा ।

पच्छण्णपावसङ्के व्व सामली मज्झ हिअआओ ॥ ८३ ॥

१. 'श्यामायते श्यामलायाः' इति ग-पाठः. २. 'वतंसे भ्रमति' इति ग-पाठः.
३. 'वक्तुम् । कण्डूइपण्डुराण' इति क-ख-पाठः. ४. 'कुणेज्जासु' इति क-पाठः. ५. 'क-
ठिनमृदुकानि' इति ग-पाठः. ६. 'जानीषे' इति घ-पाठः. ७. 'कण्डूयितपाण्डुरं' इति
क-ख-पुस्तकयोः, 'कण्डूयति पाण्डुरं' इति च घ-पुस्तके पाठः. ८. 'सुहअ ठाणम-
ल्लहन्ती' इति ग-पाठः. ९. 'सुभगस्थानमलभन्ती' इति ग-पाठः. १०. 'अनन्यव्या-
पारा' इति ग-पाठः. ११. 'हिअआहिं' इति ग-पाठः.

[क्षणमात्रमपि नैापयात्यनुदिवसवितीर्णगुरुकसंतापा ।

प्रच्छन्नपापशङ्केव श्यामला मम हृदयात् ॥]

अनुदिवसं वितीर्णो गुरुकः संतापो विरहकृतः पक्षे अनुस्मरणकृतश्च यया सा ।
तथा श्यामला श्यामा ॥

कापि सुशीला नायिका कृतापराधमनुनयन्तं कान्तं सप्रणयरोषमाह—

अञ्जअ णाहं कुविआ अवऊहसु किं मुहा पसाएसि ।

तुह मण्णुसमुत्पाअएण मज्झ माणेण वि ण कज्जम् ॥ ८४ ॥

[अञ्ज नाहं कुपिता उँपगूह किं मुधा प्रसादयसि ।

तव मन्युसमुत्पादकेन मम मानेनापि न कार्यम् ॥]

अनभिज्ञे स्वामिनि मानो निष्फल इति भावः ॥

विरहोत्कण्ठितायाः सखी तत्कान्तमाह—

दीहुहूपउरणीसासपआविओ वाहसलिलपरिसित्तो ।

साहेइ सामसवलं व तीएँ अहरो तुह विओए ॥ ८५ ॥

[दीर्घोष्णप्रचुरनिःश्वासप्रतप्तो बाष्पसलिलपरिसिक्तः ।

साधयति श्यामशबलमिव तस्या अधरस्तव वियोगे ॥]

श्यामशबलं व्रतविशेषः । यत्रामौ प्रविश्य जले प्रविश्यते ॥

कापि मध्याह्नाभिसारिका 'सकेतितहृदतीरलतागृहमहं गता, त्वं तु न गतः' इति जारं
प्रति प्रतिपादयन्ती सत्यपि हृदयस्य स्थिरस्नेहता सज्जनहृदयप्रशसाच्छलेनाह—

सरए महद्धदाणं अन्ते सिसिराँँ वाहिरुह्वाँँ ।

जाआँँ कुविअसज्जणहिअअसरिच्छाँँ सलिलाँँ ॥ ८६ ॥

[शरदि महाहृदानामन्तः शिशिराणि बहिरुष्णानि ।

जातानि कुपितसज्जनहृदयसंदृक्षाणि सलिलानि ॥]

दूती कस्याश्चिन्मौगध्यवर्णनच्छलेन प्रथमाभिसारस्वीकारं सूचयति—

आअस्स किं णु करिहिम्मि किं बोलिस्सं कहं णु होइहि[इमि]ति ।

पढमुग्गअसासहआरिआइ हिअअं थरहरेइ ॥ ८७ ॥

१. 'नापैति' इति ग-पाठः. २. 'उज्जुअ' इति ख-पाठः. ३. 'ऋजुऊ' इति घ-पाठः. ४. 'अवगूहस्व' इति ग-घ-पाठः. ५. 'प्रतापितो' इति घ-पाठः. ६. 'परि-
षिक्तः' इति ग-घ-पाठः. ७. 'साधयत्यग्निपानीयव्रतमिव' इति ग-पाठः. ८. 'शीतानि'
इति ग-पाठः. ९. 'सदृशानि' इति ग-घ-पाठः.

[आगतस्य किं नु करिष्यामि किं वैक्ष्यामि कथं नु भविष्यति [इदम्] इति ।

प्रथमोद्धतसौहसकारिकाया हृदयं थरथरायते ॥]

इदमभिसरणसाहसम् । थरथरायते कम्पते ॥

कलहान्तरिताया ग्रहिलत्वदोषपरिहारार्थं दूती तत्कान्तमगृहीतानुनयविलक्षमाह-

णेउरकोडिविलगं चिउरं दइअस्स पाअपडिअस्स ।

हिअअं पउत्थमाणं उम्मोअन्ति विअ कहेइ ॥ ८८ ॥

[नूपुरकोटिविलगं चिकुर दयितस्य पादपतितस्य ।

हृदयं प्रोषितमानमुन्मोचयन्त्येव कथयति ॥]

नूपुरकोटिविलगं दयितस्य चिकुरमुन्मोचयन्त्येव हृदयं प्रोषितमानं कथयतीति संबन्धः । अयमाशयः—अखण्डितप्रणाया मानिच्यो वाचा मुखरागेण वानाविष्कृतं प्रसादं चेष्टाविशेषेणा विष्कुर्वन्ति । तथा च नूपुरावलम्न तव केशमुन्मोचयन्त्येव हठपरि-रम्भलोलुपं हृदय कथितमेव । त्वया तु तदनु रूपं न कृतम् । अतस्तवैवेदमवैदग्ध्यम्, न तु तस्या ग्रहिलत्वदोष इति ॥

दूती कस्याश्चिदनुरागातिशय प्रतिपादयन्ती नायकमाह—

तुंङ्गङ्गराअसेसेण सामली तह खरेण सोमारा ।

सा किर गोलाऊले ह्याआ जम्बूकसाएण ॥ ८९ ॥

[तवाङ्गरागशेषेण श्यामला तथा खरेण सुकुमारा ।

सा किल गोदाकूले स्नाता जम्बूकषायेण ॥]

कृताङ्गोद्धर्तनस्य तवाङ्गरागशेषेण तीक्ष्णेन जम्बूकषायेण सा सुकुमाराङ्गी स्नाते-त्यर्थः । किलेति स्नानारुचौ किलशब्दः । स्नानच्छलेन तथा त्वदङ्गसङ्गाभिलाषिण्या तवाङ्गरागोच्छिष्टग्रहणं कृतमिति भावः ॥

वल्लभस्य गोष्ठीनायकता वर्णयन्ती विरहोत्कण्ठिता सखीजनमाह—

अज्ज ठ्वेअ पउत्थो अज्ज विअ सुण्णआइं जाआइं ।

रत्थामुहदेउलचत्तराईं अहं च हिअआइं ॥ ९० ॥

[अद्यैव प्रोषितोऽद्यैव शून्यकानि जातानि ।

रथ्यामुखदेवकुलचत्तराण्यस्माकं च हृदयानि ॥]

१. 'वक्ष्ये' इति ग-पाठः. २. 'साहसिकाया हृदयं भयेन कम्पते' इति ग-पाठः.
३. 'उन्मूलयन्त्येव' इति ग-पाठः. ४. 'तुङ्गाङ्ग' इति ग-पाठः. ५. 'श्यामली' इति ग-
पाठः. ६. 'गोदावरीप्रवाहे' इति ग-पुस्तके, 'गोदावरीतीरे' इति च घ-पुस्तके पाठः.

कस्याश्चिद्गणिकाया भुजंगजनेन क्रियमाणा श्लाघामसहमाना निजगुणगर्वमभिव्य-
ञ्जयन्ती काचिदाह—

चिरंदिं पि अवाणन्तो लोआ लोएहिं गोरवन्भहिआ ।

सोणारतुले व्व गिरक्खरा वि खन्धेहिं उव्वन्ति ॥ ९१ ॥

[सिद्धिरस्तु इत्यादि]वर्णावलीमप्यजानन्तो लोका लोकैर्गौरैर्वाभ्यधिकाः ।

सुवर्णकारतुला इव निरक्षरा अपि स्कन्धैरुह्यन्ते ॥]

यथोक्तार्थकश्चिरञ्जीति देशीशब्दः । निरक्षरा अक्षरेखारहिताः । पक्षे अविद्या अपि
स्कन्धैरुह्यन्ते । सादरं नीयन्त इत्यर्थः ॥

कलहान्तरिताया कान्त उत्कण्ठाविनोदार्थं सहचरमाह—

आअम्बन्तकवोलं खलिअक्खरजम्पिरिं फुरन्तोट्टिम् ।

मा छिवसु त्ति सरोसं समोसरन्ति पिअं मरिमो ॥ ९२ ॥

[आताम्रान्तःकपोलां खलिताक्षरजल्पनशीला स्फुरदोष्ठीम् ।

मा स्पृशेति सरोषं समपसर्पन्ती प्रियां स्मरामः ॥]

आत्मनो विज्ञत्वख्यापनाय नागरिकः सहचरमाह—

गोलाविसमोआरच्छलेण अप्पा उरम्मि से मुक्को ।

अणुअम्पाणिद्दोसं तेण वि सा आढमुवऊढा ॥ ९३ ॥

[गोदावरीविषमावतारच्छलेनात्मा उरसि तस्य मुक्तः ।

अनुकम्पानिर्दोषं तेनापि सा गाढमुपगूढा ॥]

मन्दस्नेह नायकं दूती नायिकानुरागकथनेनानुकूलयितुमाह—

सा तुइ सहत्थदिण्णं अज्ज वि रे सुहअ गन्धरहिअं पि ।

उव्वसिअणअरर्धरेदेवदे व्व ओमालिअं वहइ ॥ ९४ ॥

[सा त्वया सहस्तदत्तामद्यापि रे सुभग गन्धरहितामपि ।

उद्वसितनगरगृहदेवतेव अवमालिकां वहति ॥]

१. 'विणइं' इति ग-पाठः. २. 'विनतिमप्यजानन्तो' इति ग-पुस्तके, 'वर्णमप्यजा-
नन्तो' इति च घ-पुस्तके पाठः. 'विनति सिद्धिपादिका सिद्धिरस्तु इत्यादिकाम्' इति
कुलबालदेवः. ३. 'गौरवाभ्यार्हिताः' इति घ-पुस्तके, 'गौरवेणार्चिताः' इति च ग-
पुस्तके पाठः. ४. 'अङ्करेखारहिता' इति कुलबालदेवः. ५. 'आताम्रायमाणकपोलां'
इति घ-पाठः. ६. 'जल्पिनी स्फुरदोष्ठीम्' इति ग-पाठः. ७. 'स्मरामि' इति ग-पाठः.
८. 'गाढ' इति ग-पाठः. ९. 'व्याजेन' इति ग-पाठः. १०. 'अन्धरहिअ' इति ग-
पाठः. ११. 'हरदेवते' इति ग-पाठः. १२. 'देवतामिव नवमालिका' इति घ-पाठः.

परिवानेन पर्युषितत्वेन च मर्दिता माला अवमालिका । रे सुभगेति सखेदं संबो-
धनम् । सा मुन्दरी त्वया खकेशपाशादाकृष्य खहस्तदत्तां गन्धरहितामप्यवमालिका
त्वत्करस्पर्शबहुमानादद्यापि वहति । उद्वसितनगरगृहदेवतेवेति । अयं भावः—त्वद्विर-
हादिदानीमकृतप्रसाधना सहजसौन्दर्यमात्राभरणा त्वद्गतचित्ततया निर्जावालेष्यपुत्रि-
केव शोच्या दशामुपगता, अतस्तामनुकम्पस्वेति भावः ॥

मानग्रहणार्थं शिक्षयन्ती बन्धुपुरंध्री कांचिदाह—

केलीअ वि रूसेउं ण तीरए तम्मि चुक्कविणअम्मि ।

जाइअएहिं व माए इमेहिं अवसेहिं अङ्गेहिं ॥ ९५ ॥

[केल्यापि रूषितुं न शक्यते तस्मिंश्च्युतविनये ।

याचितकैरिव मातरेभिरवशैरङ्गैः ॥]

च्युतविनये रतिलौल्यलङ्घितलज्जे तस्मिन् याचितकैरिव अन्यर्थ्यानीतैरिव एभिरव-
शैरस्वाधीनैरङ्गैर्हे मातः, केल्या परिहासेनापि रोपः कर्तुं न शक्यत इत्यर्थः । एतेन
कान्ते प्रणयातिशयो व्यज्यते ॥

कामुकजनानुरञ्जनार्थमात्मनो विपरीतरताभिज्ञतां सूचयन्ती काचिदुत्फुल्लिकया
क्रीडन्ती बालिका निवारयन्तीमाह—

उत्फुल्लिआइ खेळुउ मा णं वारेहि होउ परिऊढा ।

मा जहणभारगरुई पुरिसाअन्ती किलिम्मिहिइ ॥ ९६ ॥

[उत्फुल्लिकया खेलतु मैनां वारयत भवतु परिक्षामा ।

मा जघनभारगुर्वी पुरुषायितं कुर्वती क्लमिष्यति ॥]

पादोपविष्टानां मुहुः पतनोत्पतनरूपा क्रीडा उत्फुल्लिकेत्युच्यते । भवत्विति । श्रमेण
जितश्वासा कृशमध्या च भवत्विति भावः ॥

शीलखण्डनविलक्षायाः कुलजायाश्चित्तसमाधानार्थं तत्पक्षपातिनी काचिदाह—

पउरजुवाणो गामो महुमासो जोअणं पई ठेरो ।

जुण्णसुरा साहीणा असई मा होउ किं मरउ ॥ ९७ ॥

१. 'जाअइ अङ्गिव माए' इति ग-पाठः. २. 'क्रीडयापि' इति ग-पाठः. ३. 'रो-
षितुं' इति घ-पाठः. ४. 'शक्नोमि' इति ग-घ-पाठः. ५. 'अपगतविनये' इति
ग-पुस्तके, 'गतविनये' इति च घ-पुस्तके पाठः. ६. 'जायतेऽस्माकं मातरेभि' इति
ग-पाठः. ७. 'परिगूढा' इति घ-पाठः. ८. 'पुरुषायन्ती क्लमिष्यति' इति घ-पाठः.

[प्रचुरयुवां ग्रामो मधुमासो यौवनं पतिः स्थविरः ।

जीर्णसुरा स्वाधीना असती मा भवतु किं त्रियताम् ॥]

तदेवमप्रतीकारदारुणेषु विनाशकारणेषु सत्सु शीलखण्डनं नापराधापादकमिति भावः॥

नायकस्य मनोहरणार्थं दूती नायिकाया अनुरागातिशयमाह—

बहुसो वि कहिज्जन्तं तुह अवणं मज्झ हत्थसंदिट्ठम् ।

ण सुअं त्ति जैम्पमाणा पुणरुत्तसअं कुणइ अज्जा ॥ ९८ ॥

[बहुशोऽपि कथ्यमानं तव वचनं मम हस्तसंदिष्टम् ।

नं श्रुतमिति जल्पन्ती पुनरुक्तशतं करोत्यार्या ॥]

पुनःपुनः श्रवणानुरागाच्छ्रुतमपि न श्रुतमित्येव वदतीति भावः ॥

दूती कस्याश्चित्कुलजायाः कमपि युवानं प्रत्यनुरागं सवरणकौशलं चाह—

पाअडिअणेहसवभावणिवभरं तीअ जह तुमं दिट्ठो ।

संवरणवावडाए अण्णो वि जणो तह व्वेअ ॥ ९९ ॥

[प्रकटितस्नेहसद्भावनिर्भरं तथा यथा त्वं दृष्टः ।

संवरणव्यापृतया अन्योऽपि जनस्तथैव ॥]

एतस्मिन्ननुरक्तयमिति कश्चिन्मा ज्ञासीदिति संवरणार्थमन्योऽपि तथैव दृष्ट इत्यर्थः ॥

प्रसवानन्तरं स्वामिना सनिधि परित्याजिता काचित्पुत्रस्य दन्तोद्गमकथनच्छलेन सभोगसुखानुभवसमयप्राप्तिमाह—

गेह्ह पलोअह इमं पहसिअवअणा पइस्स अप्पेइ ।

जाआ सुअपढमुब्भिण्णदन्तजुअलङ्किअं बोरम् ॥ १०० ॥

[गृहीत प्रलोकयतेदं प्रहसितवदना पत्युरर्पयति ।

जाया सुतप्रथमोद्भिन्नदन्तयुगलाङ्कितं वैदरम् ॥]

जाया इदं बदर गृहीत प्रलोकयतेति पत्युरर्पयतीति संबन्धः । स्वयमेव क्षतं संपाद्य पुत्रेण क्षतमिति मिथ्यैव दर्शयतीति प्रहसितवदनेति पदेन भवन्त्येते ॥

१. 'प्रचुरयुवको' इति ग-घ-पाठः. २. 'स्मरतु' इति घ-पाठः. ३. 'जम्पमाणं' इति ग-पाठः. ४. 'न शृणोति जल्पमानं' इति ग-पाठः. ५. 'करोतीश्वरसुता' इति ग-घ-पाठः. ६. 'निर्भरतया' इति ग-घ-पाठः. ७. 'जनस्तथाविध एवम्' इति ग-पुस्तके, 'जनः कथं तथैव' इति च घ-पुस्तके पाठः. ८. 'मन्दं प्रलोकयेमं' इति घ-पाठः. ९. 'विहसित' इति ग-पाठः. १०. 'पत्युरात्मनि' इति घ-पाठः. ११. 'वदनम्' इति क-घ-पाठः.

रसिअजणहिअअदइए कइवच्छलपमुहसुकइणिम्मइए ।

सत्तसअम्मि समत्तं बीअं गाहासअं एअम् ॥ १०१ ॥

[रसिकजनहृदयदयिते कविवत्सलप्रमुखसुकैविनिर्मिते ।

सप्तशतके समासं द्वितीयं गाथाशतकमेतत् ॥]

तृतीयं शतकम् ।

मिथ्या जनो वदतीत्यनुनयन्तं कान्तं मानिनी सप्रणयरोषमाह—

अच्छउ ता जणवाओ हिअअं विअ अत्तणो तुह पमाणम् ।

तह तं सि मन्दणेहो जह ण उवालम्भजोग्गो सि ॥ १ ॥

[अस्तु तावज्जनवादो हृदयमेवात्मनस्तव प्रमाणम् ।

तथा त्वमसि मन्दस्नेहो यथा नोपालम्भयोग्योऽसि ॥]

अयमस्या मन्दस्नेह इत्येवंरूपो जनवादोऽस्तु तावत् । हृदयमेवेति । आत्महृदयेनैव त्वं जानासीत्यर्थः । यथेति । स्निग्धो हि दाक्षिण्येनोपालम्भं सहते, त्व तूदासीन इति नोपालम्भयोग्य इति भावः ॥

हृदयोपालम्भच्छलेन यथाभिमतकान्ताप्राप्तिं सूचयन्ती कुलटा कमपि युवान रोचयितुमाह—

अप्पच्छन्दपहाविर दुल्लहल्लम्भं जणं वि सग्गन्त ।

आआसपहेहिं भमन्त हिअअ कइआवि भज्जिहिसि ॥ २ ॥

[आत्मच्छन्दप्रधावनशील दुर्लभलम्भं जनं [अपि] मृगयमाण ।

आकाशपथैर्भ्रमद्भ्रुदय कदापि भङ्गयसे ॥]

स्वेच्छाचारित्वसूचनार्थमात्मच्छन्दप्रधावनशीलेति संबोधनम् । दुर्लभस्य सुरतमुखस्य लम्भः प्राप्तिर्यस्मात्तत् । आकाशपथैर्निरवलम्बनमार्गैर्भ्रमत् । दृतीप्रमुखोपायादिति भावः । पाठान्तरे आयासवशैरित्यर्थः । कदापीत्यपिशब्दः संभावनायाम् । कः खलु सुभगो यस्तव भ्रमणं शमयिष्यतीति भावः ॥

१. 'विनिर्मितौ' इति ग-पाठः. २. 'तत्' इति ग-पाठः. ३. 'आत्मच्छन्दप्रभ-विष्णु दुर्लभलम्भं जनं विमार्गमान ।—कदापि दह्यसे ॥' इति ग-पुस्तके, 'आत्मच्छन्दप्रभावशीले दुर्लभलम्भं जनमपि मार्गमाण । अशपथैर्हृदयक्रियापि भग्ना भवति ॥' इति च घ-पुस्तके पाठः.

कापि गुणगर्विता गणिका सकृत्प्रवृत्तं पश्चान्मन्दादरं भुजंगं निन्दन्ती दूतीमाह—

अहव गुणत्रिवअ लहुआ अहवा गुणअणुओ ण सो लोओ ।

अहव ह्वि णिगुणा वा बहुगुणवन्तो जणो तस्स ॥ ३ ॥

[अथवा गुणा एव लघवोऽथवा गुणज्ञो न स लोकः ।

अथवास्मि गुर्णानि वा बहुगुणवाञ्जनस्तस्य ॥]

तस्य जनः प्रियारूपो बहुगुणवान्वेति योजना । येन मा न बहु मन्यत इत्यभिप्रायः ॥

अन्यासक्तं प्रियमात्मनो दुःखाभिव्यञ्जनेन कथं निवारयसीति वदन्ती मातुलानीं कापि प्रियस्यास्त्रिगुणा सूचयन्ती दृष्टान्तेन सनिर्वेदमाह—

फुट्टतेण वि हिअएण मामि कह णिव्वरिज्जए तम्मि ।

आदंसे पड्डिविम्बं व्व जम्मि दुःखं ण संकमइ ॥ ४ ॥

[स्फुटतापि हृदयेन मातुलानि कथं निवेद्यते तस्मिन् ।

आदर्शे प्रतिबिम्बमिव यस्मिन्दुःखं न संक्रामति ॥]

प्रयत्नसाधितामपि युवतीं विमृश्यकारितया नोपगच्छन्त नायकमुत्साहयितुं दूती सोपालम्भमन्यापदेशेनाह—

पासासङ्की काओ णेच्छदि दिण्णं पि पहिअघरणीए ।

ओअन्तकरअलोगलिअवलअमज्झट्टिअं पिण्डम् ॥ ५ ॥

[पाशाशङ्की काको नेच्छति दत्तमपि पथिकगृहिण्या ।

अवनतकरतलावगलितवलयमध्यस्थितं पिण्डम् ॥]

यथा पथिकगृहिण्या दत्तमप्यवनतादधोमुखीकृतात्करतलाद्गलितस्य वलयस्य मध्ये स्थितं भक्तपिण्डं काकः पाशाशङ्कया नेच्छति तथा त्वमप्येना मया दीयमानामपि भय-शङ्कया परिहरसीति भावः ॥

१. 'गुणअएलओ' इति ग-पाठः. २. 'णिगुणाओ' इति ग-पाठः. ३. 'गुणार्णवो न स लोक' । अथवा वय निर्गुणा अधिकगुणः स जनस्तस्य ॥' इति घ-पुस्तके, 'गुणज्ञ एव न स जनः । अथवा वयमेव निर्गुणा बहुगुणवन्तो जनास्तस्य ॥' इति च ग-पुस्तके पाठः. ४. 'अद्दाए' इति ख-ग-पाठः. ५. 'स्फुटितेनापि हृदयेन कथं भगिनि निर्वृतीभूयते तस्मिन् ।' इति ग-पुस्तके, 'स्फुट तेनापि हृदये मातुलि कथं निवारिते तस्मिन् ।' इति च घ-पुस्तके पाठः. ६. 'अवदाते प्रतिबिम्बमिव' इति घ-पाठः. ७. 'णेच्छवइ' इति ख-ग-पाठः. ८. 'ओणन्त' इति ग-पाठः. ९. 'न स्पृशति दत्तमपि बलि' इति ग-पाठः. १०. 'उन्नत' इति घ-पाठः.

श्रीषितभर्तृकायाः सखी तत्कान्तस्यागमनत्वरार्थं तत्त.मीपग.मिनं पान्थमाह—

ओहिदिअहागमासंकिरीहिँ सहिआहिँ कुँडुलिहिआओ ।

दोतिणिण तहिँ विअ चोरिआएँ रेहा पुसिज्जन्ति ॥ ६ ॥

[अवधिदिवसागमाशङ्किनीभिः सखीभिः कुँड्यलिखिताः ।

द्वित्रास्तत्रैव चोरिकया रेखाः प्रोञ्चयन्ते ॥]

अवधिदिनेऽपि त्वयि नागच्छति नूनमियं प्राणानपि जह्यादिति भावः ॥

कोऽपि कामुकश्चन्द्रवर्णनच्छलेनात्मनोऽभिलाषं प्रकाशयन्नायिकामाह—

तुह मुहसारिच्छं ण लहइ त्ति संपुण्णमण्डलो विहिणा ।

अण्णमअं व्व घडइउं पुणो वि खण्डिज्जइ मिअङ्को ॥ ७ ॥

[तव सुखसादृश्यं न लभत इति संपूर्णमण्डलो विधिना ।

अन्यमयमिव घटयितुं पुँनरपि खण्ड्यते मृगाङ्कः ॥]

अन्यमयमन्यप्रकारम् ॥

प्रामान्तरगमनाय कृतप्रस्थानस्य गेहान्तरे स्थितस्य नायकस्य गमननिषेधार्थं सखी तत्प्रियावृत्तान्तमाह—

अज्जं गौओत्ति अज्जं गओत्ति अज्जं गओत्ति गणरीए ।

पढम विवअ दिँअहद्धे कुडुो रेहाहिँ चित्तलिओ ॥ ८ ॥

[अद्य गत इत्यद्य गत इत्यद्य गत इति गणनशीलया ।

प्रथम एव दिवसार्धे कुँड्यं रेखाभिश्चित्रितम् ॥]

तदेवं त्वद्विरहविक्रवा ता विहाय गन्तुं नोचितमिति भावः ॥

पूर्वमकृतस्वीकारायाः पश्चाच्चिरप्रार्थनया स्वीकार कृतवत्याः प्रथमसमागम एव नायकगुणरञ्जितायाः प्रथमास्वीकारजनितविलक्ष वदनमालोक्य निजगुणगर्वितो नायकः सहचरमाह—

ण वि तह पढमसमागमसुरअरुँहे पाविएवि परिओसो ।

जँह वीअदिअह सविलक्खलक्खिए वअणकमलम्मि ॥ ९ ॥

१. 'तीअ लिहिआए' इति ग-पाठः. २. 'सकीर्तिनीभि' सखीभिस्तस्यालख-
न्याः । द्वित्रास्तस्मिश्चोरिकया रेखाः प्रक्षिप्यन्ते ॥' इति ग-पाठः. ३. 'भित्तिलि-
खिताः । द्वित्रित्वमेव गता तस्या रेखाः प्रसार्यन्ते ॥' इति घ-पाठः. ४. 'पुनः पुनः'
इति घ-पाठः. ५. 'गओ इति' इति ग-पाठः. ६. 'दिवसद्धे' इति ग-पाठः. ७. 'कुँड्यो
रेखाभिश्चित्रितः' इति ग-पुस्तके, 'भिती रेखाभिश्चित्रिता' इति च घ-पुस्तके
पाठः. ८. 'सुहेणावि परिओसो' इति ग-पाठः. ९. 'जह वीअदिअहरम्भे चुम्बणव-
लिए वअणकमलम्मि' इति ख-पाठः.

[नापि तथा प्रथमसमागमसुरतसुखे प्राप्तेऽपि परितोषः ।

यथा द्वितीयदिवससविलक्षलक्षिते वदनकमले ॥]

अपि सत्य कुसुममया वाणा मन्मथस्येति सख्या पृष्टा सखी सवैदग्ध्यं तामाह—

जे^३ संमुहागअवोलन्तवलिअपिअपेसिअच्छिविच्छोहा ।

अहं ते मअणसरा जणस्स जे होन्ति ते होन्तु ॥ १० ॥

[ये^४ संमुखागतव्यतिक्रान्तवलितप्रियप्रेषिताक्षिविक्षोभाः ।

अस्माकं ते मदनशरा जनस्य ये भवन्ति ते भवन्तु ॥]

समुखागतेन व्यतिक्रम्य गच्छता परिवृत्तेन प्रियेण प्रेषिता ये अक्षिविक्षोभा
लीलातरलकटाक्षा इत्यर्थः ॥

कामपि रमणीं प्रति साभिलापः कश्चिदात्मनोऽभिप्रायं प्रकाशयन्नाह—

इअरो जणो ण पावइ तुह जघणारुहणसंगमसुहेल्लिम् ।

अणुहवइ कणअडोरो हुअवहवरुणाणं माहप्पम् ॥ ११ ॥

[इतरो जनो न प्राप्नोति तव जघनारोहणसंगमसुखकेलिम् ।

अनुभवति कनकदोरो हुतवहवरुणयोर्माहात्म्यम् ॥]

तव जघनारोहणपूर्वकेण संगमेन यत्सुखं तदितरो जनोऽभिप्रायानीयाख्यत्रतरहितो न
प्राप्नोति । मुहुरमौ मुहुर्जले प्रवेशस्य फलं कनकदोरोऽनुभवतीत्यर्थः ॥

कामुक प्ररोचयितुं दूती नायिकायाः सौभाग्यातिशयमाह—

जो जस्स विहवसारो तं सो देइ त्ति किं एथ अच्छेरम् ।

अणहोन्तं पि खु दिण्णं दोहग्गं तइ सवत्तीणम् ॥ १२ ॥

[यो^५ यस्य विभवसारस्तं स ददातीति किमत्राश्चर्यम् ।

अभवदपि खलु दत्तं दौर्भाग्यं त्वया सपत्नीनाम् ॥]

अभवत् अविद्यमानम् ॥

१. 'सुखेनापि भवति परितोषः' इति ग-पुस्तके, 'सुखेन विद्यते परितोष' इति च
घ-पुस्तके पाठः. २. 'द्वितीयदिवससविलक्षं लक्षिते' इति ग-पुस्तके, 'द्वितीयरतारम्भे
चुम्बनवलिते' इति च घ-पुस्तके पाठः. ३. 'जे पमुहागअ' इति ग-पाठः. ४. 'ये
प्रमुखागतव्युत्क्रामद्वलितप्रियप्रेक्षिताक्षि' इति ग-पाठः. ५. 'प्राप्यते' इति घ-पाठः.
६. 'कनकसूत्रं हुतवहवर्णज्ञानमाहात्म्यम्' इति घ-पाठः. ७. 'ज जस्स विभवसारं' इति
ख-पाठः. ८. 'एत्थ' इति ग-पाठः. ९. 'यद्यस्य विभवसारं तत्स' इति ग-पाठः.
१०. 'अविद्यमानमपि' इति घ-पाठः. ११. 'सपत्नीभ्यः' इति घ-पाठः.

शोषितः कश्चिदुत्कण्ठाविनोदनार्थं प्रियां स्मरन्सहचरमाह—

चन्द्रसरिसं मुहं से सरिसो अमअस्स मुहरसो तिस्सा ।
सकअग्गहरहंसुज्जलचुम्बणअं कस्स सरिसं से ॥ १३ ॥

[चन्द्रसदृशं मुखं तस्याः सदृशोऽमृतस्य मुखरसस्तस्याः ।
सकचग्रहरैभसोज्ज्वलचुम्बनकं कस्य सदृशं तस्याः ॥]

विमृश्यकारिणं नायकमुत्साहयितुं दूत्याह—

उत्पण्णत्थे कज्जे अइच्चिन्तन्तो गुणागुणे तस्मि ।
चिँरआलमन्दपेच्छित्तणेण पुरिसो हणइ कज्जम् ॥ १४ ॥

[उत्पन्नार्थं कार्येऽतिचिन्तयन्गुणागुणौ तस्मिन् ।
चिरकालमन्दप्रेक्षित्वेन पुरुषो हन्ति कार्यम् ॥]

उत्पन्नः सिद्धोऽर्थोऽभिलषितपदार्थो यत्र तस्मिन् । फलाभिमुखे कार्यं इति यावत् ॥
विरहमसहमाना कापि प्रणयकुपितं कान्तमनुनयन्त्याह—

वालअ तुमाहि अहिअं णिअअं विअ वल्लहं महं जीअम् ।
तं तइ विणा ण होइ त्ति तेण कुविअं पसाएमि ॥ १५ ॥

[बालक त्वत्तोऽधिकं निर्जकमेव वल्लभं मम जीवितम् ।
तत्त्वया विना न भवतीति तेन कुपितं प्रसादयामि ॥]

प्रथमं कुपिता चरणप्रणामोत्तरं प्रसन्नां 'सिध्याखलवचनदूषितचित्तया मया खेदि-
तोऽसि' इति वदन्ती प्रिया प्रियः पुनरपि खलवचने प्रत्येव्यमीति काकूकत्या विधिमुखेन
निषेधयन्नाह—

पत्तिअ ण पत्तिअन्ती जइ तुज्ज इमे ण मज्ज रुअईए ।
पुट्ठीअ बाह्विन्दू पुलउम्भेण भिज्जेन्ता ॥ १६ ॥

१. 'रहसुव्वेल्लुम्बणं' इति ग-पाठः. २. 'अस्याः' इति ग-पाठः. ३. 'रभसोद्वे-
ल्लुम्बनं' ग-पाठः. ४. 'अस्याः' इति ग-पाठः. ५. 'अइ सुन्दर सल्लपेच्छित्तणेण'
इति ग-पाठः. ६. 'उपन्यस्ते' इति घ-पाठः. ७. 'चिन्तयमान' इति ग-पाठः.
८. 'अतिसुन्दरश्लक्ष्णप्रेक्षित्वेन' इति ग-पुस्तके, 'चिरकालशून्यप्रेक्षित्वेन' इति च घ-
पुस्तके पाठः. ९. 'त्वत्तोऽधिकं' इति ग-पाठः. १०. 'नियतमेव' इति घ-पाठः.
११. 'पत्तअ ण पत्तअन्ती' इति ग-पाठः. १२. 'भिज्जन्तो' इति ग-पाठः.

[प्रतीहि न प्रतीयन्ती यदि तवेमे न मम रोदनशीलायाः ।

पृष्ठस्य बाष्पबिन्दवः पुलकोद्भेदेन भिद्यमानाः ॥]

प्रतीहि प्रत्ययं कुर्विति सशिरश्चालनकाकूकत्या खलवचसि प्रत्ययमन्यदापि न करिष्यसीत्यर्थः । एतदेव द्रढयन्नाह—न प्रतीयन्तीत्यादिना । रोदनशीलायास्तव इमे बाष्पबिन्दवो मम पृष्ठस्य पुलकोद्भेदेन यदि न भिद्यमाना भिन्ना नाभविष्यन्, तदा त्वं न प्रतीयन्ती प्रत्ययं नाकरिष्य एवेत्यर्थः । तवाश्रुजलस्पर्शादपि मम पृष्ठे पुलकः संजातः । तर्कि खलवचसा मामननुरक्तं कलयसीति भावः ॥

नायकस्य दृढसौहृदमिच्छन्ती नायिका दूर्ती सदृष्टान्तमाह—

तं मित्तं काअठवं जं किर वसणम्मि देसआलम्मि ।

आलिहिअभित्ति वाउल्लअं व ण परम्मुहं ठाइ ॥ १७ ॥

[तन्मित्रं कर्तव्यं र्थतिकल व्यसने देशकालेषु ।

आलिखितभित्तिपुत्तलकमिव न पराङ्मुखं तिष्ठति ॥]

व्यसने विपदि । देशे देशान्तरे काले यौवनाद्यपगमे । वाउल्लअं पुत्तलिकेति देशी ॥

निभृतमपि धूर्ताः कलयन्तीति विज्ञत्वं ख्यापयन्नागरिकः सहचरमाह—

बहुआइ णइणित्तञ्जे पडमुग्गअसीलखण्डणविलक्खम् ।

उड्डेइ विहंगउलं हा हा पक्खेहिं व भणन्तम् ॥ १८ ॥

[वध्वा नदीनिकुञ्जे प्रथमोद्गतशीलखण्डनविलक्षम् ।

उड्डीयते विहंगकुलं हा हा पक्षैरिव भणत् ॥]

पक्षैर्हाहेति भणदिवेति योजना ॥

प्रोषितभर्तृकायाः सखी तत्कान्तमागमनत्वराथमाह—

सच्चं भणामि बालअ णत्थि अंसक्कं वसन्तमासस्स ।

गन्धेण कुरवआणं मणं पि असइत्तणं ण गआ ॥ १९ ॥

[सत्यं भणामि बालक नास्त्यैशक्यं वसन्तमासस्य ।

गन्धेन कुरवकाणां मनागप्यसतीत्वं न गता ॥]

१. 'प्रतीहि न प्रत्ययमस्या' इति ग-पुस्तके, 'प्रतीय न प्रतीयन्ती' इति च घ-पुस्तके पाठः. २. 'रुदन्याः' इति ग-पाठः. ३. 'पृष्ठे' इति ग-पुस्तके, 'पृष्ठीय' इति च घ-पुस्तके पाठः. ४ 'भिद्येरन्' इति ग-पुस्तके, 'भिन्नाः' इति च घ-पुस्तके पाठः. ५. 'वाउल्लओ' इति ग-पाठः. ६. 'यदेव' इति ग-पाठः. ७. 'देशकालयोः' इति घ-पाठः. ८. 'आलिखितचित्रवक इव' इति ग-पाठः. ९. 'उड्डीयते' इति ग-पाठः. १०. 'असज्झं' इति ग-पाठः. ११. 'असाध्यं' इति ग-पाठः.

नास्त्यशक्यमिति यथा च स्वलितमेव मन इति भावः । मनागपीति त्वदागमनप्रत्या-
शया शीलं रक्षतीत्यर्थः । तथावदस्याः शीलखण्डनं न भवति तावत्वरितं संभावयैना-
मिति भावः ॥

नायकं प्रति दूती कस्याश्चिदनुरागातिशयमाह —

एकैकभवंइवेठणविवरन्तरदिण्णतरलणअणाए ।

तइ बोळन्ते बालअ पञ्जरसउणाइअं तीए ॥ २० ॥

[एकैकवृत्तिवेष्टनविवरान्तरदत्ततरलनयनया ।

त्वयि व्यतिक्रान्ते बालक पञ्जरशकुनायितं तथा ॥]

एकैकस्मिन् वृत्तिवेष्टनस्य विवरान्तरे दत्तं तरलं नयनं यथा एतादृश्या तथा पञ्ज-
रशकुनवदाचरितम् । यथा पञ्जरबद्धः पक्षी प्रतिविवरं दत्तदृष्टिर्भ्रमति तथा तथापि त्वद्-
शनलालसया भ्रान्तमित्यर्थः ॥

तद्देहमार्गेण गतोऽप्यहं तथा न दृष्ट इति वदन्तमुपनायक दूती नायिकादोषं परि-
हरन्त्याह—

ता कि करेउ जइ तं सि तीअ वइवेठपेळ्ळिअथणीए ।

पाअङ्कुट्टद्धक्खित्तणीसहङ्गीअ वि ण दिट्ठो ॥ २१ ॥

[तत्किं करोतु यदि त्वमसि तथा वृत्तिवेष्टनप्रेरितस्तनया ।

पादाङ्कुष्ठार्धक्षिप्तनिःसहाङ्ग्यापि न दृष्टः ॥]

वृत्तिवेष्टनस्योच्चतया कृतयत्नयापि तथा यदि न दृष्टस्तदा कस्तस्या दोष इति भावः ॥

पथिकजायाभिलाषिणं कामुकं दूती नायिकाया निजनायकेऽनुरागातिशयसूचनेना-
साध्यत्वं प्रतिपादयितुमाह—

पिअसंभरणपलोट्टन्तवाहधाराणिवाअभीआए ।

दिज्जइ वङ्कग्गीवाए दीवओ पहिअर्जाआए ॥ २२ ॥

[प्रियसंस्मरणप्रलुठद्वाष्पधारानिपातभीतया ।

दीयते वक्रग्रीवया दीपकः प्रथिकजायया ॥]

१. 'वइवेठणविवरन्तरतरलदिण्णणअणाए' इति ग-पाठः. २. 'एकैकमवृत्तिवेष्टन-
विवरान्तरतरलदत्तनयनया' इति घ-पाठः. ३. 'व्युत्क्रामति' इति ग-पाठः. ४. 'पे-
ळ्ळण' इति क-पाठः. ५. 'तया त्वमसि' इति ग-पाठः. ६. 'प्रेरितस्तन्या' इति ग-
पाठः. ७. 'निक्षिप्त' इति ग-पाठः. ८. 'घरणीए' इति ग-पाठः. ९. 'प्रियस्मरण-
प्रत्यागतबाष्प' इति ग-पाठः. १०. 'प्रगलद्वाष्प' इति घ-पाठः. ११. 'पथिकगृहिण्या'
इति ग-पाठः.

कमपि युवानमनुरञ्जयितु दूती कस्याश्चित्लेहदैन्यसूचकं परिवृत्त्यावलोकनमाह—

तइ बोलन्ते बालअ तिस्सा अङ्गाइँ तह णु वलिआइँ ।

जह पुट्टिमज्झणिवतन्तवाहधाराओँ दीसन्ति ॥ २३ ॥

[त्वयि व्यतिक्रामति बालक तस्या अङ्गानि तथा नु वलितानि ।

यथा पृष्ठमध्यनिपतद्वाष्पधारा दृश्यन्ते ॥]

वलितानि परिवृत्तानि ॥

कापि प्रियतमविरहस्य दुःसहत्वमन्यापदेशेनाह—

ता मैज्झिमो विअ वरं दुज्जणसुअणेहिँ दोहिँ वि ण कज्जम् ।

जद दिट्ठो तवइ खलो तहे अ सुअणो अईसन्तो ॥ २४ ॥

[तन्मध्यम एव वर दुर्जनसुजनाभ्यां द्वाभ्यामपि नै कार्यम् ।

यथा दृष्टस्तोपयति खलस्तथैव सुजनोऽदृश्यमानः ॥]

काप्यात्मनः पतिं साभिलाषमवलोकयन्तीं सेर्ष्यमाह—

अद्धच्छिपेच्छिअं मा करेहि साहाविअं पलोएहि ।

सो वि सुदिट्ठो होहिँइँ तुमं पि मुद्धा कलिज्जिहिसि ॥ २५ ॥

[अर्धाक्षिप्रेक्षितं मा कुरु स्वाभाविकं प्रलोकय ।

सोऽपि सुदृष्टो भविष्यति त्वमपि मुग्धा कलिष्यसे ॥]

अर्धाक्षिप्रेक्षितं कटाक्षनिरीक्षणम् ॥

प्रोषितः कश्चित्कुलपालिकाया निजवनितायाश्चरितमनुस्मरन्वयस्यमाह—

दिअहं खुडक्किआए तीए काऊण गेहवावारम् ।

गरुए वि मण्णुदुःखे मरिमो पाअन्तसुत्तस्स ॥ २६ ॥

[दिवसं रोषमूकायास्तस्याः कृत्वा गेहव्यापारम् ।

गुरुकेऽपि मन्युदुःखे स्मरामः पादान्तसुसस्य ॥]

खुडक्किआ रोषमूका । गुरुके मन्युदुःखे दिवसं व्याप्य गेहव्यापारं कृत्वा रोषमूका-
यास्तस्याः पादान्तशयनं स्मराम इति संबन्धः ॥

१. 'व्यतिक्रान्ते' इति ग-पाठः. २. 'मज्झिमो' इति ग-पाठः. ३. 'न मे कार्यम्'
इति ग-पाठः. ४. 'तपति' इति घ-पाठः. ५. 'हो इहि' इति क-पाठः. ६. 'कुह्व'
इति ग-पाठः. ७. 'दिवसं व्याप्य' इति क-ख-ग-पाठः. ८. 'कुपितायाः' इति
ग-पाठः.

कमप्यनुरक्त धनिकमधमस्त्रीसद्गदोषेण परिहरन्तीं दुहितरं वेश्यामाता शिक्षयि-
तुमाह—

पाणउडीअ वि जलिरुण हुअवहो जलइ जण्णवाडम्मि ।

ण हु ते परिहरिअव्वा विसमदसासंठिआ पुरिसा ॥ २७ ॥

[पानकुव्यामपि ज्वलित्वा हुतवहो ज्वलति यज्ञवाटेऽपि ।

नै खलु ते परिहर्तव्या विषमदशासंस्थिताः पुरुषाः ॥]

पानकुटी चण्डालकुटी ॥

खभर्तारि विरागं सूचयन्ती कमप्यसती सतीं निजभार्या बहुमन्यमानं युवानं सबैद-
ग्ध्यानुरागमाह—

जं तुज्झ सई जाआ असईओ जं च सुहअ अहो वि ।

ता किं फुट्टु वीअं तुज्झ समानो जुआ णत्थि ॥ २८ ॥

यत्तव सती जाया असत्यो यच्च सुभग वयमपि ।

तत्किं स्फुटतु वीजं तव समानो युवा नास्ति ॥]

स्फुटतु प्रकटीभवतु । तदेव बीजमाह—तव समान इति । एतदेव बीजमिति भावः॥

कापि कस्मिन्नप्यनुरागातिशयं प्रकाशयन्ती दूतीमाह—

सव्वस्सम्मि वि द्दुहे तहवि हु हिअअस्स णिव्वुदि च्चेअ ।

जं तेण गामडाहे हत्थाहत्थि कुडो गहिओ ॥ २९ ॥

[सर्वस्वेऽपि दग्धे तथापि खलु हृदयस्य निर्वृतिरेव ।

यत्तेन ग्रामदाहे हस्ताहस्तिकया कुटो गृहीतः ॥]

कुटो घटः ॥

गृहकर्मव्यापृता काचिदसती कामुकमनोरथसंपादनासमर्था तत्प्रहितां दूतीमन्यापदे
शेनाह—

जाण्ण वणुहेसे कुज्जो वि हु णीसहो झडिअपत्तो ।

मा माणुसम्मि लोए ताई रसिओ दरिहो अ ॥ ३० ॥

१. 'ज्वलयति' इति ग-पाठः. २. 'अपि' इति घ-पुस्तके नास्ति. ३. 'नैव ते'
इति ग-पाठः. ४. 'ते इति' घ-पुस्तके नास्ति. ५. 'सुहअ जं च' इति ग-पाठः.
६. 'सुभग यच्च' इति ग-पाठः. ७. 'त्वत्समो' इति ग-पाठः. ८. 'च' इति ग-पाठः.
९. 'खालुओ गलितवत्तो' इति ग-पाठः. १०. 'वाई सरिसो' इति क-पाठः.

[जायतां वनोद्देशे कुञ्जोऽपि खलु निःशाखः शिथिलपत्रः ।

मा मानुषे लोके त्यागी रसिको दरिद्रश्च ॥]

त्यागी दित्सुः । रसिकः सानुरागः, शृङ्गारी च । दरिद्रो निर्धनः । अवसररहितश्च ।
त्यागित्वादिगुणयुक्तो मा जायतामिति संबन्धः ॥

जारं प्रत्यनुरागातिशयं सूचयन्ती कापि तन्मित्रमाह—

तस्स अ सोहृग्गगुणं अमहिलसरिसं च साहसं मज्झ ।

जाणइ गोलाऊरो वासारत्तोद्धरत्तो अ ॥ ३१ ॥

[तस्य च सौभाग्यगुणममहिलासदृशं च साहसं मम ।

जानाति गोदापुरो वर्षारान्नार्षारात्रश्च ॥]

वर्षास्वर्धरात्रे जलपूर्णगोदावरीतरण तदभिसरणार्थं करोमीति भावः ॥

कथमधुना सतीत्वमवलम्बितमिति केनापि कामुकेन सपरिहासमुक्ता कुलटा तमाह—

ते वोळिआ वैअस्सा ताण कुडङ्गाण थाणुआ सेसा ।

अहो वि गअवआओ मूलुच्छेअं गअं पेम्मम् ॥ ३२ ॥

[ते व्यतिक्रान्ता वयस्यास्तेषां कुञ्जानां स्थाणवः शेषाः ।

वयमपि गतवयस्का मूलोच्छेद्यं गतं प्रेम ॥]

ते वयस्याः समानशीला व्यतिक्रान्ता दूरं गताः । येषु तैः सह सुरतसुखमनुभूतं
तेषां लतागृहाणा स्थाणवोऽवशिष्टाः । अतो मूलोच्छेद्यमुच्छिन्नमूलं प्रेम गतम् । न-
ष्टमित्यर्थः ॥

कामपि गतयौवनां कुलटा प्रति नागरिकः सपरिहासमाह—

थणजहणणिअम्बोवरि णँहरङ्का गअवआण वणिआणम् ।

उव्वसिआणङ्गणिवासमूलबन्ध व्व दीसन्ति ॥ ३३ ॥

[स्तनजघननितम्बोपरि नखैराङ्का गतवयसां वनितानाम् ।

उद्वसितानङ्गनिवासमूलबन्धा इव दृश्यन्ते ॥]

१. 'उत्पश्यामि' इति ग-पुस्तके, 'जायेत' इति च घ-पुस्तके पाठः. २. 'कुञ्जको-
ऽपि स्थाणुको गलितपत्रः' इति ग-पाठः. ३. 'गलितपत्रः' इति घ-पाठः. ४. 'गोदा-
वरीपुरे' इति क-ख-पाठः. ५. 'वैअस्सा' इति ग-पाठः. ६. 'व्यतीता वेतसाः' इति
ग-पाठः. ७. 'कुरङ्गाणां' इति घ-पाठः. ८. 'स्थाणुकाः' इति ग-पाठः. ९. 'मूलो-
च्छेद' इति ग-पाठः. १०. 'दशणङ्का' इति ग-पाठः. ११. 'विलआणम्' इति ख-ग-
पाठः. १२. 'दशनाङ्का गतवयस्काना स्त्रीणाम्' इति ग-पाठः. १३. 'बन्धमिव' इति
घ-पाठः.

उद्वसितस्य शून्यीकृतस्यानङ्गनिवासस्य मूलबन्धा इवेत्यर्थः ।

बहुभिर्युष्माभिस्तां दृष्ट्वा आगतम् । तदुच्यतां कीदृक्तस्या रूपमिति नायकेन पृष्टाः
सहचराः प्राहुः—

जस्स जहं विअ पढमं तिस्सा अङ्गम्मि णिवडिआ दिट्ठी ।

तस्स तहि चेअ ठिआ सब्वङ्गं केण वि ण दिट्ठम् ॥ ३४ ॥

[यस्य यत्रैव प्रथमं तस्या अङ्गे निपतिता दृष्टिः ।

तस्य तत्रैव स्थिता सर्वाङ्गं केनापि न दृष्टम् ॥]

अत्यन्तविरहसंतप्तः प्रवासादागतः प्रियासंगमेन संतुष्टः कश्चिदाह—

विरहे विसं व विसमा अमअमआ होइ संगमे अहिअम् ।

किं विहिणा समअं निअ दोहिं वि पिआ विणिम्मिअआ ॥ ३५ ॥

[विरहे विषमिव विषमोमृतमया भवति संगमेऽधिकम् ।

किं विधिना सममेव द्वाभ्यामपि प्रिया विनिर्मिता ॥]

द्वाभ्यां विषामृताभ्याम् ॥

चिरप्रवासागतेन भुजगेनोपालब्धा वेश्यामाता भुजगान्तरलमाया दुहितुर्दोष परिह-
रन्ती आह—

अहंसणेण पुँत्तअ सुट्टु वि णेहाणुबन्धघँडिआइं ।

हत्थउडपाणिआइँ व कालेण गलन्ति पेम्माइं ॥ ३६ ॥

[अदर्शनेन पुत्रक सुष्टुपि स्नेहानुबन्धघटितानि ।

हस्तपुटपानीयानीव कालेन गलन्ति प्रेमाणि ॥]

स्त्रीणां बहुच्छलत्वं दर्शयन्ती दूती कमपि युवानं साभिप्रायमाह—

पइपुरओ व्विअ णिज्जइ विच्छुदद्वेत्ति जारवेज्जघँरम् ।

णिउणसँहीकरधारिअ भुअजुअलन्दोलिणी बाला ॥ ३७ ॥

[पतिपुरत एव नीयते वृश्चिकदष्टेति जारवैद्यगृहम् ।

निपुणसँखीकरधृता भुजयुगलान्दोलनशीला बाला ॥]

१. 'यस्मिन्नेव' इति ग-पाठः. २. 'अङ्गेषु' इति घ-पाठः ३. 'तस्मिन्नेव' इति ग-
पाठः. ४. 'अमृतमयी' इति ग-घ-पाठः. ५. 'किं सममेव विधिना' इति ग-पाठः.
६. 'बाला' इति ग-पाठः. ७. 'घडिआणम्' इति ग-पाठः. ८. 'घटितानाम्' इति
ग-पाठः. ९. 'विच्छुआडक्त्ति' इति ग-पाठः. १०. 'हरम्' इति ग-पाठः. ११. 'सही-
करलम्बिअकरवलअन्दोलिरी' इति क-ख-पाठः. १२. 'सखीकरलम्बितकरवलान्दो-
लशीला' इति घ-पाठः.

निपुणाभिरभिप्रायज्ञाभिः सखीभिः करे धृता विषजनितमूर्च्छाञ्छलेन भुजयुगलान्दोलनशीला । बालेति प्रगल्भायास्तु कैतव किं वक्तव्यमिति भावः ॥

नीचजनस्य कार्यैकपरता सूचयन्ती पूर्वसुभगा नववधूसक्रान्तब्रह्म कान्तमन्यापदेनेनाह—

विक्रिणइ माहमासम्भि पामरो पाइडिं वइङ्गेण ।

णिद्धूममुर्मुर त्विअ सामलीअ थैणो पडिच्छन्तो ॥ ३८ ॥

[विक्रीणीते माघमासे पामरः प्रावरणं बलीवर्देन ।

निर्धूममुर्मुरनिभौ श्यामल्याः स्तनौ पश्यन् ॥]

सोष्मत्वेन शीतनिस्तारहेतुत्वान्निर्धूमतुषामिसादृश्यम् । तवापीदानीं लब्धाभिनववधूकस्य किं मया कार्यमिति भावः ॥

स्त्रीषु कदापि विश्वासो न कर्तव्य, इति बन्धुजनशिक्षार्थं काचिदाह—

सच्चं भणामि मरणे द्विअह्मि पुण्णे तडम्मि तावीए ।

अज्ज वि तत्थ कुडङ्गे णिवडइ दिट्ठी तह च्चेअ ॥ ३९ ॥

[सत्यं भणामि मरणे स्थितास्मि पुण्ये तटे ताप्याः ।

अद्यापि तत्र निकुञ्जे निपतति दृष्टिस्तथैव ॥]

मरणे स्थितास्मि गृहीतमरणव्रतास्मीत्यर्थं । तत्राभिसारस्थाने । तथैव अभिसारोत्सुकैव । अतः स्त्रीषु न विश्वसेदित्यर्थः ॥

असतीभिरभिसार्यमाणभर्तृका कुलवधू सखीजनमाह—

अन्धअरबोरपत्तं व माउआ मह पइं विलुम्पन्ति ।

ईसाअन्ति महं विअ छेप्पाहिनतो फणो जाओ ॥ ४० ॥

[अन्धकरबदरपार्त्रमिव र्मांतरो मम पतिं विलुम्पन्ति ।

ईर्ष्यन्ति^१ मह्यमेव लाङ्गुलेभ्यः फणो जातः ॥]

१. 'पारिडि' इति ख-पुस्तके, 'पावलि' इति च ग-पुस्तके पाठः. २ 'मुर्मुरसच्छहे' इति ग-पाठः. ३. 'थणए पडीच्छन्तो' इति ख पुस्तके. 'थणएणिअच्छन्तो' इति च ग-पुस्तके पाठः. ४. 'विक्रीणाति' इति ग-घ पाठः. ५. 'पटी' इति ग पुस्तके, 'प्रावरं' इति च घ-पुस्तके पाठः. ६. 'निर्धूमाङ्गारसदृशयोः श्यामायाः स्तनयोर्नियच्छन्' इति ग-पुस्तके, 'निर्धूममुर्मुराविव श्यामल्याः स्तनौ प्रतीक्षमाणः' इति च घ-पुस्तके पाठः. ७. 'कुरङ्गे' इति घ-पाठः. ८. 'पत्थि' इति ख-ग-पाठः. ९. 'भाजनमिव' इति ग-पुस्तके, 'प्रस्थमिव' इति च घ-पुस्तके पाठः. १०. 'मायाविन्यः' इति ग-पाठः. ११. 'ईर्ष्यन्ते मध्येव पुच्छादेव फणो' इति ग-पुस्तके, 'ईर्ष्यायति मह्यमेव पुच्छात्फणो' इति च घ-पुस्तके पाठः.

हे मातरः, अन्धहस्तस्थितं बदरपात्रमिव मम पतिं विद्धुम्पन्ति चौर्येणाभिसरन्ति ।
अथ च मह्यमेवेर्ष्यन्ति । अतो लाङ्गूलेभ्यः फणोत्पत्तिवद्विपरीतमेवैतदित्यर्थः ॥

नीचस्याल्पधनेनैव गर्वातिशयो भवतीति प्रतिपादयन्ती दूती कस्याश्चिदल्पद्रव्यसा-
ध्यत्वं सूचयितुं नायकमाह—

अप्पत्तपत्तअं पाविऊण णवरङ्गअं हलिअसोण्हा ।

उअह तणुइ ण माअइ रुन्दासु वि गामरच्छासु ॥ ४१ ॥

[अप्राप्तप्राप्तं प्राप्य नवरङ्गकं हलिकस्रुषा ।

पश्यत तैन्वी न माति विस्तीर्णास्वपि ग्रामरथ्यासु ॥]

अप्राप्या अलभ्या प्राप्तिर्लाभो यस्य । अलभ्यलाभमिति यावत् । नवरङ्गकं कुसु-
म्भवन्नम् ॥

कापि प्रत्यक्षदृष्टापराधपरिहारोचितप्रत्युत्तरकुशलां सखीं सबहुमानमाह—

आक्खेवआइँ पिअजम्पिआइँ परहिअअणिँव्वुदिअराइँ ।

विरलो खुँ जाणइ जणो उप्पण्णे जम्पिअव्वाइँ ॥ ४२ ॥

[वाक्क्षेपकाणि प्रियजल्पितानि परहृदयनिर्वृतिकराणि ।

विरलः खँलु जानाति जन उत्पन्ने जल्पितव्यानि ॥]

वाक्क्षेपकाणि प्रतिवादिबचनस्कन्दकानि । संप्रत्ययोत्पादनकौशलात्परहृदयनिर्वृ-
तिकराणि । उत्पन्ने अपराधादौ जल्पितव्यानि विरलो जनो जानातीत्यर्थः । त्वमेव पर-
मीदृशानि प्रियवचनानि वक्तुं जानासीति भावः ॥

नायकस्यानीप्सिता गृहीतमानां सखीं बोधयितुमाह—

छज्जइ पहुस्स ललिअं पिआइ माणो खमा समत्थस्स ।

जाणन्तस्स अ भणिअं मोणं च अआणमाणस्स ॥ ४३ ॥

[शोभते प्रभोर्ललितं प्रियाया मानः क्षमा समर्थस्य ।

जानतश्च भणितं मौनं चाँजानतः ॥]

प्रभोर्ललितं खेच्छाक्रीडितं शोभते । प्रियाया मानः । न त्वप्रियायाः । शोभत
इति सर्वत्र योज्यम् ॥

१. 'तणुइ वि ण' इति ग-पाठः. २. 'तन्व्यपि न माति बृहतीध्वपि' इति ग-पाठः.
३. 'सच्चं पिआइँ पिअजम्पिआइँ' इति ग-पाठः. ४. 'णिव्वुइँ' इति ग-पाठः. ५. 'व्व'
इति ग-पाठः. ६. 'सत्वं प्रियाणि' इति ग-पुस्तके, 'अख्याहि तानि' इति च घ-पुस्तके
पाठः. ७. 'एव' इति ग-पाठः. ८. 'जल्पितानि' इति घ-पाठः. ९. 'जानन्तस्य च'
इति घ-पाठः. १०. 'जानमानस्य' इति घ-पाठः.

प्रियं प्रति मदनलेखं लिखेति सखयोक्ता प्रोषितभर्तृका तामाह—

वेविरसिष्णकरङ्गुलिपरिग्गहक्खसिअलेहणीमग्गे ।

सोत्थि विअ ण समप्पइ पिअसहि लेहम्मि किं लिहिमो ॥ ४४ ॥

[वेपनशीलखिन्नकराङ्गुलिपरिग्रहस्खलितलेखनीमार्गे ।

स्वस्त्येव न समाप्यते प्रियसखि लेखे किं लिखामः ॥]

वेपनशीलाभिः खिन्नाभिः कराङ्गुलिभिः परिग्रहेण स्खलिते लेखनीमार्गे स्वस्तीति वर्णद्वयमेव न निष्पद्यते । एतेन कम्पस्वेदाभ्यां सात्त्विकभावाभ्यां प्रियं प्रत्यनुरागाति-
शयः सूचितः ॥

अपि कृतकार्यासीति कयापि पृष्टा दूती स्वाकौशलमपनयन्ती आह—

देव्वम्मि पराहुत्ते पत्तिअ घडिअं पि विहडइ णराणम् ।

कज्जं वालुअवरणं व्व कहुँ वि बन्धं विअ ण एइ ॥ ४५ ॥

[देवे पैराङ्गुस्त्रे प्रतीहि घटितमपि विघटते नराणाम् ।

कार्ये वालुकावरण इव कथमपि बन्धमेव न ददाति ॥]

वरणः प्राकारः । बन्धमेव न ददाति । घटयितुमेव न शक्यत इत्यर्थः ॥

मातुलान्या पूर्वं कथितसौन्दर्यादिगुणस्य नायकस्य स्वस्मिन्ननुरागातिशयं प्रति-
पादयन्ती कापि सानुरागमाह—

मामि हिअअं व पीअं तेण जुआणेण मैज्जमाणाए ।

ण्हाणहलिहाकडुअं अणुसोत्तजलं पिअन्तेण ॥ ४६ ॥

[मातुलानि हृदयमिव पीतं तेन यूना मज्जन्याः ।

स्नानह्रिद्राकटुकमनुस्रोतोजलं पिबता ॥]

हे मातुलानि, मदङ्गसङ्गबहुमानात् हरिद्राकटुकमपि जलं पिबता तेन यूना मम हृ-
दयमिव पीतम् । अपहृतमित्यर्थः । अतस्तत्प्राप्तौ यतस्वेति भावः ॥

-
१. 'वेपमानकराङ्गुलि' इति ग-पुस्तके, 'परसखिन्नकराङ्गुलि' इति च घ-पुस्तके पाठः. २. 'स्तोस्त्येव समाप्यते प्रियमहिले वयं किं लिखामः' इति घ-पाठः. ३. 'विपरीते पत्रिकघटितमपि' इति ग-पाठः. ४. 'वालुकाप्राकारमिव कथमपि बन्धमेव न गच्छति' इति ग-पुस्तके, 'वालुकप्राहमिव कथं बन्धमेव नैति' इति च घ-पुस्तके पाठः. ५. 'मज्ज माणिअ अ' इति ग-पाठः. ६. 'मामि' इति ग-पाठः. ७. 'यूना मे मानिन्याः' इति ग-पाठः. ८. 'हरिद्रासुरभिसमुत्स्रोतोजल' इति ग-पाठः.

कृतप्रणयकलहयोर्दपत्योः प्रणयरोषभङ्गार्थं सखी आह—

जिंविअं असासअं विअ ण णिंवेत्तइ जोव्वणं अतिकन्तम् ।
दिअहा दिअहेहिं समा ण होन्ति किं णिट्ठुरो लोणो ॥ ४७ ॥

[जीवित्तमशाश्वतमेव न निवर्तते यौवनमतिक्रान्तम् ।
दिवसा दिवसैः समा न भवन्ति किं निष्ठुरो लोकः ॥]

अहरहयौवनकालस्य च हासार्तिकं रोषपारुष्येणात्मानं वञ्चयथ इति भावः ॥
वेश्योपभुज्यमानविभवं प्रियं कापि सासूयमन्यापदेशेनाह—

उप्पाइअदव्वाणं वि खलाणं को भाअणं खलो च्चेअ ।
पक्काइं वि णिम्बफलाइं णवरं काएहिं खज्जन्ति ॥ ४८ ॥

[उत्पादितद्रव्याणामपि खलानां को भाजनं खल एव ।
पक्कान्यपि निम्बफलानि केवलं काकैः खाद्यन्ते ॥]

उत्पादित द्रव्यैस्तेषां खलानाम् । भाजनं दानपात्रम् ॥

इङ्गितज्ञतां ख्यापयन्नागरिकः सहचरमाह—

अज्ज मए गन्तव्वं घणन्धआरे वि तस्स सुहअस्स ।
अज्जा णिमीलिअच्छी पअपरिवाडिं घरे कुणइ ॥ ४९ ॥

[अद्य मया गन्तव्यं घनान्धकारेऽपि तस्य सुभगस्य ।
आर्या निमीलिताक्षी पदपरिपाटीं गृहे करोति ॥]

नायिकानुरागं प्रकाशयन्त्या दूत्याः कामुक प्रत्युक्तिरियमिति केचित् ॥

कृतविप्रिय प्रति प्रतिकूलाचरणप्रवृत्तस्य कस्यचिन्निवारणाय कश्चित्सुजनचरित्र वर्णयति—

सुअणो ण कुप्पइ विवअ अह कुप्पइ विप्पिअं ण चिन्तेइ ।
अह चिन्तेइ ण जम्पइ अह जम्पइ लंज्जिणो होइ ॥ ५० ॥

१. 'जीअं असासिअ विअ' इति ग-पाठः. २. 'णिअत्तइ' इति ग-पाठः. ३. 'अ-
इकन्त' इति ख-ग-पाठः. ४. 'जीवमाश्वासितमेव' इति ग-पाठः. ५. 'न भवन्ति
समाः' इति ग-पाठः. ६. 'उपार्जितद्रव्याणामपि' इति ग-पाठः. ७. 'को भवति
भाजनं' इति ग-पाठः. ८. 'पक्कानीव निम्बफलानि काकेनेव खाद्यन्ते' इति ग-पाठः.
९. 'ईश्वरसुता' इति ग-पाठः. १०. 'लज्जिरो' इति ग-पाठः.

[सुजनो न कुप्यत्येव अथ कुप्यति विप्रियं न चिन्तयति ।

अथ चिन्तयति न जल्पति अथ जल्पति लज्जितो भवति ॥]

तस्मादनुचितमिदं सुजनस्य भवत इति भावः ॥

भाविधनप्रत्याशया भुजंगे कृतानुरागां दुहितरं वारयन्ती वेश्यामाता धनादीनामुपा-
देयताप्रयोजकमाह—

सो अत्थो जो हत्थे तं मित्तं जं णिरन्तरं वसणे ।

तं रूअं जत्थ गुणा तं विण्णाणं जाहि धम्मो ॥ ५१ ॥

[सोऽर्थो यो हस्ते तन्मित्रं यन्निरन्तरं व्यसने ।

तद्रूपं यत्र गुणास्तद्विज्ञानं यत्र धर्मः ॥]

द्रव्यमादायैव त्वया भुजगः स्वीकार्य इति भावः । यद्वा काचिद्रूपगर्वितां निर्गुणां
निन्दन्त्याः स्वगुणोत्कर्षं सूचयन्त्या इयमुक्तिः ॥

चिरप्रवासादागतो नायकः प्रियतमायाः परितोषार्थमाह—

चन्द्रमुहि चन्द्रधवला दीहा दीहच्छि तुह विओअम्मि ।

चउजामा सअजाम व्व जामिणी कहुँ वि वोलीणा ॥ ५२ ॥

[चन्द्रमुखि चन्द्रधवला दीर्घा दीर्घाक्षि तव वियोगे ।

चतुर्यामा शतयामेव यामिनी कथमप्यैतिक्रान्ता ॥]

मयेति शेषः ॥

दुर्जनमैत्री न चिरकालस्थायिनीति सखी नायिकां शिक्षयितुमाह—

अउलीणो दोमुहओ ता महुरो भोअणं मुहे जाव ।

मुरओ व्व खलो जिण्णम्मि भोअणे विरसमारसइ ॥ ५३ ॥

[अकुलीनो द्विमुखस्तावन्मधुरो भोजनं मुखे यावत् ।

मुरज इव खलो जीर्णे भोजने विरसमारसति ॥]

अकुलीनोऽसत्कुलप्रसूतः । मुरजपक्षे कौ पृथिव्यां न लीनः । द्विमुखः समक्षपरोक्ष-
योर्वचनभेदात् । पक्षे उभयमुखः । यावन्मुखे भोजनमाहारः । पक्षे पिष्टादिलेपः । मधुरः
प्रियवक्ता । पक्षे श्रुतिसुखावहः । भोजने जीर्णे विरसमप्रियम् । पक्षे रूक्षध्वनिम् ।
आरसति । यद्वा दुर्जनमुखपिण्डदानार्थं कुलटां शिक्षयन्त्या कुट्टन्या इयमुक्तिः ॥

१. 'कुप्यत एव' इति ग-घ-पाठः. २. 'यस्मिन्' इति ग-पाठः. ३. 'व्यतिक्रान्ता'
इति ग-घ-पाठः. ४. 'जिण्णे' इति ग-पाठः. ५. 'मधुरं' इति घ-पाठः. ६. 'रज इव
खलक्षीणो भाजने' इति घ-पाठः.

दर्शनमात्रेणैव विदग्धा भावमाविष्कुर्वन्ति लक्षयन्ति चेति दर्शयन्नागरिकः सहचर
शिक्षार्थमाह—

तह सोर्णहाइ पुलइओ दैरवलिअन्तद्धतारअं पहिओ ।

जह वारिओ वि घरसामिएण ओलिन्दए वसिओ ॥ ५४ ॥

[तथा स्रुषया प्रलोकितो दैरवलितार्धतारकं पथिकः ।

यथा वारितोऽपि गृहस्वामिना अलिन्दके सुप्तः ॥]

अलिन्दो बहिर्द्वारप्रकोष्ठः ॥

कार्यमप्रसाध्य श्लाघनपरस्य, प्रसाध्य वात्मगुणोत्कीर्तनपरस्य निषेधाय कश्चित्स्वरूपा-
ख्यानेन विज्ञत्व प्रकटयन्नाह—

लहुअन्ति लहुं पुरिसं पव्वअमेत्तं पि दो वि कज्जाइं ।

णिव्वरणमणिव्वूढे णिव्वूढे जं अ णिव्वरणम् ॥ ५५ ॥

[लघयतो लघु पुरुषं पर्वतमात्रमपि द्वे अर्पि कार्ये ।

निर्वरणमनिर्व्यूढे निर्व्यूढे यच्च निर्वरणम् ॥]

पर्वतमात्रमप्यत्यन्तगुरुमपि पुरुषं द्वे कार्ये लघु शीघ्रं लघयतो लघूकुरुतः । अनि-
र्व्यूढे अकृते कार्ये निर्वरण निवेदनम् । अकृतकार्यस्य निवेदनवैयर्थ्यात् । कृते च कार्ये
स्वयमेव प्रसिद्धिरित्यर्थः ॥

द्वारस्थितिकलितशीलखण्डनां कुलजां कुट्टनी विश्वासयितुमाह—

कं तुङ्गथणुक्खित्तेण पुत्ति दारट्टिआ पलोएसि ।

उण्णामिअकलसणिवेसिअग्घकमलेण व मुहेण ॥ ५६ ॥

[कं तुङ्गस्तनोत्क्षिप्तेन पुत्रि द्वारस्थिता प्रलोकयसि ।

उन्नामितकलशनिवेशितार्धकमलेनेव मुखेन ॥]

१. 'सुण्हाइ' इति ग-पाठः. २. 'दरवलिअवङ्गतारअं' इति ग-पाठः. ३. 'उलि-
न्दए' इति ग-पाठः. ४. 'मनागवलिततिर्यक्तारकं' इति ग-पुस्तके, 'दरवलितान्तर्द्वार-
रकं' इति च घ-पुस्तके पाठः. ५. 'गृहस्वामिकेन' इति घ-पाठः. ६. 'अलिन्दके उ-
षितः' इति ग-पुस्तके, 'अलिन्दे वसितः' इति च घ-पुस्तके पाठः. ७. 'लघयन्ति'
इति क-ख-पाठः. ८. 'अपि' इति क-ख-ग-पुस्तकेषु नास्ति. ९. 'यदनिर्वरणम्'
इति घ-पाठः.

दूरादवलोकनार्थं पूर्वकायस्योन्नामितत्वात्तुङ्गस्तनोत्क्षिप्तेन उन्नामितयोः कलशयोर्निवेशितेनार्धकमलेनेव मुखेन हे पुत्रि, द्वारि स्थिता त्वं कं प्रलोकयसि कथय । तमहमचिरादेव साधयामीति भावः ॥

गुप्त्यर्थं निवेशितोऽपि खलः प्रत्युत रहस्यमेव प्रकाशयतीति प्रदर्शयन्नागरिकः सहचरमाह—

वइविवरणिग्गदलो एरण्डो साहइ व्व तरुणाणम् ।

एत्थ घरे हलिकवहू एहहमेत्तत्थणी वसइ ॥ ५७ ॥

[वृतिविवरनिर्गतदल एरण्डः साधयतीव तरुणेभ्यः ।

अत्र गृहे हलिकवधूरेतावन्मात्रस्तनी वसति ॥]

वृतिघनौकरणार्थं तदुपान्ते रोपितत्वाद्बृतिविवरेण निर्गतं दल यस्य सः । साधयति कथयति । एरण्डव्यपदेशेन हलिकवध्वाः स्तनौ वर्णयन्त्या दूत्याः कामुकं प्रतीयमुक्तिरिति कश्चित् ॥

सत्वर तामानयेति भुजंगेनोक्ता कुट्टनी दुहितुर्गजगामित्वगुणेन भुजंगं साभिलाषं कुर्वाणा निन्दाव्याजेन स्तनयोः स्तुतिमाह—

गअकलहकुम्भसंणिहघणपीणणिरन्तरेहिं तुङ्गेहिं ।

उस्ससिउं पि ण तीरइ किं उण गन्तुं हअथणेहिं ॥ ५८ ॥

[गजकलभकुम्भसंनिभघनपीननिरन्तराभ्यां तुङ्गाभ्याम् ।

उच्छ्रसितुमपि न तीरयति किं पुनर्गन्तुं हतस्तनाभ्याम् ॥]

गज इव प्रौढः कलभो गजकलभस्तदीयकुम्भसंनिभौ घनौ निबिडौ पीनौ स्थूलौ अतएव निरन्तरौ यौ तुङ्गौ स्तनौ ताभ्यामित्यर्थः । तीरयति शक्नोति । क्वचिद्गुणोऽपि दोषतां यातीति निदर्शयन्नागरिकोऽभिसारिकायाः सत्वराभिसरगमनविरोधिस्तनभारं प्रत्युद्वेगेनेदमाहेति केचित् ॥

रम्याणां तत्तद्विशेषप्राप्त्या रम्यतातिशयो भवतीति प्रतिपादयन्ती कुट्टनी भुजग नर्तकीं स्वं दुहितरं प्रति साभिलाषं कर्तुमाह—

मासपसूअं छम्मासगब्भिणिं एक्कदिअहजरिअं च ।

रङ्गुत्तिण्णं च पिअं पुत्तअ कामन्तओ होहि ॥ ५९ ॥

१. 'शंसतीव' इति घ-पाठः. २. 'तीर्यते' इति ग-पुस्तके, 'शक्नोति' इति च घ-पुस्तके पाठः.

[मासप्रसूतां षण्मासगर्भिणीमेकदिवसज्वरितां च ।

रङ्गोत्तीर्णां च प्रियां पुत्रक कामयमानो भव ॥]

मासप्रसूतादीनामतिशयितसुरतसुखोत्पादकतायाः कामशास्त्रसिद्धत्वात् । नर्तकीं
स्वदुहितरं प्रति लोभयन्त्याः कुट्टन्या भुजंगं प्रतीयमुक्तिरित्यप्याहुः ॥

कांचिदुत्तुङ्गपीनस्तर्नीं नायिकां कश्चिद्युवा खाभिलाप प्रकाशयन्नाह—

पडिवक्खमण्णुपुञ्जे लावण्णउडे अणङ्गअकुम्भे ।

पुरिससअहिअअधरिए कीस थणन्ती थणे वहसि ॥ ६० ॥

[प्रतिपक्षमन्युपुञ्जौ लावण्यकुटावनङ्गगजकुम्भौ ।

पुरुषशतहृदयधृतौ किमिति स्तनन्ती स्तनौ वहसि ॥]

प्रतिपक्षस्य सपत्नीजनस्य मन्युपुञ्जौ चित्तक्षोभजननात् । लावण्यस्य कुटौ (घटौ)
सौन्दर्यातिशयात् । अनङ्गलक्षणस्य गजस्य कुम्भौ । पुरुषशतेन हृदये मनसि धृताव-
भिलषितौ । एतादृशौ स्तनौ स्तनन्ती कुन्थन्ती किमिति वहसि । अस्मद्विधं जन
कथं न कृतार्थयसीति भावः ॥

विरोधिनोऽपि कदाचिदनुकूला भवन्तीति निदर्शयन्कश्चिदाह—

घरिणिघणत्थणपेह्लणसुहेल्लिपडिअस्स होन्तपहिअस्स ।

अवसउणङ्गारअवारविट्ठिदिअहा सुहावेन्ति ॥ ६१ ॥

[गृहिणीघनस्तनप्रेरणसुखकेलिपतितस्य भविष्यत्पथिकस्य ।

अपशकुनाङ्गारकवारविष्टिदिर्वसाः सुखयन्ति ॥]

कमपि युवानं प्रति दूती कस्याश्चिदनुरागातिशयमाह—

सा तुह कएण बालअ अणिसं घरदारतोरणणिसण्णा ।

ओससई वन्दणमालिअ व्व दिअहं विअ वराई ॥ ६२ ॥

[सा तव कृतेन बालकानिशं गृहद्वारतोरणनिषण्णा ।

अवशुष्यति वन्दनमालिकेव दिवसमेव वराकी ॥]

सहजगुणहीनानामाहार्यगुणाधानं न चिरकालस्थायीति काचिदन्यापदेशेनाह—

हसिअं सहत्थतालं सुक्खवडं उवगएहिं पहिएहिं ।

पत्तअफलाणं सरिसे उड्डीणे सूअविन्दम्मि ॥ ६३ ॥

१. 'उञ्जे' इति ग-पाठः. २. 'उले' इति ग-पाठः. ३. 'गृहिण्या' इति क-ख-ग-
पाठः. ४. विष्टिभेदत्रयार्थः. ५. 'उअगएहिं' इति ग-पाठः. ६. 'पूसवगम्मि' इति ग-
पाठः. 'पूसशब्दः शुके वर्तते' इति कुलबालदेवः.

[हसितं सहस्ततालं शुष्कवटमुपगतैः पथिकैः ।

पत्रफलानां सदृशे उड्डीने शुकवृन्दे ॥]

पत्रफलाढ्योऽयं वृक्ष इति बुद्ध्या विश्रामार्थं शुष्कवटमुपगतैः पथिकैः पत्रफलसदृशे शुकसमूहे उड्डीने सति सहस्ततालं यथा स्यात्तथा हसितमित्यर्थः । संकेतस्थाने जनाव-स्थितिसूचनेनाभिसारिकां निवारयन्त्या दूत्या इयमुक्तिरिति केचित् ॥

पत्या सह कृतकलहायाः सख्या रात्रिवृत्तान्तमनुसंधायागता सखी मातुलान्या पृष्ट्वा तत्सौभाग्यमाह—

अज्ज म्मि हासिआ मामि तेण पाएसु तह पडन्तेण ।

तीए वि जलन्ति दीववत्तिमब्भुण्णअन्तीए ॥ ६४ ॥

[अद्यासि हासिता मातुलानि तेन पादयोस्तथा पतता ।

तयापि ज्वलन्तीं दीपवर्तिर्भभ्युत्तेजयन्त्या ॥]

अन्येऽपि मम सौभाग्य पश्यन्त्विति बुद्ध्या दीपोत्तेजन कुर्वत्याः । दिवा तथा परुषवा-दिनस्तस्य रात्रौ तादृगदैन्यं दृष्ट्वा तस्याश्च योवनाद्यभिमानजं पति प्रत्यनादरं दृष्ट्वा मम हासो जात इत्यर्थः ॥

पूर्वसुभगामनुवर्तमानं पति दृष्ट्वा स्वसौभाग्यमबहुमन्यमानां नवसुभगां सान्त्वयितुं सखी सुजनस्वभावमाह—

अणुवत्तणं कुणन्तो वेसे वि जणे अहिण्णमुहराओ ।

अप्पवसो वि हु सुअणो परव्वसो आहिआईए ॥ ६५ ॥

[अनुवर्तनं कुर्वन्द्वेष्येऽपि जनेऽभिन्नमुखरागः ।

आत्मवशोऽपि खलु सुजनः परवशः कुलीनतायाः ॥]

त्वदेकरतोऽपि कुलीनतया तामनुरुन्धे, न तु ज्ञेहेनेति भावः ॥

मानिन्याः पूर्वसुभगायास्तिरस्कारेणान्यवनितासक्त दुर्विदग्धं शिक्षयन्ती जरद्व-धूराह—

अणुदिअहवड्ढिआअरविण्णाणगुणेहिं जणिअमाहप्पो ।

पुत्तअ अहिआअजणो विरज्जमाणो वि दुल्लक्खो ॥ ६६ ॥

१. 'उपगतेन पथिकेन' इति ग-पाठः. २. 'फलपत्रसदृशे' इति ग-पाठः. ३. 'मामि' इति ग-पुस्तके, 'मातुलि' इति च घ-पुस्तके पाठः. ४. 'अभ्युत्तेजयन्त्या' इति घ-पाठः. ५. 'दिशे' इति ग-पाठः. ६. 'अत्तेवसो वि हि' इति ग-पाठः. ७. 'आ-त्मवशोऽपि हि' ग-पाठः. ८. 'आभिजात्याः' इति ग-पुस्तके, 'आभिजात्यस्य' इति च घ-पुस्तके पाठः.

[अनुदिवसर्वर्धितादरविज्ञानगुणैर्जनितमाहात्म्यः ।
पुत्रकामिजातजनो विरज्यमानोऽपि दुर्लक्ष्यः ॥]

अनुदिवसं वर्धित आदरो यैरेवंभूतैर्विज्ञानप्रमुखैर्गुणैर्जनितं माहात्म्यं महत्त्वं यस्य एता-
दृशः कुलीनजनो विरज्यमानोऽपि दुर्लक्ष्यः । सत्यपि कोपे कुलीनत्वादादरातिशय वि-
दधानामिमां प्रणिपातेन प्रसादयेति भावः ॥

विदग्धं प्रति साभिलाषा कापि स्वभर्तरि वैराग्यं सूचयन्त्याह—

विष्णाणगुणमहग्धे पुरिसे वेसत्तणं पि रमणिज्जम् ।

जणणिन्दिए उण जणे पिअत्तणेणावि लज्जामो ॥ ६७ ॥

[विज्ञानगुणमहार्थे पुरुषे द्वेष्यत्वमपि रमणीयम् ।

जननिन्दिते पुनर्जने प्रियत्वेनापि लज्जामहे ॥]

कोऽपि पीनोत्तुङ्गकुचायां कस्यांचिदनुरक्तोऽचिरेणैव कालेन तस्याः स्तनपतनं दृष्ट्वा
वयस्यमाह—

कहँ णाम तीअ तह सो सहावगुँरुओ वि थणहरो पडिओ ।

अहवा महिलाणँ चिरं को वि ण हिअअम्मि संठाइ ॥ ६८ ॥

[कथं नाम तस्यास्तथा स स्वभावगुरुकोऽपि स्तनभरः पतितः ।

अथवा महिलानां चिर कोऽपि न हृदये संतिष्ठते ॥]

स्त्रीणामस्थिरप्रेमभावप्रकाशन वा ॥

नायकप्रलोभनाय सखी नायिकामुखं वर्णयति—

सुअणु वअणं छिवन्तं सूरं मा साउलीअ वारेहि ।

एअस्स पङ्कअस्स अ जाणउ कअरं सुहप्फंसम् ॥ ६९ ॥

[सुतनु वदनं स्पृशन्तं सूर्यं सा वस्त्राञ्चलेन वारय ।

एतस्य पङ्कजस्य च जानातु कतरत्सुखस्पर्शम् ॥]

साउलीति वस्त्राञ्चलवाचको देशी ॥

१. 'वर्धितादरं' इति ग-पाठः. २. 'लज्जामः' इति ग-पाठः. ३. 'गरुओ' इति ग-
पाठः. ४ 'स्तनभारः' इति ग-पाठः. ५. 'हृदये कः संतिष्ठते' इति ग-पुस्तके, 'हृदये
न संस्थायी' इति च घ-पुस्तके पाठः. ६. 'साकुलीअ' इति ग-पाठः. ७. 'साकुल्या'
इति ग-पुस्तके, 'पल्लवच्छत्रिकया' इति च घ-पुस्तके पाठः. 'साकुलीशब्दो पल्ल-
विकाविषये वर्तते' इति कुलबालदेवः.

सीधुपानेन मत्ताया मानभङ्गमाकलय्य मानिनीमानशमनोपायशिक्षार्थं नागरिकः
स्वहचरमाह—

माणोसहं व पिज्जइ पिआइ माणंसिणीअ दइअस्स ।

करसंपुडवलितुद्धाणणाइ मइराइ गण्डूसो ॥ ७० ॥

[मानौषधमिव पीयते प्रियया मनस्विन्या दयितस्य ।

करसंपुटवलितोर्ध्वाननया मदिराया गण्डूषः ॥]

सुरापूणेन मुखेन मुखे दत्ता सुरा पीता सती मानमपनयतीति भावः ॥

नायकप्रलोभनाय दूती नायिकायाः सौन्दर्यातिशयमाह—

कहँ सा णिँव्वणिज्जइ जीअ जहा लोइअम्मि अङ्गम्मि ।

दिट्ठी दुव्वलगाई व्व पङ्कपडिआ ण उत्तरइ ॥ ७१ ॥

[कथं सा निर्वर्ण्यतां यस्या यथालोकितेऽङ्गे ।

दृष्टिर्दुर्बला गौरिव पङ्कपतिता नोत्तरति ॥]

यत्र पतिता तत्रैवावतिष्ठत इत्यर्थः ॥

कस्यचिदर्थे वदन्तीं दूतीं कापि तस्यास्थिरस्नेहता वर्णयन्त्याह—

कीरन्ती विवअ णासइ उअए रेह व्व खलअणे मेत्ती ।

सा उण सुअणम्मि कआ अणहा पाहाणरेह व्व ॥ ७२ ॥

[क्रियमाणैव नश्यत्युदके रेखेव खलजने मैत्री ।

सा पुनः सुजने कृता अनघा पाषाणरेखेव ॥]

अनघा निरपाया ॥

चिरप्रवासादागम्य पुनरचिराद्दन्तुमिच्छन्तं नायकं कापि सदैन्यमाह—

अव्वो दुक्करआरअ पुणो वि तन्ति करेसि गमणस्स ।

अज्ज वि ण होन्ति सरला वेणीअ तरङ्गिणो चिउरा ॥ ७३ ॥

[अव्वो दुष्करकारक पुनरपि चिन्तां करोषि गमनस्य ।

अद्यापि न भवन्ति सरला वेण्यास्तरङ्गिणश्चिकुराः ॥]

१. 'पिआए' इति ग-पाठः. २. 'उत्ताणणाइ मइराए' इति ग-पाठः. ३. 'मानिनीया' इति ग-पाठः. ४. 'वलनोत्तानया' इति ग-पाठः. ५. 'वदनमदिराया' इति ग-पाठः. ६. 'णिव्वणिज्जिउ' इति ग-पाठः. ७. 'यथावलोकिते' इति ग-पाठः. ८. 'दुर्बलगौरिव' इति ग-पाठः. ९. 'कष्टं दुष्कर-' इति ग-पाठः. 'अव्वो दुःखहर्षयो-
र्च्यते' इति कुलबालदेवः. १०. 'केशाः' इति ग-पाठः.

अव्वो इति साक्षर्यचमत्कारे । दुष्करेति स्त्रीवधपातककारित्वादिति भावः । वेणीबन्धेन तरङ्गिणः कौटिल्यभाजश्चिकुरा अद्यापि सरला न भवन्तीति संबन्धः ॥

अव्युत्पन्नत्वादनुत्सहमानस्य दुर्विदग्धधनिकस्य प्रवृत्तिपाटवार्थं धूर्ता काचित्सद्भाव-
न्नेहप्रशंसामाह—

ण वि तह छेअरआइँ वि हरन्ति पुणरुत्तराअरसिआइँ ।

जह जत्थ व तत्थ व जह व तह व सवभावणेहेरमिआइँ ॥ ७४ ॥

[नैपि तथा छेकरतान्यपि हरन्ति पुनरुत्तरागरेसिकानि ।

यथा यत्र वा तत्र वा यथा वा तथा वा सद्भावस्नेहरमितानि ॥]

छेकानामपूर्वापूर्वरतशिल्पकुशलानां रतान्यपि तथा न हरन्ति । पुनरुक्ते पुनः पुनः
परिशीलिते रागे रञ्जने रतव्यापारे रसिकानि ॥

किमिति कृशासीति प्रियेण पृष्टा पूर्वसुभगा तमाह—

उज्झसि पिआइँ समअं तह वि हुँ रे भणसि कीस किसिअं त्ति ।

उवरिभरेण अ अण्णुअ मुअइँ वइँलो वि अङ्गाइँ ॥ ७५ ॥

[उज्झसे प्रियया समं तथापि खलु रे भणसि किमिति कृंशेति ।

उपरि(भरेण) च हे^{१२} अञ्च मुञ्चति बलीवर्दोऽप्यङ्गानि ॥]

प्रवासादागतेन प्रियेणाद्य कथं त्वरया रमितमिति वदन्तीं सखीं नायिका सानु-
रागमाह—

दिढमूलवन्धगण्ठि व्व मोइँआ कहँ वि तेण मे बाहू ।

अम्हेहिँ वि तस्स उरे खुत्त व्व समुक्खआ थणआ ॥ ७६ ॥

[दिढमूलवन्धग्रन्थी इव मोचितौ कथमपि तेन मे बाहू ।

अस्माभिरपि तस्योरसि निखाताविव समुत्खातौ स्तनौ ॥]

१. 'छेअसुरआइँ' इति ग-पाठः. २. 'णेह' इति ग-पुस्तके नास्ति. ३. 'नैव तथा
छेकसुरतान्यपि' इति ग-पाठः. 'छेकशब्दः खिन्नवचनः' इति कुलबालदेवः. ४. 'र-
सितानि' इति घ-पाठः. ५. 'सद्भावरमितानि' इति ग-पाठः. ६. 'बुज्झसि' इति
ग-पाठः. ७. 'हुँ' इति ग-पुस्तके नास्ति. ८. 'बुध्यसे प्रियायाः समयं' इति ग-पाठः.
९. 'खलु' इति ग-पुस्तके नास्ति. १०. 'कृशतेति' इति घ-पाठः. ११. 'भरेण
च अजअ (१) मुञ्चति वृषभो' इति ग-पाठः. १२. 'हे' इति घ-पुस्तके नास्ति.
१३. 'गूढबद्ध' इति ख-पाठः. १४. 'दृढगूढबद्धग्रन्थी' इति घ-पाठः. १५. 'ग्रन्थि-
मेव' इति ग-पाठः.

अनुरागनिर्भरालिङ्गनवशादन्योन्यलम्बौ मे बाहू तेन कथमपि मोचितौ अस्मि-
रपि स्तनो निखाताविव कथमपि समुत्खातौ ॥

कलहान्तरितामनुनीयागता सखी तत्कान्तमाह—

अणुणअपसाइआए तुङ्ग वराहे चिरं गणन्तीए ।

अपहुत्तोहअहत्थङ्गुरीअ तीए चिरं रुण्णम् ॥ ७७ ॥

[अनुनयप्रसादितया तवापराधांश्चिरं गणयन्त्या ।

अप्रभूतोभयहस्ताङ्गुल्या तैया चिर रुदितम् ॥]

अपराधानां बहुत्वादप्रभूता उभयहस्ताङ्गुल्यो यस्यास्तया । कथंकथमपि मया प्र-
सादिता इतः परं मेवं कार्षीरिति भावः ॥

नर्तनश्रमप्रखिन्नाङ्गया दुहितुः सौन्दर्यातिशयं कामुकचित्तप्रलोभनाय कुट्टनी व-
र्णयति—

सेअच्छलेण पेच्छह तणुए अङ्गम्मि से अमाअन्तम् ।

लावण्णं ओसरइ व्व तिवलिसोवाणवत्तीए ॥ ७८ ॥

[खेदच्छलेन पश्यत तनुकेऽङ्गे तस्या अमात् ।

लावण्यमपसरतीव त्रिवलीसोपानर्पङ्किभिः ॥]

तनुके तस्या अङ्गे संमातुमसमर्थं लावण्यं खेदच्छलेनापसरतीवेति योजना । चौर्य-
रतगोपनार्थं सख्या उक्तिरियमिति केचित् ॥

भुजंगमभिमुखीकर्तुं कुट्टनी कस्याश्चिदलब्धलाभसत्कारतारूपं दोष परिहरन्ती सौ-
न्दर्यातिशयमन्यापदेशेन वर्णयति—

देव्वाअत्तम्मि फले किं कीरइ एत्तिअं पुणो भणिमो ।

कङ्केल्लिपल्लवाणं ण पल्लवा होन्ति सारिच्छा ॥ ७९ ॥

[दैवायत्ते फले किं क्रियतामिर्थत्पुनर्भणामः ।

कङ्केल्लिपल्लवानां न पल्लवा भवन्ति सदृशाः ॥]

कङ्केल्लिरशोकः । अन्ये पल्लवा अशोकपल्लवाना सदृशा न भवन्तीत्यर्थः । देवाधीनौ
लाभसत्कारौ मा भवता नाम । तत्सदृशी सुन्दरी पुनरन्या नास्तीत्याशयः ॥

१. 'रुण्णं वराइए' इति ग-पाठः. २. 'अप्रभवदुभय' इति घ-पाठः. ३. 'रुदितं
वराक्या' इति ग-घ-पाठः. ४. 'प्रेक्षते' इति ग-घ-पाठः. ५. 'अमायमानं' इति
ग-पुस्तके, 'अमायत' इति च-घ-पुस्तके पाठः. ६. 'पङ्क्या' इति ग-घ-पाठः. ७.
'कीरउ एत्तिअ उण भणामो' इति ग-पाठः. ८. 'करोलु' इति ग-पाठः. ९. 'एतावत्'
इति ग-घ-पाठः. १०. 'अशोकपल्लवानां नवपल्लवा' इति. घ-पाठः.

खसौभाग्यख्यापनाय विरहविधुरां कलहान्तरितां रुदतीं कान्तां दर्शयस्तदनुनया-
र्थमागतः कान्तः सहचरमाह—

धुअइ व्व मअकलङ्कं कवोलपडिअस्स माणिणी उअह ।

अणवरअवाहजलभरिअणअणकलसेहिँ चन्द्रस्स ॥ ८० ॥

[धावतीव मृगकलङ्कं कपोलपतितस्य मानिनी पश्यत ।

अनवरतवाष्पजलभृतनयनकलशाभ्यां चन्द्रस्य ॥]

कपोलप्रतिबिम्बितस्य चन्द्रस्य कलङ्क मानिनी धावतीव प्रक्षालयतीवेति योजना ।
एतेन प्रियायाः सौन्दर्यमात्मनः सौभाग्यं च वर्णितम् ॥

बहुपत्नीकस्य भर्तुर्नेयमतीव वल्लभा भविष्यति, अतः पुनरागमिष्यत्येवात्र तत्किमेवं
विक्रवोऽसीति वयस्येनाश्वास्यमानो ज्ञातिगृहात्पतिगृहं प्रस्थिताया जारस्तमन्यापदे-
शेनाह—

गन्धेण अप्पणो मालिआणँ णोमालिआ ण कुँट्टिहइ ।

अण्णो को वि हआसाइ मंसलो परिमलुग्गारो ॥ ८१ ॥

[गन्धेनात्मनो मालिकानां नवमालिका न च्युता भविष्यति ।

अन्यः कोऽपि हँताशाया मांसलः परिमलोद्धारः ॥]

नानापुष्पप्रथितमालिकाना मध्ये नवमालिकाख्यः पुष्पविशेष आत्मनो गन्धेन न
च्युता भविष्यति । यतो हता आशा अन्यासा यया तस्याः । अन्य इतरविलक्षणः
कोऽपि मांसलो बहलः परिमलोद्धारः ॥

नष्टधनं भुजंगमुत्साहयितुं कुट्टनी सत्पुरुषप्रशंसामाह—

फलसंपत्तीअ समोणआँइँ तुङ्गाँइँ फलविपत्तीए ।

हिअआइँ सुँपुरिसाणं महातरूणं व सिहराँइँ ॥ ८२ ॥

[फलसपत्त्या समवनतानि तुङ्गानि फलविपत्त्या ।

हृदयानि सुपुरुषाणां महातरूणामिव शिखराणि ॥]

समवनतानि नम्राणि । तुङ्गानि उन्नतानि ॥

प्रोषितभर्तृकायाः सखी तत्कान्तस्यागमनत्वरार्थं तत्समीपगामिनं पथिकमाह—

आसासेइँ परिअणं परिवत्तन्तीअ पहिअजाआए ।

णित्थाणुवत्तणे वलिअहत्थमुहलो वलअसहो ॥ ८३ ॥

१. 'बुक्किहइ' इति ग-पाठः. २. 'मालतीनां' इति ग-पाठः. ३. 'न न्यूना' इति
घ-पाठः. ४. 'हताशायां' इति ग-पाठः. ५. 'सुउरिसाणं' इति ग-पाठः. ६ 'शि-
खराणीव' इति ग-पाठः.

[आश्वासयति परिजनं परिवर्तमानायाः पथिकजायायाः ।
निःस्थामवर्तने वलितहस्तमुखरो वलयशब्दः ॥]

परिवर्तमानायाः शयने पार्श्वपरिवृत्ति कुर्वत्याः पथिकजायाया निःस्थाम निःसहं यद्व-
र्तेन तेन वलिते हस्ते मुखरोऽनुबद्धज्ञणत्कारो वलयशब्दः परिजनमाश्वासयति जीवय-
तीति । ज्ञापयतीत्यर्थः ॥

क्षीणविभवस्यापि नायकस्य महेच्छतां सूचयन्ती दूती नायिकामनुरञ्जयितुमाह—

तुङ्गो च्चिअ होह मणो मणंसिणो अन्तिमासु वि दसासु ।
अत्थमणम्मि वि रइणो किरणा उद्धं चिअ फुरन्ति ॥ ८४ ॥

[तुङ्गमेव भवति मनो मनस्विनोऽन्तिमासुपि दशासु ।
अस्तमेनेऽपि रवेः किरणा ऊर्ध्वमेव स्फुरन्ति ॥]

एतेन निर्धनोऽप्यसौ वदान्यः न चाधमां कामयत इति सूचितम् ॥

महेच्छनायिकानुरञ्जनार्थं नायकस्य वदान्यतां परोपकारितां च प्रस्तावयितुं दूती
कृपणनिन्दां सत्पुरुषस्य च प्रशंसामाह—

पोट्टं भरन्ति सउणा वि माडआ अप्पणो अणुव्विगा ।
विहल्लुद्धरणसहावा हुवन्ति जइ के वि सप्पुरिसा ॥ ८५ ॥

[उदरं विभ्रति शकुना अपि हेँ मातर आत्मनोऽनुद्विभाः ।
विहल्लोद्धरणस्वभावा भवन्ति यदि केऽपि सत्पुरुषाः ॥]

पक्षिणोऽपि परमांसभक्षणादिना खोदरपूरण कुर्वन्ति । दीनदुःखापहारधुरंधरास्तु
तादृशा विरला इति भावः ॥

कृत्रिमेणापि भावेन भामिन्यः पुरुषाननुरञ्जयन्तीति कयाचिदुक्ता विदग्धवधू-
स्तामाह—

ण विणा सबभावेण ग्घेप्पइ परमत्थजाणुओ लोओ ।
को जुण्णमञ्जरं कञ्जिण्ण वेआरिउं तरइ ॥ ८६ ॥

[न विना सद्भावेन गृह्यते परमार्थज्ञो लोकः ।

को जीर्णमार्जारं कैञ्जिकया प्रतारयितुं शक्नोति ॥]

१. 'निःस्थानोद्वर्तने' इति ग-पुस्तके, 'निःसहवर्तनवलित' इति च घ-पुस्तके पाठः.
२. 'उच्चमेव' इति ग-पाठः. ३. 'विहल्लुद्धरणसमत्था' इति ग-पाठः. ४. 'हे मातः'
इति ग-पाठः. ५. 'विकलोद्धरण' इति ग-पाठः. ६. 'काञ्जिकेन' इति ग-घ-पाठः.

अलंकाराद्यदानादपरितुष्टं नायिकामनुकूलयितुं दूती अकारणज्ञेहव
देशेनाह—

रण्णाड तणं रण्णाड पाणिअं सव्वअं सअंगाहम् ।

तह वि मआणँ मईणँ अ आमरणन्ताइँ पेम्माइँ ॥ ८

[अरण्यात्तृणमरण्यात्पानीयं सर्वतः स्वयंग्राहम् ।

तथापि मृगाणां मृगीणां चा मरणान्तानि प्रेमाणि ॥]

निरुपाधिकं प्रेम श्लाघ्यमिति भावः ॥

संतापातिशयखण्डनाय चन्दनलेपाद्युपचारं कुर्वाणां वारयन्ती विरहिणी क

तावमवणेइ ण तहा चन्दणपङ्को वि कामिमिहुणाणम् ।

जह दूसहे वि गिम्हे अण्णोण्णालिङ्गणसुहेली ॥ ८८ ॥

[तापमपनयति न तथा चन्दनपङ्कोऽपि कामिमिथुनानाम् ।

यथा दुःसहेऽपि ग्रीष्मे अन्योन्यालिङ्गनसुखकेलिः ॥]

यदुपचारेण यस्योपशमनं भवति तत्रान्य उपचारो विफल इति भावः ॥

सपत्न्या दुश्चारिष्यद्वयापनार्थं मुग्धवधूवृत्तविरुद्धां प्रथमरजोयोगसूचनव्युत्प
सूचयन्ती कापि सेष्यमाह—

तुप्पाणणा किणो चिट्ठसि त्ति पडिपुच्छिआएँ वहुआए ।

विउणावेट्ठिअजहणत्थलाइ लज्जोणअं हसिअम् ॥ ८९ ॥

[वृत्तलिप्तानना किमिति तिष्ठसीति परिपृष्टया वध्वा ।

द्विगुणावेष्टितजघनस्थलया लज्जावनतं हसितम् ॥]

जघनस्थलप्रच्छादनैवार्तवमाविष्कुर्वत्या लज्जयावनतं यथा स्यात्तथा हसितं
कुलवधूवृत्तशिक्षार्थं बन्धुवधूः कुलवधूमाह—

हिअअ च्चेअ विलीणो ण साहिओ जाणिऊण घरसारम् ।

बान्धवदुव्वअणं विअ दोहलओ दुग्गअवहूए ॥ ९० ॥

[हृदय एव विलीनो न कैथितो ज्ञात्वा गृहसारम् ।

बान्धवदुर्वचनमिव दोहदो दुर्गतवध्वा ॥]

१. 'स्वयं ग्राह्यम्' इति घ-पाठः. २. 'किणो अच्छिसि त्ति' इति ख-ग
३. 'वृत्' इति ग-पुस्तके नास्ति; 'वृत्तानना' इति घ-पाठः. ४. 'किमित्यसीर्षि'
घ-पाठः. ५. 'साधितो' इति ग-घ-पाठः. ६. 'दुर्विनयमिव' इति ग-पाठः. ७
'इदको' इति घ-पाठः.

कुलस्त्रीचरितविरुद्धं सपत्न्या धार्ष्ण्यं ख्यापयन्ती कापि बन्धुवधूजनमाह—

धावइ विअलिअधम्मिल्लसिचअसंजमणवावडकरग्गा ।

चन्दिलभअविपलाअन्तडिम्भपरिमग्गिणी चरिणी ॥ ९१ ॥

[धावति विगलितधम्मिल्लसिचयसंयमनव्यापृतकराग्रा ।

चैन्दिलभयविपलायमानडिम्भपरिमार्गिणी गृहिणी ॥]

विगलितयोः शिथिलयोर्धम्मिल्लसिचययोः संयमने व्यापृते कराग्रे यस्याः सा । च-
न्दिलो नापितस्तस्य भयेन विपलायमानस्य डिम्भस्य परिमार्गणशीला गृहिणी धा-
वति । 'चन्दिलः पुंसि वास्तूकशाके गर्भे च नापिते' इति मेदिनीकोषः । एवं च च-
न्दिलशब्दो नापितवचनो देशीति कस्यचिदुक्तिः कोषानालोचनमूलत्वादुपेक्ष्या । व्या-
जेन स्तनबाहुतूलादिदर्शयितुं धावतीति योजना वा ॥

भुजंगप्रलोभनार्थं दूती नाथिकाया वयःसंवि सौभाग्यं चाह—

जह जह उव्वहइ वहु णवजोव्वणमणहराई अङ्गाई ।

तह तह से तणुआअइ मज्झो दइओ अ पडिवक्खो ॥ ९२ ॥

[यथा यथोद्धृते वर्धूर्नवयौवनमनोहराप्यङ्गानि ।

तथा तथा तस्यास्तनूयते मध्यो दयितश्च प्रतिपक्षः ॥]

चकारो भिन्नक्रमः प्रतिपक्षश्चेति योज्यः । स्वभावान्मध्यः । अत्यासक्त्या दयितः ।
ईर्ष्यासंतापेन प्रतिपक्षः ॥

वृद्धपतिद्वेषिणीं कुलवधूं शिक्षयन्ती कापि पतिव्रतावृत्तमाह—

जह जह जरापरिणओ होइ पई दुग्गओ विरूओ विं ।

कुलवालिआणं तह तह अहिअअरं वल्लहो होइ ॥ ९३ ॥

[यथा यथा जरापरिणतो भवति पतिर्दुर्गतो विरूपोऽपि ।

कुलपालिकानां तथा तथाधिकतरं वल्लभो भवति ॥]

कमपि युवानं प्रति सामिलाषा कामिनी समानवयःशीला मातुलानीमाह—

एसो मामि जुवाणो वारंवारेण जं अडअणाओ ।

गिम्हे गामेक्खवडोअअं व किच्छेण पावन्ति ॥ ९४ ॥

१. 'मग्गोसिणी' इति ग-पाठः. २. 'विगलितकेशवस्त्र' इति ग-पाठः. ३. 'नापि-
तभयपलायमान' इति ग-पुस्तके, 'नापितभयविफलायमान' इति घ-पुस्तके पाठः.
४. 'बालकमार्गेषिणी' इति ग-पाठः. ५. 'उद्धृति' इति ग-घ-पाठः. ६. 'परिहीयते'
इति ग-पुस्तके, 'तनुकायते' इति च घ-पुस्तके पाठः. ७. 'अ' इति ग-पाठः.

[एष मातुलानि युवा वारंवारेण यमसत्यः ।

ग्रीष्मे ग्रामैकवटोदकमिव कृच्छ्रेण प्राप्नुवन्ति ॥]

अडअणाओ असत्यः । वारंवारेण वारक्रमेण । पर्यायेणेति यावत् । यं युवानमसत्यः
कृच्छ्रेण प्राप्नुवन्ति स मयानायासेन प्राप्यत इति स्वसौभाग्यप्रकटनम् ॥

परवनितासुरतलम्पटस्य निजनायकस्य संकेतस्थानभङ्गेन परितुष्टा कापि पतिव्रता
पितृष्वसारमाह—

गामवडस्स पिउच्छा आवण्डुमुहीणं पण्डुरच्छाअम् ।

हिअएण समं असईअं पडइ वाआहअं पत्तम् ॥ ९५ ॥

[ग्रामवटस्य पितृष्वस आपाण्डुमुखीनां पाण्डुरच्छायम् ।

हृदयेन सममसतीनां पतति वाताहतं पत्रम् ॥]

ग्रामवटस्य पत्रमसतीनां हृदयेन समं पततीति संबन्धः ॥

इज्जितज्ञतामात्मनः ख्यापयन्नागरिकः सहचरमाह—

पेच्छइ अलद्धलक्खं दीहं णीससइ सुण्णअं हसइ ।

जह जम्पइ अफुडत्थं तह से हिअअट्ठिअं किं पि ॥ ९६ ॥

[पश्यत्यलब्धलक्ष्यं दीर्घं निःश्वसिति शून्यं हसति ।

यथा जल्पत्यस्फुटार्थं तथा तस्या हृदयस्थितं किमपि ॥]

नागरिकः सहचरशिक्षार्थमसतीनां प्रत्युत्पन्नमतित्वमाह—

गहवइ गओम्ह सरणं रक्खसु एअं त्ति अडअणा भणिरी ।

सहसागअस्स तुरिअं पइणो त्विअ जारमप्पेइ ॥ ९७ ॥

[गृहपते गतोऽस्माकं शरणं रक्षैनमित्यसती भणित्वा ।

सहसागतस्य त्वरितं पत्युरेव जारमर्पयति ॥]

निह्यमानोऽपि भावः स्वभावादेवाविर्भवतीति प्रतिपादयन्ती कापि सखी शिक्ष-
यितुमाह—

हिअअट्ठिअस्स दिज्जउ तनुआअन्ति ण पेच्छह पिउच्छा ।

हिअअट्ठिओम्ह कंतो भणिउं मोहं गआ कुंमरी ॥ ९८ ॥

१. 'भगिनि' इति ग-पुस्तके, 'मातुलि' इति च ग-पुस्तके पाठः. २. 'यं च लल-
नाः' इति ग-पाठः. ३. 'प्रेक्षते' इति ग-घ-पाठः. ४. 'शून्यक' इति घ-पाठः.
५. 'अस्या' इति ग-पाठः. ६. 'अणिउणा भणिउम्' इति ग-पाठः. ७. 'गृहपतिर्' इति
ग-पाठः. ८. 'रक्षस्वैनमित्यतिनिपुणं भणित्वा' इति ग-पाठः. ९. 'भगनशीला' इति
घ-पाठः. १०. 'विउच्छा' इति ग-पाठः. ११. 'कुअरी' इति ग-पाठः.

[हृदयेप्सितस्य दीयतां तेनूभवन्तीं न पश्यथ पितृष्वसः ।

हृदयेप्सितोऽस्माकं कुतो भणित्वा मोहं गता कुमारी ॥]

अयमर्थः—कौमारदशायामेव कस्मिन्नपि पुरुषे कस्याश्चिदनुरागं दृष्ट्वा कयापि विदग्धया पितृष्वसारं प्रत्युक्तम्—इयं हृदयेप्सिताय कस्मैचिद्दीयतामिति । ततः स्वाशयनिह्वयार्थं तथास्माकं कुमारीणां हृदयेप्सितः कुत इत्युक्त्वा प्रियस्मरणावेगान्मोहः प्राप्त इति ॥

भुजंगप्रलोभनाय दूती नायिकायाः सुरतावसानोपचारचातुर्यमाह—

खिण्णस्स उरे पैइणो ठवेइ गिम्हावरण्हरमिअस्स ।

ओलं गलन्तकुसुमं ण्हाणसुअन्धं चिउरभारम् ॥ ९९ ॥

[खिन्नस्योरसि पत्युः स्थापयति ग्रीष्मापराह्वरमितस्य ।

आर्द्रं गलत्कुसुमं स्नानसुगन्धं चिकुरभारम् ॥]

ज्योत्स्नाया केलिरसिको युवा कान्तायाः कपोलकान्तिं वर्णयति—

अहं सरसदन्तमण्डलकवोलपडिमागओ मँअच्छीए ।

अन्तो सिन्दूरिसज्जवत्तकरणिं वहइ चन्दो ॥ १०० ॥

[असौ सरसदन्तमण्डलकपोलप्रतिमागतो मृगाक्ष्याः ।

अन्तः सिन्दूरितशङ्खपात्रसादृश्यं वदति चन्द्रः ॥]

सरसदन्तमण्डलं मण्डलाकारं दन्तक्षतं ययोः कपोलयोः । प्रतिमागतः संक्रान्तप्रति-
बिम्बश्चन्द्रः अन्तर्मध्ये सिन्दूरित संजातसिन्दूरं यच्छङ्खपात्रं तत्सादृश्यं वहतीत्यर्थः ।
दन्तक्षतस्यारक्तत्वासिन्दूरसाम्यम् । कपोलयोश्च स्वच्छत्वाच्छङ्खपात्रसादृश्यं बोध्यम् ॥

रसिअजणहिअअइए कइवच्छलपमुहसुकइणिम्मअए ।

सत्तसअम्मि समत्तं तीअं गाहासअं एअम् ॥

[रसिकजनहृदयदयिते कविवत्सलप्रमुखसुकविनिर्मिते ।

सप्तशतके समाप्तं तृतीयं गाथाशतकमेतत् ॥]

१. 'हृदयस्थितस्य' इति घ-पाठः. २. 'दुर्बलायमानां' इति ग-पुस्तके, 'तनुकाय-
माना' इति च घ-पुस्तके पाठः. ३. 'हृदयस्थितो' इति घ-पाठः; 'हृदयेप्सितमस्माकं
कृत इति भणितु मोहमुपागता' इति ग-पाठः. ४. 'वइणो' इति ग-पाठः. ५. 'सुगन्धि'
इति घ-पाठः. ६. 'मिअच्छीआ' इति ग-पाठः. ७. 'पात्रकरणिं' इति ग-पुस्तके,
'पात्रसमता' इति च घ-पुस्तके पाठः.

चतुर्थं शतकम् ।

अविदग्धे भर्तरी यथा तथा जारनिह्वं कुलटाः कुर्वन्तीति सहचरशिक्षार्थं नाग-
रिक आह—

अह अन्ह आअदो अज्ज कुलहराओ त्ति छेञ्छई जारम् ।

सहसागअस्स तुरिअं पइणो कण्ठं मिलावेइ ॥ १ ॥

[असावस्माकमागतोऽद्य कुलगृहादित्यसती जारम् ।

सहसागतस्य त्वरितं पत्युः कण्ठे लगयति ॥]

छेञ्छईत्यसतीवाचको देशीशब्दः ॥

अविषयेऽपि पत्युरनुनयादरेण सखी नायिकायाः सौभाग्यं ख्यापयितुमाह—

पुंसिआ अण्णाहरणेन्द्रणीलकिरणाहआ ससिमऊहा ।

माणिणिवअणम्मि सकज्जलंसुसङ्काइ दइएण ॥ २ ॥

[प्रोच्छिताः कर्णाभरणेन्द्रनीलकिरणाहताः शशिमयूखाः ।

मानिनीवदने सकज्जलाश्रुशङ्कया दयितेन ॥]

नायकप्रलोभनाय दूती कस्याश्चित्सौन्दर्यातिशय वर्णयति—

एइहमेत्तम्मि जए सुन्दरमहिलासहस्सभरिए वि ।

अणुहरइ णवर तिसंसा वामद्धं दाहिणद्धस्स ॥ ३ ॥

[एतावन्मात्रे जगति सुन्दरमहिलासहस्रभृतेऽपि ।

अनुहरति केवलं तस्या वामार्धं दक्षिणार्धस्य ॥]

कृतापराधेऽपि प्रिये किं मानविमुखी त्वमसीति सख्योक्ता काप्यात्मनोऽनुरागं स्थि-
रस्नेहतां च सूचयन्ती तामाह—

जह जह वाएइ पिओ तह तह णच्चामि चञ्चले पेम्मे ।

वल्ली वलेइ अङ्गं सहावर्थंद्धे वि रुक्खम्मि ॥ ४ ॥

[यथा यथा वादयति प्रियस्तथा तथा नृत्यामि चञ्चले प्रेम्णि ।

वल्ली वलयत्यङ्गं स्वभावस्तब्धेऽपि वृक्षे ॥]

यद्वा निराश्रयतया स्थातुमशक्ता लता यथा स्तब्धं वृक्षमाश्रित्य तिष्ठति तथाहमपि

१. 'आअओ' इति क-ख पाठः. २. 'छेञ्छई' इति क-पाठः. ३. 'मिलाएइ' इति ग-पाठः. ४. 'अयमस्माक' इति ग-पाठः. ५. 'लागयति' इति क-घ-पाठः. ६. 'पुच्छिअ' इति ग-पाठः. ७. 'तिण्णा' इति ग-पाठः. ८. 'खीसेहस' इति ग-पाठः. ९. 'ट्टिए' इति क-पुस्तके, 'उट्टे' इति च ग-पुस्तके पाठः.

नटप्रायमधममननुरक्तमप्याश्रित्य तिष्ठामि यावदुत्तमं कमप्यासादयामीति दूर्ती प्रति कु-
लटायाः कस्याश्चिदियमुक्तिः ॥

महता प्रयत्नेन लब्धस्य नायकस्यानभिज्ञतां प्रकटयन्ती कापि सर्खी सनिर्वेदमाह-

दुक्खेहिँ लम्भइ पिओ लद्धो दुक्खेहिँ होइ साहीणो ।

लद्धो वि अलद्धो विअ जइ जह हिअअं तह ण होइ ॥ ५ ॥

[दुःखैर्लभ्यते प्रियो लब्धो दुःखैर्भवति स्वाधीनः ।

लब्धोऽप्यलब्ध एव यदि यथा हृदयं तथा न भवति ॥]

कलहान्तरिता जातानुतापा प्रियसखीमाह—

अव्वो अणुणअसुहकङ्खिरीअ अकअं कअं कुणन्तीए ।

सरलसहावो वि पिओ अविणअमगं बलणीओ ॥ ६ ॥

[कैष्टमनुनयसुखकौङ्खणशीलयाकृतं कृतं कुर्वत्या ।

सरलस्वभावोऽपि प्रियोऽविनयमार्गं बलानीतः ॥]

कष्टमित्यर्थे अव्वो इति देशी । करोतिरत्रोच्चारणे । अकृतमप्यपराधं कृतमिति स-
मुच्चारयन्त्येत्यर्थः । मयेति शेषः ॥

प्रोषितपतिकाया विरहात्ति मुग्धतां च सूचयन्ती दूती नायकसमीपगामिन
पान्थमाह—

हत्थेसु अ पाएसु अ अङ्गुलिगणणाइ अइगआ दिअहा ।

एण्ह उण केण गणिज्जउ त्ति भँणिऊ रुअइ मुद्धा ॥ ७ ॥

[हस्तयोश्च पादयोश्चाङ्गुलिगणनयातिगता दिवसाः ।

इदानीं पुनः केन गण्यतामिति भणित्वा रोदिति मुग्धा ॥]

प्रवासोद्यतस्य नायकस्य गमनाक्षेपाय काप्यपशकुनगर्भं वसन्तं वर्णयति—

कीरमुहसँच्छहेहिँ रेहइ वसुहा पलासकुसुमेहिँ ।

बुद्धस्स चलणवन्दणपडिएहिँ वँ भिक्खुसंघेहिँ ॥ ८ ॥

[कीरमुखसँदृक्षौ राजते वसुधा पलाशकुसुमैः ।

बुद्धस्य चरणवन्दनपतितैरिव भिक्षुसंघैः ॥]

अत्र बुद्धस्येत्याद्युत्तरार्धमपशकुनसूचनार्थमेवोपात्तम् ॥

१. 'अव्वो' इति ग-पुस्तके, 'अहो' इति च घ-पुस्तके पाठः. २. 'काङ्खिण्या' इति ग-पाठः. ३. 'गणणाहि' इति क-पाठः. ४. 'भणेउ' इति ख-पाठः. ५. 'सच्छ-
एहिँ' इति क-पाठः. ६. 'व्व' इति क-पाठः. ७. 'सदृशैः' इति ग-घ-पाठः. ८. 'सं-
घातैः' इति घ-पाठः.

अनुनय ग्राहयितु सखी मानवतीमाह—

जं जं पिहुलं अङ्गं तं तं जाअं किसोअरि किसं ते ।

जं जं तणुअं तं तं पि णिट्ठिअं किं त्थ माणेण ॥ ९ ॥

[यद्यत्पृथुलमङ्गं तत्तज्जातं कृशोदरि कृशं ते ।

यद्यत्तनुकं तत्तदपि निष्ठितं किमत्र मानेन ॥]

निष्ठितं निष्ठां प्रकर्षं गतम् । अतिदुर्बलं जातमित्यर्थः ॥

निजभर्तुरेव न सा वल्लभा तत्कथं तस्या गुणानस्तौषीरित्यभियोज्येनोक्ता दूती
तमाह—

ण गुणेण हीरइ जणो हीरइ जो जेण भाविओ तेण ।

मोत्तूण पुलिन्दा मोत्तिआइँ गुञ्जाओँ गेहन्ति ॥ १० ॥

[न गुणेन हियते जनो हियते यो येन भावितस्तेन ।

मुक्त्वा पुलिन्दा मौक्तिकानि गुञ्जा गृह्णन्ति ॥]

हियते वशीक्रियते ॥

गमनाय पृष्टा किमिति किमप्युत्तरं न ददासीति प्रियेणोक्ताया वध्वाः संबन्धिनी
वृद्धा काचिदाह—

लङ्कालआणँ पुत्तअ वसन्तमासेकलद्धप्रसराणम् ।

आपीअलोहिआणं वीहेइ जणो पलासाणम् ॥ ११ ॥

[लङ्कालयानां पुत्रक वसन्तमासैकलब्धप्रसराणाम् ।

आपीतलोहितानां विभेति जनः पलाशानाम् ॥]

पलाशानामिति शेषविवक्षया पञ्चम्यर्थे षष्ठी । पलाशेभ्यः किञ्चुकपुष्पेभ्यो वधूजनो
विभेतीत्यर्थः । अथ च पलं मांसमदन्ति भक्षयन्तीति पलाशा रक्षसाः । तेभ्यो जनो
विभेतीति श्लेषः । पुष्पपक्षे लङ्का शाखा । पक्षे राक्षसनगरी । 'लङ्का रक्षःपुरीशाखा-
शाकिनीकुलटासु च' इति मेदिनीकोषः । तथा (राक्षसपक्षे छाया) वसान्त्रमांसैकलब्ध-
प्रसराणाम् । पुष्पपक्षे आ ईषत्पीतवर्णानि च तानि लोहितानि च । पक्षे आ स-
मन्तात्पीतं लोहितं रुधिरं यैस्तेषाम् । वसन्तसूचकपलाशकुसुमभीता तव गमनं नाङ्गी-
करोतीति भावः ॥

१. 'गुणेहिं' इति ग-पाठः. २. 'गुञ्जाउ' इति क-ख-पाठः. ३. 'गुणैः' इति
ग-पाठः. ४. 'आवीअ' इति ख-पाठः. ५. 'विहेइ' इति ग-पाठः.

सखी सख्याः कान्तं प्रत्यनुरागातिशयमाह—

घेचूण चुण्णमुष्टिं हरिसूससिआए वेपमाणाए ।

भिसणेमिति पिअअमं हत्थे गन्धोदअं जाअम् ॥ १२ ॥

[गृहीत्वा चूर्णमुष्टिं हर्षोत्सुकिताया वेपमानायाः ।

अवकिरामीति प्रियतमं हस्ते गन्धोदकं जातम् ॥]

प्रियतम विच्छुरामीति चूर्णमुष्टिं गृहीत्वा हर्षोत्सुकिताया वेपमानाया हस्ते गन्धो-
दकं जातमित्यन्वयः । कान्तदर्शनजनितसात्त्विकभावात्मकस्वेदान्चूर्णमुष्टिरेव गन्धोदकं
जातमित्यर्थः । चूर्णमुष्टिः कर्पूरादिभृद्रन्वद्रव्यधूलिः । भिसणेमि इति विच्छुरणे देशी ॥

सपत्न्या देवराभिसार सूचयन्ती सपत्नी तामाह—

पुट्टिं पुससु किसोअरि पँडोहरङ्कोल्लपत्तचित्तलिअम् ।

छेआहिँ दिअरजाँआहिँ उज्जुए मा कलिज्जिहिंसि ॥ १३ ॥

[पृष्ठं प्रोञ्छ कृशोदरि पश्चाद्गृहाङ्कोटपत्रचित्रितम् ।

विदग्धाभिर्देवरजाँयाभि ऋजुके मा कलिष्यसे ॥]

ऋजुके अभिसरणं च्छादनानभिज्ञे । पश्चाद्गृहे विद्यमानो योऽङ्कोटवृक्षस्तस्य पत्रैश्चि-
त्रित पृष्ठं प्रोञ्छ । पडोहरशब्दः पश्चाद्गृहवचनो देशी ॥

कृतापराधे प्रिये मानं कारयन्तीं सखीं काप्यात्मनोऽनुरागातिशयेन मानाक्षमता-
माह—

अँच्छीइँ ता थइस्सं दोहिँ वि हत्थेहिँ वि तस्सिं दिट्ठे ।

अङ्गं कँलम्बकुसुमं व पुलइअं कँणु ढक्किस्सम् ॥ १४ ॥

[अक्षिणी तावत्स्थैर्गयिष्यामि द्वाभ्यामपि हस्ताभ्यां तस्मिन्दृष्टे ।

अङ्गं कदम्बकुसुममिव पुलकितं कथं नु च्छेदयिष्यामि ॥]

१. 'भिसणेमि' इति ख-पुस्तके, 'भसलेमि' इति च क-पुस्तके पाठः. २. 'वर्ण-
मुष्टिं' इति घ-पाठः. ३. 'हर्षोच्छ्वसिताया' इति ग-घ-पाठः. ४. 'भरिष्यामि प्रियतम-
मिति हस्ते' इति ग-पुस्तके, 'विजहामीति प्रियतमहस्ते' इति च घ-पुस्तके पाठः.
५. 'पुलोहर' इति ग-पाठः. ६. 'छेआइ' इति क-पाठः. ७. 'जाआइ' इति क-
पाठः. ८. 'प्रोञ्छय' इति ग-पाठः. ९. 'छेकाभिः' इति ग-घ-पाठः. १०. 'भार्या-
भिः' इति घ-पाठः. ११. 'क्लिश्यसे' इति ग-पाठः. १२. 'अच्छीइँ' इति ख-ग-पाठः.
१३. 'कदम्ब' इति ग-पाठः. १४. 'स्थगिष्ये' इति ग-पाठः. १५. 'सादयिष्ये' इति
ग-पाठः.

नायकसमीपगक्रामुकपथिकमुखेन सखीजनो नायिकाया अवस्थां गृहस्य विशीर्णतां च संदिशन्नाह—

झञ्झावाउत्तणिए घरम्मि रोरुण णीसहणिसण्णम् ।

दावेइ व गअवइअं विज्जुज्जोओ जलहराणम् ॥ १५ ॥

[झञ्झावातोत्तृणिते गृहे रुदित्वा निःसहनिषण्णाम् ।

दर्शयतीवै गतपतिकां विद्युद्दयोतो जलधराणाम् ॥]

झञ्झावातो वर्षानिलः । तेनोत्तृणिते तृणशून्यीकृते गृहे निःसहं यथा स्यात्तथा निषण्णां प्रोषितपतिका विद्युद्दयोतो जलधरेभ्यो दर्शयति । भवदुदयादियमेतामवस्था प्राप्ता, तदस्याः पत्युरुत्कण्ठा कुरुत येनासौ झटित्यायास्यतीत्याशयेनेति भावः ॥

ग्राम्यस्त्रीसंभोगे मन्दादरं नायकं प्रवर्तयितुं दूती अन्यापदेशेनाह—

भुञ्जसु जं साहीणं कुत्तो लोणं कुगामरिद्धम्मि ।

सुहअ सलोणेण वि किं तेण सिणोहो जहिं णत्थि ॥ १६ ॥

[मुङ्क्ष्व यत्स्वाधीनं कुतो लवणं कुग्रामरिद्धे ।

सुमग सलवणेनापि किं तेन स्नेहो यत्र नास्ति ॥]

लवणं सामुद्रिकम् । पक्षे लावण्यम् । स्नेहो घृतादिः । पक्षे प्रेम । यद्यपि कुग्राम-बासित्वादियं कुवेषा तथापि त्वयि प्रेमातिशययुक्तेति भावः ॥

विरसमप्यनुरागवशात्सुरसं भवतीति कापि सखीमाह—

सुहपुँच्छिआइ हलिओ सुहपङ्कअसुरहिपवणणिव्वविअम् ।

तह पिअइ पँअइकड्डुअं पि ओसहं जह ण णिट्टाइ ॥ १७ ॥

[सुखपृच्छिकाया लिको मुखपङ्कजसुरभिपवननिर्वापितम् ।

तथा पिबति प्रकृतिकटुकमप्यौषधं यथा न तिष्ठति ॥]

अयमर्थः—ज्वरितस्य नायकस्य सुखप्रश्नार्थमागतया नायिकया उष्णं काथौषधं फू-त्कारेण शीतल कृतम् । ततस्तेन तिक्तमपि तन्निःशेषं पीतमिति ॥

सा तत्र न गता, अहं तु निकुञ्जे चिरं स्थित्वा समागत इति वदन्तं जारं दूती नायिकायास्तत्र गमन प्रतिपादयन्त्याह—

अह सा तहिं तहिं व्विअ वाणीरवणम्मि चुक्कसंकेआ ।

तुह दंसणं विमग्गइ पब्भट्टणिहाणठाणं व ॥ १८ ॥

१. 'दावेइ पउत्थइअ' इति क-पुस्तके, 'दावेइअ' इति च ख-पुस्तके पाठः. २. 'इव' इति क-ख-घ-पुस्तकेषु नास्ति. ३. 'विद्युद्दयोतो' इति घ-पाठः. ४. 'उ-च्छिआइ' इति ग पाठः. ५. 'पकिदिकड्डुअम्मि' इति ग-पाठः. ६. 'सुखपृच्छिकाया हलिको' इति घ-पाठः. ७. 'निर्वाति' इति ग-घ-पाठः.

[अथ सा तत्र तत्रैव वानीरवने विस्मृतसंकेता ।

तव दर्शनं विमार्गति प्रभ्रष्टनिधानस्थानमिव ॥]

अथ त्वद्गमनानन्तरं विस्मृतं संकेतस्थानं यथा सा एतादृशी सा यत्र त्व गतस्तत्रैव वानीरवने त्वामन्वेषयतीति भावः ॥

कृतापराधं नायकसहचरं भयान्नायकोपसर्पणविमुखमभिमुखयितुं काचिदाह—

दृढरोसकलुसिअस्स वि सुअणस्स मुहाहिँ विप्पिअं कन्तो ।

राहुमुहम्मि वि ससिणो किरणा अमअं विअ मुअन्ति ॥ १९ ॥

[दृढरोषकलुषितस्यापि सुजनस्य सुखार्द्धप्रियं कुतः ।

राहुमुखेऽपि शशिनः किरणा अमृतमेव मुञ्चन्ति ॥]

क्वापि जाराभिमत्संपादनासमर्थो तत्कृतोपहारं परिहरन्ती कोऽत्र दोष इति वदन्तीं दूतीमाह—

अवमाणिओ वि ण तहा दुम्मिज्जइ सज्जणो विहवहीणो ।

पँडिकाउं असमत्थो माणिज्जन्तो जह परेण ॥ २० ॥

[अवमानितोऽपि न तथा दूयते सज्जनो विभवहीनः ।

प्रतिकर्तुमसमर्थो मान्यमानो यथा परेण ॥]

प्रतिकर्तुं प्रत्युपकर्तुम् । मान्यमानो दानादिना सत्क्रियमाणः ॥

विश्वासकथनाय प्रोत्साहयन्ती दूती नायिकामन्यापदेशेनाह—

कलहन्तरे वि अविणिग्गआइँ हिअअम्मि जरमुवगआइँ ।

सुअणकआइँ रहस्साइँ डहइ आउक्खए अग्गी ॥ २१ ॥

[कलहान्तरेऽप्यविनिर्गतानि हृदये जरासुपगतानि ।

सुजनश्रुतानि रहस्यानि दहत्यायुःक्षयेऽग्निः ॥]

कलहान्तरेऽपि कलहमध्येऽप्यविनिर्गतान्यप्रकटानि । हृदयान्तरे हृदयमध्ये जरासुपगतानि बहुकालं स्थितानि । आयुःक्षये सत्यग्निर्दहति । न पुनरन्यस्मिन्संक्रामन्तीति भावः ॥

१. 'तस्मिन् तस्मिन्नेव' इति ग पाठः. २. 'भ्रष्टसंकेता' इति ग-पुस्तके 'मुक्त-संकेता' इति च घ-पुस्तके पाठः. ३. 'मार्गयति' इति ग-पाठः. ४. 'विप्रियं' इति ग-घ-पाठः. ५. 'पँडिआउ' इति ग-पाठः. ६. 'दुर्मनायते' इति ग-पाठः. ७. 'सं-मानितो' इति ग-पुस्तके, 'मान्यमानो' इति च घ-पुस्तके पाठः. ८. 'कृतानि' इति ग-घ-पाठः.

दृती प्रोपितमर्तृकाष्टहाङ्गणस्य माधवीलताकुञ्जगहनत्वेन दिवैवाभिसरणयोग्यताम्,
नर्तयकानाश्च वनन्तकालप्राप्तयोत्कण्ठातिशयेन सुसाध्यता प्रतिपादयन्ती नायकमाह—

शुश्रूवाओ अङ्गणमाहवीणं दारगगलाउ जाआउ ।

आमासो पन्थप्पलोअणे वि पिट्टो गैअवईणम् ॥ २२ ॥

[स्तवका अङ्गणमाधवीनां द्वारार्गला जाताः ।

आश्वासः पन्थप्रलोकनेऽपि नैष्टो गतपतिकानाम् ॥]

शुश्रूवाति स्तवके देशी । यद्वा पन्थपलोअणे वर्त्मप्रलोकने । अर्थात्पत्युः । एतेन वस-
न्तोऽपि संवृत्तो वर्त्मावलोकनविनोदोऽपि नष्ट इति नायिकाया उत्कण्ठातिशयो ध्व-
नितः ॥

मन्त्री मन्त्र्याः कान्तं प्रत्यनुरागातिशयं नयनप्रशंसां चाह—

पिअदंसणसुहरसमउलिआइँ जइ से ण होन्ति णअणाइँ ।

ता केण कण्णरँइअं लक्खिज्जइ कुँवलअं तिस्सा ॥ २३ ॥

[प्रियदर्शनसुखरसमुकुलिते यदि तस्या न भवतो नयने ।

तदा केन कर्णरचितं लक्ष्यते कुवलयं तस्याः ॥]

आद्यस्य नयनपदेन द्वितीयस्य च कुवलयपदेनान्वयात्तस्या इति पदद्वयस्य न वैय-
र्थ्यमिति ध्येयम् ॥

अभ्युदयहेतुरपि कार्यवशादुद्वेगं जनयतीति प्रतिपादयन्नागरिकः सहचरमाह—

चिक्खिल्लखुत्तहलमुहकड्डुणसिठिले पँइम्मि पासुत्ते ।

अप्पत्तमोहणसुहा धणसमअं पामरी सवइ ॥ २४ ॥

[कर्ममग्नहलमुखकर्षणशिथिले पत्यौ प्रसुप्ते ।

अप्राप्तमोहनसुखा घनसमयं पामरी शपति ॥]

चिक्खिल्लः कर्मस्तत्र खुत्तं मग्नं यद्वलमुख तस्य कर्षणेन शिथिले श्रान्ते पत्यौ
श्रमवशान्मुप्ते सति अप्राप्त मोहनसुखं सुरतसुखं यथा सा पामरी घनसमय शपति । नि-
न्दतीत्यर्थः । यद्वा विद्यमानेऽपि पत्यौ हलिकवध्वाः सुलभत्वं प्रतिपादयन्त्या दूत्या जारं
प्रतीयमुक्तिः ॥

१. 'पन्थहिअपलोअणे' इति क-पाठः. २. 'गअपइआण' इति क-पुस्तके, 'गअव-
ईए इति' च ग-पुस्तके पाठः. ३. 'विगतो' इति घ-पाठः. ४. 'लग्ग' इति क-पाठः.
५. 'कुअलअ' इति क-पाठः. ६. 'तत्केन' इति घ-पाठः. ७. 'पिअम्मि' इति ग-
पाठः. ८. 'कर्ममाक्षिप्त' इति ग-पाठः. ९. 'प्रिये' इति ग-पाठः.

गमनोद्यतस्य भर्तुर्गमनाक्षेपाय विरहदुःसहत्वं प्रकाशयन्ती कापि स्मरश्चरनमस्कार-
च्छलेनाह—

दुम्भेन्ति देन्ति सोक्खं कुणन्ति अणुराअं रमावेन्ति ।

अरइरइबन्धवाणं णमो णमो मअणबाणाणम् ॥ २५ ॥

[दुम्भन्ति ददति सौख्यं कुर्वन्त्यनुरागं रमयन्ति ।

अरतिरतिबान्धवेभ्यो नमो नमो मदनबाणेभ्यः ॥]

विरहे दुःखदातृत्वात्संगमे च सुखदातृत्वादरतिरतिबान्धवत्वम् ॥

कापि कामबाणव्यापारवैचित्र्यवर्णनेन कमपि युवानं प्रत्यात्मनो मन्मथव्यथामाह—

कुसुममआ वि अइखरा अलद्धफंसा वि दूसहपआवा ।

भिन्दन्ता वि रइअरा कामस्स सरा बहुविअप्पा ॥ २६ ॥

[कुसुममया अप्यतिखरा अलब्धस्पर्शा अपि दुःसहप्रतापाः ।

भिन्दन्तोऽपि रतिकराः कामस्य शरा बहुविकल्पाः ॥]

बहुप्रकारा इत्यर्थः ॥

उत्कण्ठाविनोदनार्थं प्रोषितभर्तृका प्रियगुणानाह—

ईसं जणेन्ति दावेन्ति मम्महं विप्पिअं सहावेन्ति ।

विरहेण देन्ति मरिउं अहो गुणा तस्स बहुमग्गा ॥ २७ ॥

[ईर्ष्यां जनयन्ति दीर्पर्यन्ति मन्मथं विप्रियं सीहयन्ति ।

विरहे न ददाति मर्तुमहो गुणास्तस्य बहुमार्गाः ॥]

ईर्ष्यां जनयन्तीत्यनेनान्यवनिताभिः काम्यमानत्वात्सौन्दर्यातिशयः । दीपयन्ति मन्म-
थमिति सुरतकलाकौशलम् । विप्रियं साहयन्तीत्यनुनयचाटुचातुर्यम् । विरहे न ददति
मर्तुमित्यनेन पुनः समागमाशानिबन्धः प्रेमसद्भावश्च व्यज्यते । तस्य प्रियस्य गुणा ब-
हुमार्गा बहुप्रकाराः । 'तस्य कामशरस्य गुणा इत्यर्थः' इति कश्चित् ॥

त्वय्यनुरक्ता सा वायनकदानव्याजेन गृहं गृहं भ्रमद्गती तवापि गृहं गता । तत्रापि
त्वं तथा न दृष्ट इति दूती सोपालम्भं कमप्याह—

णीआइँ अज्ज णिक्खि व पिणद्धणवरङ्कुअँइ वराईए ।

घरपरिवाडीअ पहेणआइँ तुह् दंसणासाए ॥ २८ ॥

१. 'दुर्मनायन्ते' इति ग पुस्तके, 'दूनयन्ति' इति च घ-पुस्तके पाठः. २. 'कारयन्ति'
इति ग-पाठः. ३. 'अनुरागक' इति घ-पाठः. ४. 'अभिरतिबान्धवाना' इति ग-पाठः.
५. 'बाणानाम्' इति ग-पाठः. ६. 'विआरा' इति ग-पाठः. ७. 'भिन्दमाना' इति
ग-पाठः. ८. 'बाणा' इति ग-पाठः. ९. 'दीवेन्ति' इति ग-पाठः. १०. 'दशर्यन्ति'
इति घ-पाठः. ११. 'साहयन्ति' इति ग-पुस्तके, 'साधयन्ति' इति च घ-पुस्तके पाठः.

[नीतान्यद्य निष्कृप पिनद्धनवरङ्गकया वराक्या ।

गृहपरिपाट्या प्रहेणकानि तव दर्शनाशया ॥]

नवरङ्गं नूतनरक्तवस्त्रम् । प्रहेणकानि वायनकानि । 'प्रहेणकं वायनकम्' इति
शाश्वती । अयं भावः—घन्यस्त्वमसि यमुत्सवव्याजेन गृहगृहभ्रमणखेदमगणयन्ती
मन्त्रां दिदृक्षते । अतस्तामात्मदर्शनेनानुकम्पस्वेति ॥

दरिद्रनायकासक्तां नायिकां तल्लक्षणसूचनेन सखी निवारयितुमाह—

सूइज्जइ हेमन्तम्मि दुग्गओ पुप्फुआसुअन्धेण ।

धूमकविलेण परिविरलतन्तुणा जुण्णवडएण ॥ २९ ॥

[सूच्यते हेमन्ते दुर्गतः करीषामिंसुगन्धेन ।

धूमकपिलेन परिविरलतन्तुना जीर्णपटकेन ॥]

पुप्फुआ इति करीषामौ देशी ॥

शिशिरसमये प्रवासोद्यतस्य नायकस्य गमनाक्षेपाय नायिका शिशिरप्रवासिनोऽवस्थां
वर्णयति—

खरसिप्पिरउल्लिहिआइँ कुणइ पहिओ हिमागमपहाए ।

आअमणजलोल्लिअहत्थफँसमसिणाइँ अङ्गाइँ ॥ ३० ॥

[तीक्ष्णपलालोल्लिखितानि करोति पथिको हिमागमप्रभाते ।

आचमनजलार्द्रितहस्तस्पर्शमसृणान्यङ्गानि ॥]

सिप्पिर पलालः । ओल्लिओ आर्द्रितः । देशी द्वयम् । यदीदानीं त्वया गम्यते तदा
तवापीयमवस्था भविष्यतीति भावः ॥

परिगृहीतोत्तमस्त्रीकमधमं चौरं कामुकजनेऽभिद्रवति सति कोऽप्युत्कृष्टनायिकाप-
रिग्रहरसिकस्य निकृष्टस्य निषेधायान्यापदेशेनाह—

णक्खक्खुडिअं सहूआरमञ्जरिं पामरस्स सीसम्मि ।

बन्दिम्मिव हीरतिं भमरजुआणा अणुसरन्ति ॥ ३१ ॥

[नखोत्खण्डितां सहकारमञ्जरीं पामरस्य शीर्षे ।

बन्दीमिव हियमाणां भ्रमरयुवानोऽनुसरन्ति ॥]

त्वयाप्युत्तमस्त्रीपरिग्रहे कृते युवान उपद्रावयिष्यन्तीति भावः । यद्वा विपद्रस्तायाः

१. 'परिपाला पथिनयनानि' इति घ-पाठः. २. 'धुम्म' इति ग-पाठः. ३. 'पवि-
रल' इति ग-पाठः. ४. 'सुगन्धिना' इति ग-पाठः. ५. 'सिप्पिरुल्लिहि' इति क-ख-
पाठः. ६. 'पुस' इति क-ख-पाठः. ७. 'तीक्ष्णतृणाग्रो' इति ग-पुस्तके, 'खरपलालो'
इति च घ-पुस्तके पाठः.

कस्याश्चिन्नायिकायाः सखी तस्या विपदुद्धरणायान्यापदेशेन नायकमाह—नवखण्डनपा-
मरशिरोवस्थानरूपविपत्पतिता सहकारमञ्जरी तिर्यञ्चो भ्रमरा अप्यनुसरन्तीति रसिक-
शिरोमणेस्तवौदासीन्यमनुचितमित्याशयः ॥

विदिताभिप्रायोऽसि मयेति व्यञ्जयन्ती दूती नायकं विश्वासयितुमाह—

सूरच्छलेण पुत्तअ कस्स तुमं अञ्जलिं पणामेसि ।

हासकडक्खुम्मिस्सा ण होन्ति देवाणं जेक्कारा ॥ ३२ ॥

[सूर्यच्छलेन पुत्रक कैसै त्वमञ्जलिं प्रणामयसि ।

हौसकटाक्षोन्मिश्रा न भवन्ति देवानां जयकाराः ॥]

जयकारा जयजयेत्यादिकाः स्तुतयः । जेकारो नमस्कारे देशीति कश्चित् ॥

चौर्यरतप्रशंसया दूती नायिकामुत्कण्ठयितुमाह—

मुहविञ्जविअपईवं गिरुद्धसासं ससङ्किओल्लावम् ।

सवहसअरक्खिओट्टं चोरिअरमिअं सुहावेइ ॥ ३३ ॥

[मुखविध्मापितप्रदीपं निरुद्धश्वासं सशङ्कितोलापम् ।

शपथशतरक्षितोष्ठं चौरिकारमितं सुखयति ॥]

मुखेन मुखवातेन विध्मापितो निर्वापितः प्रदीपो यत्र तत् ॥

रहस्यकथया दूती नायिका विश्वासयितुमाह—

गेअच्छलेण भरिउं कस्स तुमं रुअसि णिठ्भरुक्कण्ठम् ।

मण्णुपडिरुद्धकण्ठद्धणिन्तखलिअक्खरुल्लावम् ॥ ३४ ॥

[गेयच्छलेन स्मृत्वा कस्य त्वं रोदिषि निर्भरोत्कण्ठम् ।

मन्युप्रतिरुद्धकण्ठार्धनिर्यत्स्खलिताक्षरोलापम् ॥]

कस्य स्मृत्वा त्वं रोदिषि । नैवंविध गीतं भवतीति मया ज्ञातम् । यदर्थं खिद्यसे तमहं
साधयिष्यामीति भावः ॥

स्वयंदूती प्रतिवेशिजार प्रति स्वावसरं ख्यापयितुमाह—

बहलतमा हअराई अज्ज पउत्थो पई घरं सुण्णम् ।

तह जग्गेषु सअज्जिअ ण जहा अम्हे मुंसिज्जामो ॥ ३५ ॥

१. 'देव्वाण' इति क-पाठः. २. 'जेक्कारा' इति ख पुस्तके, 'जोत्कारा' इति च
ग-पुस्तके पाठः. ३. 'कस्य' इति ग-घ पाठः. ४. 'हास' इति घ-पाठः. ५. 'जो-
त्कारा' इति ग-पाठः, 'जोत्कारशब्दो नमस्कारे वर्तते' इति कुलबालदेवः. ६. 'सस-
किरुल्लावम्' इति क-ग-पाठः. ७. 'निर्वापित' इति ग-घ-पाठः. ८. 'चोरित' इति
घ-पाठः. ९. 'निर्गच्छत्' इति ग-पाठः. १०. 'सुविज्जामो' इति क-पाठः.

[वैहङ्गत्तमा हतरात्रिरद्य प्रोषितः पतिर्गृहं शून्यम् ।

तथा जागृहि प्रतिवेशिन्न यथा वैयं मुष्यामहे ॥]

बहन् तमो यस्यामित्यनेन गाढान्धकार आगच्छन्त कोऽपि न लक्ष्यतीति सूचितम् ।
अद्य प्रोषित इत्यनेन तदागमनशङ्का निरस्ता । गृहं शून्यमित्यनेनेहैव स्वच्छन्दमाग-
च्छन्ति वनितम् ॥

प्रेषितभर्तृकायाः सखी तत्कान्तस्यागमनत्वर्थं तत्समीपगामिनं पथिकमाह—

संजीवणोसहिन्मिव सुअस्स रक्खइ अणणवावारा ।

सामू णवढ्मदंसणकण्ठागअजीविअं सोह्मम् ॥ ३६ ॥

[संजीवनौषधिमिव सुतस्य रक्षत्यनन्यव्यापारा ।

श्वश्रूर्नवाभ्रदर्शनकण्ठागतजीवितां स्नुषाम् ॥]

श्वश्रूः स्नुषां सुतस्य संजीवनौषधिमिव रक्षतीति संबन्धः ॥

स्वण्डिता प्रातरागतं नखदन्तक्षताद्यङ्कितं कान्तं सेष्यमाह—

पूणं हिअअणिहित्ताइ वससि जाआइ अम्ह हिअअम्मि ।

अण्णह मणोरहा मे सुहअ कहं तीअ विण्णाआ ॥ ३७ ॥

[नूनं हृदयनिहितया वससि जाययास्माक हृदये ।

अन्यथा मनोरथा मे सुभग कथं तथा विज्ञाताः ॥]

जायया सहास्माक हृदये वससि । अन्यथा नखक्षतादिकं यन्मया चिकीर्षित तत्तथा
ध्वं कृतमित्यर्थः ॥

दृती नायिकाया अनुरागातिशयं सूचयन्ती नायकमाह—

तइ सुहअ अईसन्ते तिस्सा अच्छीहिँ कण्णलग्गेहिँ ।

दिण्णं घोलिरवाहेहिँ पाणिअं दंसणसुहाणम् ॥ ३८ ॥

[त्वयि सुभग अदृश्यमाने तस्या अक्षिभ्यां कर्णलग्नाभ्याम् ।

दत्तं घूर्णनशीलर्वाष्पाभ्यां पानीयं दर्शनसुखेभ्यः ॥]

अदृश्यमाने दर्शनपथमतिक्रम्य गते । कर्णलग्नाभ्या त्वदर्शनकौतुकविकसिताभ्यामि-

१. 'बहङ्गान्धकारा' इति ग-पाठः. २. 'अस्मान्मुष्णीयुः' इति ग-पुस्तके, 'वय
ममुद्विजामः' इति च घ-पुस्तके पाठः. ३. 'संजीवनौषधिमिव' इति क-ग-पाठः.
४. 'कण्ठोद्गत' इति घ-पाठः. ५. 'सासुहअ' इति ग-पुस्तके, 'सासुअ' इति च ख-
पुस्तके पाठः. ६. 'मे कथय कथं' इति क-ख-पुस्तकयोः, 'मे शंस कथं' इति घ-
पुस्तके पाठः. ७. 'अदीसन्ते' इति क-पाठः. ८. 'व्यतिक्रान्ते' इति ग-पाठः.
९. 'घूर्णमानाभ्यां' इति ग-पाठः. १०. 'वाहाभ्यां' इति घ-पाठः.

त्यर्थः । अतः परं त्वद्दर्शनं दुर्लभमिति मत्वा तस्मै परलोकगताय जलं दत्तमित्युत्प्रेक्षा ।
यद्वा त्वत्स्नेहान्न रुदितं तथा, किन्तु सुखाय जलाञ्जलिर्दत्त इत्यपह्नुतिः ॥

प्रोषितभर्तृका कान्तं प्रति गाथया संदेशमाह—

उत्प्रेक्षागअर्तुअमुहदंसणपडिरुद्धजीविआसाइ ।

दुहिआइ मए कालो केत्तिअमेत्तो व्व णेअव्वो ॥ ३९ ॥

[उत्प्रेक्षागतत्वन्मुखदर्शनप्रतिरुद्धजीविताशया ।

दुःखितया मया कालः कियन्मात्रो वै नेतव्यः ॥]

उत्प्रेक्षया भावनयागतस्य प्राप्तस्य तव मुखदर्शनेन प्रतिरुद्धा स्थापिता जीविताशा
यस्यास्तया । अन्यथा जीविताशा गच्छेदेवेति भावः ॥

गलितरूपयौवनां कामपि कुलटा कुट्टन्याह—

वोलीणालक्खिअरूअजोव्वणा पुत्ति कं ण दुम्मेसि ।

दिट्ठो पणट्टपोराणजणवआ जम्मभूमि व्व ॥ ४० ॥

[व्यतिक्रान्तालक्षितरूपयौवना पुत्रि कं न दुँनोषि ।

ईष्टा प्रणष्टपौराणजनपदा जन्मभूमिरिव ॥]

व्यतिक्रान्तमत एवालक्षितं रूपं यौवनं च यस्याः सा । जनपदो लोकः ॥

वयस्यस्याभिमतं संपत्स्यत इति नायकसहचरेण पृष्टा दूती तमाह—

परिओसविअसिएहिं भणिअं अच्छीहिं तेण जणमज्जे ।

पडिवणं तीअ वि उव्वमन्तसेएहिं अङ्गेहिं ॥ ४१ ॥

[परितोषविकसिताभ्यां भणितमक्षिभ्यां तेन जनमध्ये ।

प्रतिपन्नं तयाप्युद्धमत्स्वेदैरङ्गैः ॥]

भणितमर्थात्स्वाभिमतम् । प्रतिपन्नमङ्गीकृतम् ॥

परस्परानुरागवतोरपि कयोश्चित्समागमयोग्यसंकेतस्थलाभावादभिमतसिद्धिर्न जा-
तेति नागरिकः सहचरमाह—

एक्ककमसंदेसाणुराअर्वडुन्तकोउह्लाई ।

दुक्खं असमत्तमणोरहाई अँच्छन्ति मिहुणाई ॥ ४२ ॥

१. 'बुह' इति ग-पाठः. २. 'दुहदया' इति ग-पाठः. ३. 'इति' इति ग-पुस्तके,
'इव' इति च घ-पुस्तके पाठः. ४. 'बोलीणोलेछिअ' इति ग-पाठः. ५. 'दिट्ठप्पणट्ट'
इति क-पाठः. ६. 'व्यतिक्रान्तोपलक्षित' इति ग-पाठः. ७. 'दुर्मनायमाना भवसि'
इति ग-पुस्तके, 'दूनयसि' इति च घ-पुस्तके पाठः. ८. 'दृष्टा प्रनष्ट' इति ग-घ-पाठः.
९. 'वच्छन्त' इति क-पाठः. १०. 'अङ्गन्ति' इति ग-पाठः.

[अन्योन्यसंदेशानुरागवर्धमानकौतूहलानि ।
दुःखमसमाप्तमनोरथानि तिष्ठन्ति मिथुनानि ॥]

प्रियं प्रति जातमनुरागं गोपयन्तीं नायिका सखी आह—

जैइ सो ण वल्लहो विअ गोत्तग्गहणेण तस्स सखि कीस ।
होइ मुहं ते रविअरफंसविसदं व तामरसम् ॥ ४३ ॥

[यदि स न वल्लभ एव गोत्रग्रहणेन तस्य सखि किमिति ।
भवति मुखं तव रविकरस्पर्शविकसितमिव तामरसम् ॥]

गोत्रं नाम । विसदं विकसितम् ।

कथं कुपिता त्वं प्रसन्नासीति मातुलान्या पृथा कापि मानापनयहेतुमाह—

माणदुमपरुसपवणस्स मामि सव्वङ्गणिँव्वुइअरस्स ।
अवरूहणस्स भदं रइणाडअपुव्वरङ्गस्स ॥ ४४ ॥

[मानद्रुमपरुषपवनस्य मातुलानि सर्वाङ्गनिर्वृत्तिकरस्य ।
अवगूहनस्य भद्रं रतिनाटकपूर्वरङ्गस्य ॥]

अवगूहनस्यालिङ्गनस्य । भद्रं भवत्विति शेषः । प्रियालिङ्गनान्मानोऽपगत इति
भावः ॥

कमपि युवान प्रति जातानुरागा कापि स्वहृदयनिषेधच्छलेन संगमौत्सुक्यमाह—

णिअआणुमाणणीसङ्क हिअअ दे विरम एत्ताहे ।
अमुणिअपरमत्थजणाणुलग्ग कीस म्ह लहुएसि ॥ ४५ ॥

[निजकानुमाननिःशङ्क हृदय हे प्रसीद विरमेदानीम् ।
अज्ञातपरमार्थजनानुलग्न किमित्यस्मांल्लघयसि ॥]

निजकानुमानेन निःशङ्केति हृदयविशेषणम् । स्वमिव परमपि परदुःखदुःखितं ज्ञात्वा
त्यक्तमनोरथभङ्गभयेत्यर्थः । देशब्दः संबोधने । अज्ञातपरमार्थं परव्यथानभिज्ञे जने-
ऽनुलग्न आसक्त ॥

१. 'एकैकक्रमसंदर्शनानुराग' इति ग-पुस्तके, 'एकक्रमसंदेशानुराग' इति च घ-
पुस्तके पाठः. २. 'सन्ति' इति घ-पाठः. ३. इयं सटीका गाथा क-पुस्तके नास्ति.
४. 'णिव्वदि' इति ग-पाठः. ५. 'भगिनि' इति ग-पुस्तके, 'मातुलि' इति च घ-
पुस्तके पाठः. ६. 'हे हृदय' इति क-ख-ग-पाठः. ७. 'विरमैतावतैव' इति ग-पाठः.

जारव्यामोहनाय दूती नायिकायाः सौन्दर्यातिशयं ख्यापयितुमाह—

ओसंहिअजणो पइणा सलाहमाणेण अइचिरं हसिओ ।

चन्दो त्ति तुज्झ वअणे विईण्णकुसुमञ्जलिविलक्खो ॥ ४६ ॥

[आवसधिकजनः पत्या श्लाघमानेनातिचिर हसितः ।

चन्द्र इति तव वदने वितीर्णकुसुमाञ्जलिविलक्षः ॥]

आवसधिकश्चन्द्रार्घदानादिद्रवतनियमस्थो जनश्चन्द्रभ्रमेण त्वन्मुखे प्रक्षिप्तपुष्पाञ्जलिः
पत्या विहसित इत्यर्थः ॥

किमिति दुर्बलासीति सखीभिः पृष्टया त्वया किमुत्तरं दीयत इति धूर्तनायकेनोक्ता
नायिका तमाह—

छिज्जन्तेहिँ अणुदिणं पच्चक्खम्मि वि तुमम्मि अङ्गेहिँ ।

बालअ पुच्छिज्जन्ती ण आणिमो कस्स किं भणिमो ॥ ४७ ॥

[क्षीयमाणैरनुदिनं प्रत्यक्षेऽपि त्वय्यङ्गैः ।

बालक पृच्छयमाना न जानीमः कस्य किं भणामः ॥]

बालक उचितानभिज्ञ । क्षीयमाणैरङ्गैरुपलक्षिता । पृच्छयमाना किमिति दुर्बला-
सीति शेषः । पूर्वं तव प्रवासो दुर्बलत्वे कारणमासीत्, अधुना तु संनिहिते त्वयि तव
दुश्चेष्टामप्रतीयतीषु सखीषु किं वक्तव्यं तन्न जानीम इति भावः । प्राकृते वचनस्यानि-
यमात्पृच्छयमानेत्येकवचनं जानीम इति बहुवचनं च न विरुद्धमिति ध्येयम् ॥

प्रथमतः कृतशीलखण्डनं ततो मन्दादरं कमपि नायकमनुकूलयितुं दूती सोपा-
लम्भमाह—

अङ्गाणं तणुआरअ सिक्खावअ दीहरोइअव्वाणम् ।

विणआइक्कमआरअ मा मा णं पम्हसिज्जासु ॥ ४८ ॥

[अङ्गानां तनुकारक शिक्षक दीर्घरोदितव्यानाम् ।

विनयातिक्रमकारक मा मा एनां प्रस्मरिष्यसि ॥]

तन्विति भावप्रधानो निर्देशः । तनुत्वकारकेत्यर्थः । विनयस्य शीलस्यातिक्रमः
खण्डनं तत्कारक ॥

१. 'सुमुहि सहिअणो' इति ग-पाठः. २. 'विमुक्क' इति क-पुस्तके, 'विकिण्ण' इति च ग-पुस्तके पाठः. ३. 'सुमुखि सखीजनो' इति ग-पाठः. ४. 'विकीर्ण' इति ग-पाठः. ५. 'हीयमानैः' इति ग-पाठः. ६. 'त्वयाङ्गैः' इति ग-पाठः. ७. 'तनुत्व-कारक' इति घ-पाठः. ८. 'शिक्षापक' इति ग-घ-पाठः. ९. 'प्रमार्जय' इति ग-पुस्तके, 'प्रभ्रंशय' इति च घ-पुस्तके पाठः.

प्रवामोद्यतस्य नायकस्य गमनाक्षेपाय काचिदाह—

अण्णह ण तीरइ चिअ परिवडुन्तगरुअं पिअअमस्स ।

मरणविणोएण विणा विरमावेउं विरहदुक्खम् ॥ ४९ ॥

[अन्यथा न शक्यत एव परिवर्धमानगुरुकं प्रियतमस्य ।

मरणविनोदेन विना विरमयितुं विरहदुःखम् ॥]

प्रियतमस्य विरहदुःखं प्रियतमविरहेण जातं दुःखं स्वस्य मरणविनोदेन विना अन्यथा प्रकारान्तरेण विरमयितुं न शक्यत एवेत्यर्थः ॥

काप्यान्मनोऽनुरागं तस्य चान्यासक्तिं सूचयन्ती नायकमाह—

वण्णन्तीहिं तुह गुणे बहुसो अन्हेहिं छिञ्छईपुरओ ।

बालअ सअमेअ कओसि दुल्लहो कस्स कुप्पामो ॥ ५० ॥

[वर्णयन्तीभिस्तव गुणान्बहुशोऽस्माभिरसतीपुरतः ।

बालक स्वयमेव कृतोऽसि दुर्लभः कैसौ कुप्यामः ॥]

छिञ्छई असती । त्वद्गुणमुखरायाः स्वरूत एवायं ममानर्थ इति भावः ।

कपि स्वसौभाग्यप्रकटनायात्मनः प्रियस्य चान्योन्यानुरागमाह—

जाओ सो वि विलक्खो मए वि हसिऊण गाढमुवगूढो ।

पढमोसरिअस्स णिअंसणस्स गण्ठि विमग्गन्तो ॥ ५१ ॥

[जातः सोऽपि विलक्षो मयापि हसित्वा गाढमुपगूढः ।

प्रथमापसृतस्य निवसनस्य ग्रन्थि विमोर्गयमाणः ॥]

प्रथमेत्यनुरागातिशयेन प्रियस्पर्शात्पूर्वमेव स्खलितस्येत्यर्थः । वैलक्ष्यापनयनाय मयापि गाढमालिङ्गित इति भावः ॥

अन्यासक्तं नायकमनुकूलयितुं दूती नायिकाया विरहवैधुर्यमाह—

कण्डुजुआ वराई अज्ज तए सा कआवराहेण ।

अलसाइअरुण्णविअम्भिआइँ दिअहेण सिक्खविआ ॥ ५२ ॥

[कौण्डर्जुका वराकी अद्य त्वया सा कृतापराधेन ।

अलसायितरुदितविजृम्भितानि दिवसेन शिक्षिता ॥]

१. 'परिवडुन्तस्स गरुअपेम्मस्स' इति क-ख-पाठः. २. 'परिवर्धमानस्य गुरु-
कप्रेम्णः' इति घ-पाठः. ३. 'कस्य कुप्यामि' इति ग-पाठः. ४. 'णिअंसनशब्दः
परिधानवस्त्रवाचकः' इति कुलबालदेवः. ५. 'विमोर्गन्' इति ग-पुस्तके, 'विमृगमाणः'
इति घ-पुस्तके पाठः. ६. 'सिक्खइआ' इति ग-पाठः. ७. 'कर्णेकजुका' इति घ-पाठः.

ण्डवदजुका । 'कण्णुज्जुआ' इति पाठे कर्णऋजुका कर्णदुर्बलेत्यर्थः । 'कन्या । इत्यर्थः' इति कश्चित् ॥

पि दाक्षिण्यादनुनयन्तं शठं नायकमाह—

अवराहेहिँ वि ण तथा पत्तिअ जह सं इमेहिँ दुँम्मेसि ।

अवहत्थिअसवभावेहिँ सुहअ दक्खिण्णभणिएहिँ ॥ ५३ ॥

[अपराधैरपि न तथा प्रतीहि यथा मामेभिर्दुनोषि ।

अपहस्तितसद्भावैः सुभग दाक्षिण्यभणितैः ॥]

द्राव्याजेन प्रियाशयजिज्ञासया परिभ्रमन्तौ भुजौ निर्भर्त्सयन्तीं नायिकां नायक

मा जूर पिआलिङ्गणसरहसभमिरीणं बाहुलइआणम् ।

तुल्लिक्कपरुण्णेण अँ इमिणा माणंसिणि सुहेण ॥ ५४ ॥

[मा क्रुध्यस्व प्रियालिङ्गनसरभसभ्रमणशीलाभ्यां बाहुलतिकाभ्याम् ।

तूष्णीकप्ररुदितेन चानेन मनस्विनि सुखेन ॥

हुलतिकाभ्यामित्यत्र 'कुधदुहेर्घ्यासूयार्थाना यं प्रति कोपः' इति चतुर्थी । अत्रार्थं प्रियं प्रति क्रोधाभावेन विशेषोक्तिः । अदोषौ दोषौ प्रति क्रोधेन च विभावना । तल्लक्षणं तु 'विशेषोक्तिरखण्डेषु कारणेषु फलावच' 'क्रियायाः प्रतिषेधेऽपि अक्तिर्विभावना' इति काव्यप्रकाशकारोक्तं द्रष्टव्यम् ॥

पावचयच्छलेन संकेतस्थानं गच्छन्त कामुक कापि जरत्कुट्टनी सपरिहासमाह—

मा वच्च पुःफलाविर देवा उअअज्जलीहिँ तूसन्ति ।

गोआअरीअ पुत्तअ सीलुम्मूलाइँ कूलाइँ ॥ ५५ ॥

[मा ब्रज पुष्फलवनशील देवा उदकाञ्जलिभिस्तुष्यन्ति ।

गोदावर्याः पुत्रक शीलोन्मूलानि कूलानि ॥]

आणां लवनं छेदनम् । शीलं सञ्चरितमुन्मूलयन्ति निर्मूलं कुर्वन्तीति तथाभूतानि ॥ स्मिन्नपि गूनि जाताभिलाषां स्वाभिलाषं लज्जया गोपयन्तीं नायिकां सखी आह—

वअणे वअणम्मि चलन्तसीससुण्णावहाणहुँकारम् ।

सहि देन्ती णीसासन्तरेसु कीस म्ह दुँम्मेसि ॥ ५६ ॥

. 'दूमेसि' इति ग-पाठः. २. 'मामेतैरपदुर्मनायसे' इति ग-पुस्तके, 'मामेभिर्नो-
र' इति च घ-पुस्तके पाठः. ३. 'जूल' इति ग-पाठः. ४. 'अयि सुवसु मणंसिणि
' इति ग-पाठः. ५. 'अयि स्वपिहि मनस्विनि सुखेन' इति ग-पाठः. ६. 'णि-
न्तरेण' इति ग-पाठः.

[वचने वचने चलच्छीर्षशून्यावधानहुंकारम् ।

नन्वि ददती निःश्वासान्तरेषु किमित्यस्मान्दुनोषि ॥]

कृतापराध कान्त प्रति प्रियाया अनङ्गीकारं बोधयन्ती दूती आह—

मन्भावं पुच्छन्ती बालअ रोआविआ तुह पिआए ।

णत्थि त्रिवअ कअसवहं हासुम्मिस्सं भणन्तीए ॥ ५७ ॥

[सद्भावं पृच्छन्ती बालक रोदिता तव प्रियया ।

नास्त्येव कृतशपथं हासोन्मिश्रं भणन्त्या ॥]

रोदिता अहमिति शेषः । नास्त्येवेत्यनन्तरं दूतीति शेषः । अपि नाम स्थिरस्नेहोऽयं तव पतिरिति पृष्टे नास्त्येव सद्भावं इति कथयन्त्या रोदिताहमिति भावः ॥

मंक्रन्पमात्रात्सात्त्विकभावा भवन्तीति कापि स्ववैदग्ध्यं ख्यापयितु सखीमाह—

एत्थ मए रमिअव्वं तीअ समं चिन्तिऊण हिअएण ।

पामरकरसेओल्लो णिवअइ तुवरी वैविज्जन्ती ॥ ५८ ॥

[अत्र मया रन्तव्यं तथा समं चिन्तयित्वा हृदयेन ।

पामरकरस्वेदाद्रा निपतति तुवरी उप्यमाना ॥]

सममित्यनन्तरमितीति शेषः । इति चिन्तयित्वोप्यमानेति योजना । तुवरी आढकी । 'आढकी तु तुवर्यां स्त्री परिमाणान्तरे त्रिषु' इति मेदिनी ॥

काप्यात्मनः पत्नौ कस्याश्चिदनुराग सूचयन्ती सखीमाह—

गहवइसुओच्चिएसु वि फलहीवेण्ठेसु उअह वहुआए ।

मोहं भमइ पुलइओ विल्लंगसेअङ्गुली हत्थो ॥ ५९ ॥

[गृहपतिसुतावचितेष्वपि कर्पासवृन्तेषु पश्यत वध्वाः ।

मोहं भ्रमति पुलकितो विल्लभस्वेदाङ्गुलिर्हस्तः ॥]

१. 'निःश्वासान्तरेण' इति ग-पाठः. २. 'दुर्मनायते' इति ग-पाठः. ३. 'हासु-
र्मास' इति ग-पाठः. ४. 'रोदितास्मि' इति ग-पाठः. ५. 'उल्ला' इति ग-पाठः.
६. 'अविज्जन्ती' इति ख-पाठः. ७. 'रमितव्यं' इति घ-पाठः. ८. 'तुवरी वयमाना'
इति ग-पुस्तके, 'कोशातकी उप्यमाना' इति च घ-पुस्तके पाठः. ९. 'खण्डेसु' इति
क-पुस्तके, 'वाटेसु' इति च ख-पुस्तके पाठः. १०. 'गलन्त' इति ग-पाठः. ११.
'वाटेषु' इति घ-पाठः. १२. 'गलत्' इति ग-घ-पाठः.

कोऽप्यात्मनो विज्ञत्वं ख्यापयन्सखायमाह—

अज्जं मोहणसुहिअं मुअत्ति मोत्तू पलाइए हल्लिए ।

दरफुडिअवेण्टभारोणआइ हसिअं व फलहीए ॥ ६० ॥

[आर्या मोहनसुखितां मृतेति मुक्त्वा पलायिते हल्लिके ।

दरस्फुटितवृन्तभारावनतया हसितमिव कार्पास्या ॥]

आर्या तरुणी मुरतखेदेन निमीलितनयना मृतेति ज्ञात्वा हल्लिके पलायिते सातं २५-
त्स्फुटितवृन्तभारया लज्जावशादिवावनतया कार्पास्या हसितमिव ॥

काप्यात्मनो निन्दाछलेन कान्तं प्रत्यनुरागातिशयं प्रतिपादयन्ती सखीमाह—

णीसासुकम्पिअपुलइएहिं जाणन्ति णच्चिउं धण्णा ।

अम्हारिसीहिं दिट्ठे पिअम्मि अप्पा वि वीसरिओ ॥ ६१ ॥

[निःश्वासोत्कम्पितपुलकितैर्जानन्ति नर्तितुं धन्याः ।

अस्मादृशीभिर्दृष्टे प्रिये आत्मापि विस्मृतः ॥]

अत्र ता अधन्या वयं तु धन्या इति व्यतिरेकालंकारो व्यङ्ग्यः ।

इष्टसिद्धये दूती नायिकाया व्याजस्तुतिमाह—

तणुएण वि तणुइज्जइ खीएण वि खिज्जए बला इमिणा ।

मज्झत्थेण वि मज्झेण पुत्ति कह मुज्झ पडिवक्खो ॥ ६२ ॥

[तनुकेनापि तनूयते क्षीणेनापि क्षीयते बलादनेन ।

मध्यस्थेनापि मध्येन पुत्रि कथं तव प्रतिपक्षः ॥]

यो हि मध्यस्थत्वादिगुणयुक्तः स परं न पीडयति । अयं तु तव मध्यस्तनुरागं शी-
णोऽपि मध्यस्थोऽपि परं पीडयतीत्यपिशब्दघोषो विरोधाभासः ॥

काप्यात्मनो वैदग्ध्यमनुरागं च सूचयन्ती कमप्याह—

वाहिव्व वेज्जरहिओ धणरहिओ सुअणमज्झवासो व्व ।

रिउरिद्धिदंसणम्मिअव दूसहणीओ तुह विओओ ॥ ६३ ॥

१. 'मोत्तू' इति ख-ग-पाठः. २. 'फुलिअ' इति क-ग-पाठः. ३. 'फलहीहिं'
इति ग-पाठः. ४. 'ईश्वरसुता' इति ग-पुस्तके, 'वरतनुं' इति च घ-पुस्तके पाठः.
५. 'फलभारावनतया' इति ग-पुस्तके, 'वृन्तभारावनतेन' इति च घ-पुस्तके पाठः.
'फलही कार्पासवृक्षः । वेण्टशब्दः कर्पासफले वर्तते' इति कुलबालदेवः. 'कर्पासेन' इति
घ-पाठः. ६. 'खामेण खमिज्जए' इति ग-पाठः. ७. 'तनुकेनापि तनुः क्रियते क्षामः
क्रियते क्षामेण' इति ग-पाठः.

[व्याधिरिव वैद्यरहितो धनरहितः स्वजनमैष्यवास इव ।
रिपुन्नाद्धिदर्शनमिव दुःसहनीयस्तव वियोगः ॥]

प्रियं प्रति नायिकायाः संदेशगाथेयमिति केचित् ॥

वेश्यामाता खदुहितुः पीनोन्नतपयोधरतां प्रतिपादयन्ती चाद्रक्या राजानममुकूल-
यितुमाह—

कोत्थ जअस्मि समत्थो थइउं^३ वित्थिण्णणिम्मलुत्तुङ्गम् ।

हिअअं तुङ्गण णराहिव गअणं च पओहरं मोत्तुम् ॥ ६४ ॥

[कोऽत्र जगति समर्थः स्थगयितुं विस्तीर्णनिर्मलोत्तुङ्गम् ।

हृदयं तव नराधिप गगनं च पयोधरान्मुक्त्वा ॥]

पयोधरः स्तनः । पक्षे मेघः ॥

संकेतस्थानगतं जारं कुट्टनी समाश्वासयितुमाह—

आअण्णेइ अँउअणा कुडङ्गहेट्टम्मि दिण्णसंकेआ ।

अग्गपअपेल्लिआणं मम्मरअं जुण्णपत्ताणम् ॥ ६५ ॥

[आकर्णयत्यसती कुञ्जाधो दत्तसंकेता ।

अग्रपदप्रेरितानां मर्मरकं जीर्णपत्राणाम् ॥]

मर्मरः पत्रध्वनिः । 'अथ मर्मरः । खनिते वस्त्रपर्णानाम्' इत्यमरः ॥

भुजंगप्रलोकनार्थं दूती कस्याश्चिन्मुखसौरभ वर्णयति—

अहिलेन्ति सुरहिणीससिअपरिमलाबद्धमण्डलं भमरा ।

अमुणिअचन्दपरिहवं अपुव्वकमलं मुहं तिस्सा ॥ ६६ ॥

[अभिलीयन्ते सुरभिनिःश्वसितपरिमलाबद्धमण्डलं भमराः ।

अज्ञातचन्द्रपरिभवमपूर्वकमलं मुखं तस्याः ॥]

भमरा भ्रमणशीलाः कामुका भृङ्गाश्च । सुरभि यन्निःश्वसितं तस्य परिमलेनावद्धं म-
ण्डलं यस्मिन्कर्मणि यथा भवतीति क्रियाविशेषणम् । 'अहिलेन्ति अभिलषन्तीत्यर्थः'
इति कश्चित् ॥

१. 'औषधरहितो' इति ग-पाठः. २. 'गृहवास' इति ग-पाठः. ३. 'वित्थिण्णं
णिम्मलं समुत्तुङ्गम्' इति ग-पाठः. ४. 'क' समर्थो भवति पिधापयितुं विस्तीर्णं निर्मलं
समुत्तुङ्गम्' इति ग-पाठः. ५. 'गगनमिव' इति ग-घ-पाठः. ६. 'पयोधरौ' इति
ग-पाठः. ७. 'अइण्णिउणा' इति ग-पाठः. ८. 'आकर्णयत्यतिनिपुणा' इति ग-पाठः.
९. 'कुञ्जतले' इति घ-पाठः. १०. 'मण्डला भमरी' इति क-पाठः. ११. 'अभिलषति
सुरभिनिर्मथित' इति ग-पाठः.

दूती नायिकाया अनुरागातिशयं सूचयन्ती नायकमाह—

धीरंवलम्बिरीअ वि गुरुअणपुरओ तुमम्मि बोलीणे ।
पडिओ से अच्छिणिमीलणेण पम्हट्टिओ वाहो ॥ ६७ ॥
[धैर्यंवलम्बनशीलाया अपि गुरुजनपुरतस्त्वयि व्यतिक्रान्ते ।
पतितस्तस्या अक्षिनिमीलनेन पक्षमस्थितो बाष्पः ॥]

गुरुजनलज्जया तथा नानुगमनं कृतम्, बाष्पेण पुनः कृतमेवेति भावः ॥
मानिन्याः स्वस्मिन्ननुरागातिशयं स्वसौभाग्यं च सूचयन्नागरिकः सहचरमाह—

भरिमो से सअणपरम्मुहीअ विअलन्तमाणपसराए ।
कइअवसुत्तुव्वत्तणर्थेणकलसप्पेळणसुहेळ्ळिम् ॥ ६८ ॥

[स्रारामस्तस्याः शयनपराङ्मुख्या विगलन्मानप्रसरायाः ।
कैतवसुप्तोद्धर्तनस्तनकलशप्रेरणसुखकेलिम् ॥]

कस्याश्चिदङ्गं जारेण कर्दमेनोक्षितं वीक्ष्य कर्दमदातरि तस्या अनुरागातिशयं सूच-
यन्ती सखी सपरिहासं तामाह—

फग्गुच्छणणिहोसं केण वि कइमपसाहणं दिण्णम् ।
थणअलसमुहपलोट्टन्तसेअधोअं किणो धुअसि ॥ ६९ ॥

[फाल्गुनोत्सवनिर्दोषं केनापि कर्दमप्रसाधनं दत्तम् ।
स्तनकलशमुखप्रलुठत्स्वेदधौतं किमिति धावयसि ॥]

धावयसि क्षालयसीत्यर्थः ॥

त्वद्वचनादहं तत्समीपं गतः, तथा तु मां विलोक्यापि न किञ्चिदुक्तमिति नायकेनोक्ता
दूती तमाह—

किं ण भणिओ सि बालअ गामणिधूआइ गुरुअणसमक्खम् ।
अणिमिसमीसीसिवलन्तवअणणअणद्धदिट्टेहिं ॥ ७० ॥

१. 'धीरमवलम्बिरी' इति ख-पाठः. २. 'धैर्यमवलम्बन्त्या' इति ग-पाठः. ३. 'थण-
जुअलसमुहपेळण' इति ख-पुस्तके, 'थणकलसापीडन' इति च ग-पुस्तके पाठः. ४. 'कलशा-
लिङ्गनसुखकेलिम्' इति ग-पुस्तके, 'कलशापीडनसुखम्' इति च घ-पुस्तके पाठः.
५. 'फाल्गूत्सव' इति ग-घ-पाठः. ६. 'प्रवर्तमान' इति ग-घ-पाठः. ७. 'धावसि' इति
क-ख-पाठः.

मानं धत्स्वेति शिक्षयन्तीं सखीं काचिदाह—

णिद्रामङ्गो आवण्डुरत्तणं दीहरा अ णीसासा ।

जाअन्ति जस्स विरहे तेण समं कीरिसो माणो ॥ ७४ ॥

[निद्रामङ्ग आपाण्डुरत्वं दीर्घाश्च निःश्वासाः ।

जायन्ते यस्य विरहे तेन समं कीदृशो मानः ॥]

कथं कुपितासीति नायकेन पृथ्वाया धीरानायिकाया उक्तिरियमिति केचित् ॥

कृतापराधं कान्तं कापि सप्रणयरोषमाह—

तेण ण मरामि मण्णूहिं पूरिआ अज्ज जेण रे सुहअ ।

तोग्गअमणा मरन्ती मा तुज्झ पुणो वि लग्गिस्सम् ॥ ७५ ॥

[तेन न म्रिये मन्युभिः पूरिताद्य येन रे सुभग ।

त्वद्गतमना म्रियमाणा मा तव पुनरपि लङ्गिष्यामि ॥]

त्वद्गतचित्ताया मम मरणमेव युक्तम्, परं तु तव स्मरणाद्यदि मम मरणं भवति तदा जन्मान्तरेऽपि त्वमेव मम पतिर्दुःखदो भविष्यसीति भीत्या न म्रियेऽहमिति भार ॥

कापि धैर्यमनुरागं च व्यञ्जयन्ती कृतापराधं कान्तमाह—

अवरज्जसु वीसद्धं सव्वं ते सुहअ विसहिमो अम्हे ।

गुणणिब्भरम्मि हिअए पत्तिअ दोसा ण माअन्ति ॥ ७६ ॥

[अपराध्यस्व विसंब्धं सर्वं ते सुभग विषहामहे वयम् ।

गुणनिर्भरे हृदये प्रतीहि दोषा न मान्ति ॥]

अपराध्यस्वापराधं कुरु । गुणैरर्थात्त्वदीयैर्निर्भरे पूर्णे हृदये दोषा न मान्ति अत्र कान्त न लभन्ते । अनुरक्तेन दोषो न गृह्यत इति भावः ॥

नायिकाया विरहातीं प्रतिपादयन्ती दूती नायकं त्वरयितुमाह—

भरिउच्चरन्तपसरिअपिअसंभरणपिसुणो वराईए ।

परिवाहो विअ दुक्खस्स वहइ णअणट्ठिओ वाहो ॥ ७७ ॥

[भृतोच्चरत्प्रसृतप्रियसंस्मरणपिञ्चुनो वराक्याः ।

परीवाह इव दुःखस्य वहति नयनस्थितो बाष्पः ॥]

१. 'केरिसो' इति ग-पाठः. २. 'दीर्घं च निःश्वसितम्' इति ग-पाठः. ३. 'त्वद्गतमनस्का' इति ग-पाठः. ४. 'लङ्गिष्ये' इति ग-पाठः. ५. 'विश्वस्त' इति घ-पाठः. ६. 'विषह्यामहे' इति ग-पाठः. ७. 'भरिउच्चरन्त' इति ख-पाठः. ८. 'भृतोच्चियमाणा' इति ग-पुस्तके, 'भृतोच्छलत्' इति च घ-पुस्तके पाठः. ९. 'सूचको' इति ग-पाठः. १०. 'परीवाहमिव' इति ग-पाठः. ११. 'स्थित बाष्पम्' इति ग-पाठः.

[किं न भणितोऽसि बालक ग्रामणीपुत्र्या गुरुजनसमक्षम् ।

अनिमिषमीषदीषद्वलद्वदननयनार्धदृष्टैः ॥]

बालक इद्वितानभिज्ञ । ईषदीषद्वलद्वदनं च नयनार्धदृष्टानि चेति कर्मधारयः । दृ-
ष्टानि निरीक्षणानि । कटाक्षनिरीक्षणेन संभावित एवासि । श्वशुरादिदर्शनाविर्भूतया
प्रणमत्वा केवलं नोक्तोऽसीति भावः ॥

इत्येवार्थे भङ्ग्यन्तरेणाह—

णअणन्मन्तरघोलन्तवाहभरमन्थराइ दिट्टीए ।

पुणरुत्तपेच्छिरीए बालअ किं जं ण भणिओ सि ॥ ७१ ॥

[नयनाभ्यन्तरघूर्णमानबाष्पभरमन्थरया दृष्ट्वा ।

पुनरुत्तप्रेक्षेणशीलया बालक किं यन्न भणितोऽसि ॥]

अथ पि तारुण्यावस्थाया सुरतसमये गणपतिरुपधानीकृतः, सैव वार्धकावस्थायां त-
द्वेव गणपतिं पूजयन्ती जरामुपालभते—

जो सीसम्मि विइण्णो मज्झ जुआणेहिँ गणवई आसी ।

तं त्विअ एहिँ पणमामि हअजरे होहि संतुट्ठा ॥ ७२ ॥

[यः शीर्षे वितीर्णो मम युवभिर्गणपतिरासीत् ।

तमेवेदानीं प्रणमामि हतजरे भव संतुष्टा ॥]

अपि मृतचौरिकामहिलां शोचन्तं कमप्यन्यापदेशेनाह—

अन्तोहुत्तं डँज्जइ जाआसुण्णे घरे हलिअउत्तो ।

उक्खाअणिहाणाइँ व रमिअट्टाणाइँ पेच्छन्तो ॥ ७३ ॥

[अन्तरभिमुखं दह्यते जायाश्चन्ये गृहे हालिकपुत्रः ।

उत्खातनिधानानीव रमितस्थानानि पश्यन् ॥]

अन्नगभिमुखं हृदय एवेत्यर्थः । मृतधर्मपत्नीकः पामरोऽपि बाह्याकारेण दुःखं ना-
त्राकांगेति, त्व तु विज्ञोऽपि सन्मृतचौरिकामहिलां प्रति शोचसीत्युक्तमिति भावः ॥

१. 'नृषया' इति ग-पुस्तके, 'दुहित्रा' इति च घ-पुस्तके पाठः. २. 'अनिमिष-
नसंगवदनवलित' इति ग-पाठः. ३. 'सेसिरीए' इति ग-पाठः. ४. 'म्लेच्छितकया'
इति ग-पाठः. 'म्लेच्छितं गुप्तभाषितम्' इति कुलबालदेवः. ५. 'कियन्न' इति ग-घ-
पाठः. ६. 'शिरसि' इति ग-पाठः. ७. 'भुज्जइ' इति ग-पाठः. ८. 'अन्तरा दह्यते'
इति ग-पुस्तके, 'अन्तर्भूतं दह्यते' इति च घ-पुस्तके पाठः. ९. 'प्रेक्षन्' इति ग-पाठः.

मतः पूर्णः । उच्चरन्निर्गच्छन् । प्रसृतः प्रवृद्धः । तथा प्रियसंस्मरणस्य पिशुनः सू-
चकः । एतच्च परीवाहबाष्पयोरुभयोरपि विशेषणम् ॥

नायिकाया अनुरागातिशयं प्रतिपादयन्ती दूती नायकमाह—

जं जं करेसि जं जं जप्पसि जह तुम णिअच्छेसि ।

तं तमणुसिक्खिरीए दीहो दिअहो ण संपडइ ॥ ७८ ॥

[यद्यत्करोषि यद्यज्जल्पसि यथा त्वं निरीक्षसे ।

तैत्तदनुशिक्षणशीलाया दीर्घो दिवसो न संपद्यते ॥]

त्वच्चेष्टितमनुकुर्वन्त्यास्तस्या दिवसो लघुर्भवतीत्यर्थः ॥

काचित्पथिकेन समं रात्रौ कृतसंभोगा तद्गुणातिशयेन विरहकातरा प्रभाते रोदित्तीति
नागरिकः स्वस्य विज्ञत्वख्यापनाय सहचरमाह—

भण्डन्तीअ तणाइं सोत्तुं दिण्णाइं जाइं पहिअस्स ।

ताइं च्चेअ पहाए अज्जा आअट्टइ रुअन्ती ॥ ७९ ॥

[भर्त्सयन्त्या तृणानि स्वैसुं दत्तानि यानि पथिकस्य ।

तान्येव प्रभाते आर्या आकर्षति रुदती ॥]

भण्डन्ती भर्त्सयन्ती । कलहं कुर्वाणेति यावत् ॥

कोऽपि सहचरस्य गाम्भीर्यशिक्षार्थं सत्पुरुषप्रशंसांमाह—

वसणम्मि अणुठ्विग्गा विहवम्मि अगठ्विआ भए धीरा ।

होन्ति अहिण्णसहावा समेसु विसमेसु सप्पुरिसा ॥ ८० ॥

[व्यसनेऽनुद्विग्ना विभवेऽगर्विता भये धीराः ।

भवन्त्यभिन्नस्वभावाः समेषु विषमेषु सत्पुरुषाः ॥

केनापि प्रवासिना पुरुषेण प्रेयसीं स्मृत्वा प्रभाते गानं कृतम्, तच्छ्रवणेनोद्दीपितवि-
रहानला कापि प्रोषितभर्तृका सखीमाह—

अज्ज सहि केण गोसे कं पि मणे वल्लहं भरन्तेण ।

अम्हं मअणसराहअहिअअठ्वणफोडनं गीअम् ॥ ८१ ॥

१. 'निर्धायसि' इति ग-पाठः. २. 'तत्तदनुशिक्षन्त्या' इति ग-पाठः. ३. 'श-
पितुं' इति घ-पाठः. ४. 'ईश्वरसुता आकर्षयते' इति ग-पुस्तके 'वरतनुराकर्षति'
इति च घ-पुस्तके पाठः. ५. 'वैभवे' इति ग-पाठः. ६. 'धैर्यान्विताः' इति ग-पाठः.

[अद्य सखि केन प्रीतः कामपि मन्ये वल्लभां स्मरता ।

अस्माकं मदनशराहतहृदयव्रणस्फोटनं गीतम् ॥]

तद्दुःखदर्शनेनास्माकं विरहदुःखं स्फुटितव्रणवदधिकं जातमिति भावः ॥

आयतिखेदकरं तदात्वेऽपि खेदयतीति निदर्शयन्कोऽपि सहचरमाह—

उद्वन्तमहारम्भे थणए ददूण मुद्धवहुआए ।

ओसण्णकवोलाए णीससिअं पढमघरिणीए ॥ ८२ ॥

[उत्तिष्ठन्महारम्भौ स्तनौ दृष्ट्वा मुग्धवध्वाः ।

अवसन्नकपोलया निःश्वसितं प्रथमगृहिण्या ॥]

अवसन्नकपोलया शुष्ककपोलया । पतितस्तनीं मां विहायातः परमस्यामन्योन्या-
श्लिष्टघनपीनकुचायामासक्तो भविष्यति कान्त इति चिन्तयेति भावः ॥

कापि मन्दन्नेहं नायकमनुकूलयितुमन्यापदेशेनाह—

गरुअल्लुहाउलिअस्स वि वल्लहकरिणीमुहं भरन्तस्स ।

सरसो मुणालकवलो गअस्स हत्थे च्चिअ मिलानो ॥ ८३ ॥

[गुरुकक्षुधाकुलितस्यापि वल्लभकरिणीमुखं स्मरतः ।

सरसो मृणालकवलो गजस्य हस्त एव म्लानः ॥]

मदविमोहितबुद्धिना तिरश्चा गजेनापि प्रियास्नेहातिशयान्मृणालकवलस्त्यक्तः । त्वं
पुनर्मांमपहाय महिलासहस्रं रमयसीति ज्ञातस्तव स्नेह इत्युपालम्भो व्यङ्ग्यः ॥

वाचापि प्रियो नोद्वेजयितव्य इति सखी शिक्षयितु कापि धीराया नायिकाया ना-
यकेन सहोक्तिप्रत्युक्तिकौशलमाह—

पसिअ पिए का कुँविआ सुअणु तुमं परअणम्मि को कोवे ।

को हु परो नाथ तुमं कीस अपुण्णाण मे सत्ती ॥ ८४ ॥

[प्रसीद प्रिये का कुपिता सुतनु त्वं परजने कः कोपः ।

कः खलु परो नाथ त्वं किमित्यपुण्यानां मे शक्तिः ॥]

विप्रलब्धाया अनुरागातिशयं विरहातीं च प्रतिपादयन्ती दूती नायकमाह—

एहिसि तुमं त्ति णिमिसं व जग्गिअं जामिणीअ पढमद्धम् ।

सेसं संतावपरव्वसाइ वरिसं क बोलीणम् ॥ ८५ ॥

१. 'प्रभाते किमपि' इति ग-पाठः. २. 'कपोलायाः' इति घ-पाठः. ३. 'गृहिण्याः'
इति घ-पाठः. ४. 'स्मरमाणस्य' इति ग-पाठः. ५. 'कुविदा' इति ग-पाठः. ६. 'प-
रिजने' इति घ-पाठः.

[पिप्यमि त्वमिति निमिषमिव जागरितं यामिन्याः प्रथमार्धम् ।

शेषं संतापपरवशाया वर्षमिव व्यतिक्रान्तम् ॥

भूतदिप्रन्तेशं स्त्री परिभ्रमतीति शङ्कमान जनं प्रति प्रोषितभर्तृकाया. सखी
कार्त्तवह—

अवलम्बह मा शङ्कह ण इमा गहलङ्घिता परिव्रमइ ।

अत्थक्कगज्जिउवमन्तहित्थहिअआ पहिअजाआ ॥ ८६ ॥

[अवलम्बध्वं मा शङ्कध्वं नेयं ग्रहलङ्घिता परिभ्रमति ।

आकस्मिकगर्जितोद्धान्तव्रस्तहृदया पथिकजाया ॥]

हित्थ व्रस्तम् । ग्रहा भूतादयः ॥

त्वम्य गुणोत्कर्षं ह्यापयन्ती काप्यनेकस्त्रीलम्पटं कान्तं मधुकरव्याजेनोपालभते—

केसररअविच्छडे मअरन्दो होइ जेन्तिओ कमले ।

जइ भमर तेन्तिओँ अण्हिंपि ता सोहसि भमन्तो ॥ ८७ ॥

[केसररजःसमूहे मकरन्दो भवति यावान्कमले ।

यदि भ्रमर तावानन्यत्रापि तदा शोभसे भ्रमन् ॥]

वच्छडु. समूहः ।

रम्याणा विकृतिरपि श्रियं तनोति' इति निदर्शयन्कोऽपि सखायमाह—

पेच्छन्ति अणिसिच्छा पहिआ हलिअस्स पिट्टपण्डुरिअम् ।

धूअं दुद्धसमुहुत्तरन्तलच्छिं विअ सअह्णा ॥ ८८ ॥

[प्रेक्षन्तेऽनिमिषाक्षाः पथिका हलिकस्य पिष्टपाण्डुरिताम् ।

दुहितरं दुग्धसमुद्रोत्तरलक्ष्मीमिव सतृष्णाः ॥]

धूआ दुहिता । पिष्टं तण्डुलादे. । यथानिमिषाक्षा देवा लक्ष्मीमपश्यस्तथा पथिका
अपीमामित्यर्थ. । हलिकसुतामपि साभिलाषं पश्यतामेया वासो न देय इति सहचरं
प्रति नागरिकस्योक्तिरिति केचित् ॥

कलहान्तरितायाः खेदातिशय सूत्रयन्ती दूती तत्कान्तमाह—

कस्स भरिसि त्ति भणिए को मे अत्थि त्ति जम्पमाणाए ।

उव्विग्गरोइरीए अम्हे वि रुआविआ तीए ॥ ८९ ॥

१. 'आगमिष्यसि' इति ग-पाठः. २. 'जागृत' इति ग-पाठः. ३. 'अल्पेक' इति
ग-पाठः. ४. 'भ्रमर होइ तेन्तिओ' इति क-ग-पाठः. ५. 'रजोविस्तृते' इति ग-घ-
पाठः. ६. 'तावानन्यस्मिन्' इति घ-पाठः.

[कस्य स्मरसीति भणिते को मेऽस्तीति जल्पमानया ।

उद्विन्नरोदनशीलया वयमपि रोदितास्तया ॥]

मानप्रहिला नायिका भयं दर्शयन्ती सखी मानभङ्गाय सरोपमाह—

पाअपडिअं अहव्वे किं दाणिं ण उट्टवेसि भत्तारम् ।

एअं विअ अवसाणं दूरं पि गअस्स पेम्मस्स ॥ ९० ॥

[पादपतितमभव्ये किमिदानीं नोत्थापयसि भर्तारम् ।

एतदेवावसानं दूरमपि गतस्य प्रेम्णः ॥]

अभव्ये इति सप्रणयरोपं संबोधनम् । अगृहीतानुनया द्वेष्या भविष्यतीति भावः ॥

आत्मनो विपरीतरताभिलाष सूचयन्ती नायिका कान्तमह—

तडविणिहिअग्गहत्था वारितरङ्गेहिं घोलिरणिअम्वा ।

साल्खरी पडिविम्बे पुरिसाअन्तिव्व पडिहाइ ॥ ९१ ॥

[तटविनिहिताग्रहस्ता वारितरङ्गैर्घूर्णनशीलनितम्बा ।

शाल्खरी प्रतिबिम्बे पुरुषायमाणेव प्रतिभाति ॥]

शाल्खरी भेकी । प्रतिबिम्बे अर्थात्स्वीये ॥

कुसुम्भवाटिकायां कृतसक्रेता काचिदात्मनश्चौर्यरतगोपनार्थमाह—

सिक्करिअमणिअमुहवेविआइँ धुअहत्थसिञ्जिअव्वाइँ ।

सिक्खन्तु वोडहीओ कुसुम्भ तुम्ह प्पसाएण ॥ ९२ ॥

[सीत्कृतमणितर्मुखवेपितानि धुतहस्तशिञ्जितव्यानि ।

शिर्क्षन्तु कुर्मार्यः कुसुम्भ युष्मत्प्रसादेन ॥]

वोडही कुमारी तरुणी वा । सीत्कृतं सीत्कारः । मणितं रतिकूजितविशेषः । मुखवेपितमधरादिधूननम् । एतानि नखक्षतमुध्याघाताधरखण्डनैरपि भवन्ति कण्टकक्षतेन च भवन्ति । तथा च सीत्कारादयो मम कुसुम्भकण्टकक्षताज्जाता न तु सुरतेनेत्याशयः ॥

१. 'जल्पन्त्या' इति घ-पाठः. २. 'उद्भटं रोदन्या' इति ग-पाठः. ३. 'माणस्स' इति ग-पाठः. ४. 'इदमेव' इति ग-पाठः. ५. 'दूरं गतस्य' इति घ-पाठः. ६. 'मानस्य' इति ग-पाठः. ७. 'मुहपरिवेविआइ' इति ख-ग-पाठः. ८. 'मुखपरिवेपितानि' इति ग-पाठः. ९. 'शिञ्जितानि' इति ग-पाठः. १०. 'श्लिष्यन्तु ग्राम्या' इति ग-पाठः. ११. 'तरुण्यः' इति घ-पाठः. १२. 'युष्माक' इति ग-पाठः.

काप्यात्मनो जारं प्रत्यनुरागातिशयं श्रावयन्ती नितम्बोपालम्भव्याजेनाह —

जेत्तिअमेत्ता रच्छा णिअम्ब कह तेत्तिओ ण जाओसि ।

जं छिप्पइ गुरुअणलज्जिओ सरन्तो वि सो सुहओ ॥ ९३ ॥

[यावत्प्रमाणा रथ्या नितम्ब कथं तावन्न जातोऽसि ।

येन स्पृश्यते गुरुजनलज्जापसृतोऽपि स सुभगः ॥]

तृणलतागृहं संकेतस्थानमिति जारं श्रावयन्ती काप्याह—

मरगअसूईविद्धं व मोत्तिअं पिअइ आअअर्गीओ ।

मोरो पाउसआले तणग्गलगं उअअबिन्दुम् ॥ ९४ ॥

[मरकतसूचीविद्धमिव मौक्तिकं पिबत्यायतग्रीवः ।

मयूरः प्रावृट्काले तृणाग्रलग्नमुदकबिन्दुम् ॥]

अत्र मरकतसूच्या मौक्तिकवेधस्यासंभावितस्योपमया दुष्प्रापनायिकाप्राप्तिं नायकस्य दूती सूचयतीति केचित् ॥

अभिसारिकायाः कृष्णपक्षाभिसारोचित नीलकञ्चुकं श्रावयन्ती दूती नायकमुत्तरलयितुमाह—

अज्जाइ णीलकञ्चुअभरिउव्वरिअं विहाइ थण्वट्टम् ।

जलभरिअजलहरन्तरदरुग्गअं चन्दबिम्ब व्व ॥ ९५ ॥

[आर्याया नीलकञ्चुकभृतोर्वरितं विभाति स्तनपृष्ठम् ।

जलभृतर्जलधरान्तरदरोद्गतं चन्द्रबिम्बमिव ॥]

कञ्चुकं भृत्वा महत्त्वादुर्वरितमित्यर्थः ॥

प्रवासोद्यतस्य पत्युर्गमनाक्षेपाय कापि वसन्तमासस्य पथिकभयहेतुतां दर्शयति—

राअविरुद्धं व कहं पहिओ पहिअस्स साहइ संसङ्कम् ।

जत्तो अम्बाण दलं तत्तो दरणिग्गिअं किं पि ॥ ९६ ॥

१. 'जेण छिविज्जइ गुरुअणलज्जोसरिओ' इति ख पाठः. २. 'यावन्मात्रा' इति ग-पाठः. ३. 'न तावन्मात्रो' इति ग-पाठ. ४. 'यत्' इति ग-पाठः. ५. 'लज्जया-पसरन्' इति ग-पाठः. ६. 'ग्रीवो' इति क-पाठः. ७. 'ईश्वरसुताया' इति ग-पाठः. ८. 'भृतोद्भिद्यमाणं' इति ग-पुस्तके, 'भृतोद्भूत' इति च घ-पुस्तके पाठः. ९. 'जल-धरान्तरादीषदुत्तरं' इति ग-पाठः. १०. 'ससङ्को' इति क-पाठः.

[राजविरुद्धामपि कथां पथिकः पथिकस्य कथयति सशङ्कम् ।

येत आभ्राणां दलं तैत ईषन्निर्गतं किमपि ॥]

दलं पत्रम् । किमप्यङ्कुरः ॥

स्वप्ने प्रियदर्शनेन विरहदुःख कथं न विनोदयसीति प्रतिवेशिनीभिरुक्ता काचिदा-
मनोऽनुरागातिशयं ख्यापयितुमाह—

धण्णा ता महिलाओ जा दइअं सिविणए वि पेच्छन्ति ।

णिह विअ तेण विणा ण एइ का पेच्छए सिविणम् ॥ ९७ ॥

[धन्यास्ता महिला या दयितं स्वप्नेऽपि प्रेक्षन्ते ।

निद्रैव तेन विना नैति का प्रेक्षते स्वप्नम् ॥]

अत्र यूयमधन्या, अहं तु धन्येति व्यज्यते ॥

पूर्वं समृद्धस्य कालवशेन गलितविभवस्य कस्यापि मनःसमाधानाय दूत्यन्या-
पदेशेनाह—

परिरद्धकणअकुण्डलगण्डत्थलमणहरेसु सवणेसु ।

तँत्थ वि समअवसेण अ र्पहिरज्जइ तालवेण्टजुअम् ॥ ९८ ॥

[परिरद्धकनककुण्डलगण्डस्थलर्मनोहरयोः श्रवणयोः ।

तत्रापि समयवशेन [च] परिश्रियते तालवृन्तयुगम् ॥]

तालवृन्त तालपत्रताटङ्कम् ॥

कथमेतादृशे ग्रीष्मे मम प्रिय आगमिष्यतीति चिन्तयन्ती नाधिका सख्याह—

मज्झह्वपत्थिअस्स वि गिम्हे पहिअस्स हरइ संतावम् ।

हिअअट्ठिअजाआमुहमअङ्कजोह्वाजलप्पवहो ॥ ९९ ॥

[मध्याह्नप्रस्थितस्यापि ग्रीष्मे पथिकस्य हरेति संतापम् ।

हृदयस्थितजायामुखमृगाङ्कज्योत्स्नाजलप्रवाहः ॥]

-
१. 'शंसति' इति घ-पाठः. २. 'यावन्त्याभ्राणां दलानि' इति ग-पाठः. ३. 'ता-
वदीषत्' इति ग-पुस्तके, 'ततो दर' इति च घ-पुस्तके पाठः. ४. 'जालो' इति ख-
पाठः. ५. 'पश्यन्ति' इति ग-घ-पाठः. ६. 'कवोलदोलणमण' इति ग-पाठः.
७. 'अण्णअसमअ' इति क-ख-पाठः. ८. 'परिहिज्जइ' इति ख-ग-पाठः. ९. 'परि-
वद्ध' इति ग-पाठः. १०. 'कपोलतरल' इति ग-पाठः. ११. 'मनोहरेषु कर्णेषु' इति
घ-पाठः. १२. 'तयोरपि समय' इति ग-पुस्तके, 'अन्यत्ममयमवसन्न परिखिद्यते
तालवृन्तयुगलम्' इति घ-पुस्तके पाठः. १३. 'तालपत्रयुगम्' इति ग-पाठः. १४. 'ह-
न्ति' इति ग-पाठः. १५. 'हृदयेप्सित' इति ग पाठः.

हृदं विशालम् । भोण्डी सूकरी । यवक्षेत्रप्रस्थिताया अभिसारिकाया निषेधार्थं
दूत्या उक्तिरियमिति केचित् ॥

अभिसारभीतां कामप्यनुकूलयितुं दूती नायकस्य ग्रामप्रधानतां निग्रहानुग्रहक्षमतां
चान्यापदेशेनाह—

हेलाकरग्गअट्टिअजलरिक्कं साअरं पआसन्तो ।

जअइ अगिग्गअवडवग्गिभरिअगगणो गणाहिर्वई ॥ ३ ॥

[हेलाकराग्राकृष्टजलरिक्कं सागरं प्रकाशयन् ।

जयत्यनिग्रहवडवाग्निभृतगगनो गणाधिपतिः ॥

हेलया कराग्रेणाकृष्टं यज्जलं तेन रिक्तम् । जलनिग्रहान्निष्प्रतिबन्धोत्थितेन वडवा-
ग्निना भृत गगन येन सः । गणाधिपतिर्विनायको मण्डलनायकश्च ॥

कोऽपि कामिनीजनानुरञ्जनायात्मनः स्त्रीपरतामशोकपल्लवच्छलेनाह—

एएण च्चिअ कङ्केल्लि तुज्झ तं णत्थि जं ण पज्जत्तम् ।

उवमिज्जइ जं तुह पल्लवेण वरकामिणीहत्थो ॥ ४ ॥

[एतेनैव कङ्केले तव तन्नास्ति यन्न पर्याप्तम् ।

उपमीयते यत्तत्र पल्लवेन वरकामिनीहस्तः ॥]

कट्टेळिरशोकः ॥

पूर्वगाथार्थमेव २. ज्ञयन्तरेणाह—

रसिअ विअट्ट विलासिअ समअण्णअ सच्चअं असोओ सि ।

वरजुअइचलणं कम्मलाहओ वि जं विअससि सएहम् ॥ ५ ॥

[रसिक विदग्ध विलासिन्समयज्ञ सत्यमशोकोऽसि ।

वरयुवतिचरणकैमलाहतोऽपि यद्विकससि सतृष्णम् ॥]

समय आचारः । नायिकाचरणघातः प्रसाद एव मन्तव्य इति नायकं शिक्षयितुं कु-
ट्टन्या उक्तिरियमिति केचित् ॥

दौ.साधिकाभिशास्तस्य आरस्य परिहासकौशलं दूती तत्प्रियामानन्दयितुमाह—

वल्लिणो वाआबन्धे चोज्जं णिउअत्तणं च पअडन्तो ।

सुरसत्थकआणन्दो वामणरूवो हरी जअइ ॥ ६ ॥

[वलेर्वाचाबन्धे आश्चर्यं निपुणत्वं च प्रकटयन् ।

सुरसार्थकृतानन्दो वामनरूपो हरिर्जयति ॥]

प्रावृषमासन्नां मत्वा प्रियां दिदृक्षवोऽगणितग्रीष्ममध्यदिनदिनेशसंतापाः पथिकाः
पन्थानमतिवाहयन्तीत्यर्थः ॥

असमयप्रार्थितया कान्तया क्षिप्तं नायकं दूती सान्त्वयितुमाह—

भण को ण रुस्सइ जणो पत्थिज्जत्तो अप्सकालम्मि ।

रतिवाअडा रुअन्तं पिअं वि पुत्तं सवइ माआ ॥ १०० ॥

[भण को न रुष्यति जनः प्रार्थ्यमानोऽदेशकालं ।

रतिव्यापृता रुदन्तं प्रियमपि पुत्रं शपते माता ॥]

एत्थ चउत्थं विरमइ गाहाण सअं सहावरमणिज्जम् ।

सोरुण जं ण लग्गइ हिअए महुरत्तणेण अमअं पि ॥

[अत्र चतुर्थे विरमति गाथानां शतं स्वभावरमणीयम् ।

श्रुत्वा यत्र लगति हृदये मधुरत्वेनामृतमपि ॥]

पञ्चमं शतकम् ।

प्रणामकाङ्क्षिणी नायकानुरक्त स्वहृदयमाह—

डज्झसि डज्झसु कट्टसि कट्टसु अह फुडसि हिअअ ता फुडसु ।

तह वि परिसेसिओ च्चिअ सोहुं मए गलिअसब्भावो ॥ १ ॥

[दहसे दहस्व कथ्यसे कथ्यस्व अथ स्फुटसि हृदय तत्स्फुट ।

तथापि परिशेषित एव स खलु मया गलितसद्भावः ॥]

परिशेषितः परिच्छिन्न । निर्णीत इत्यर्थः ।

यवक्षेत्रं सकेतस्थानमिति जार श्रावयन्ती काचिदन्येषा भयप्रदर्शनार्थमाह—

दट्टूण रुन्दतुण्डंगणिग्गअं णिअसुअस्स दाहग्गम् ।

भोण्डी विणावि कज्जेण गामणिअडे जवे चरइ ॥ २ ॥

[दट्ट्वा विशालतुण्डाग्रनिर्गतं निजसुतस्य दंष्ट्राग्रम् ।

सूरुरी विनापि कौर्येण ग्रामनिकटे यवांश्चरति ॥]

१. 'वाउला' इति क-पाठः. २. 'वद' इति ग-पाठः. ३. 'अदेशकालयोरपि' इति ग-पाठः. ४. 'शपति' इति ग-घ-पाठः. ५. इयं गाथा ग पुस्तके नास्ति. ६. 'फुट' ग. ७. 'परिसेसिअव्वो' ग. ८. 'अज्ज मए' ग. ९. 'परिशेषितव्योऽथ मया' ग. १०. 'तुण्डतुण्डग' ग. ११. 'तुण्डतुण्डाग्र' ग, 'वृहत्तुण्डाग्र' घ. १२. 'कार्य' ग.

बलेदैत्यविशेषस्य, पक्षे बलिनो बलवतः । वाचा वचनेन बन्धो नियमनं निरु-
त्तरी हरणं च । चोद्यमाश्चर्यम् । 'चोद्यं स्यादद्भुते प्रश्ने चोदनार्हे तु वाच्यवत्' इति मे-
दिनीकोषात् 'चोद्यं' इत्येव मूलपाठः । निपुणत्वमिङ्गितगुप्तिः । सुरसार्थो देवसमूहः शो-
भनरसवदर्थकं वचनं च । वामनः खर्वाकारो न्यगभावापन्नश्च । हरिर्विष्णुः परदाराप-
हारी चेति यथायोगं योज्यम् ॥

कापि प्रियचित्तानुरजनार्थं स्त्रीणां मृतेऽपि पत्यावनुरागातिशयं प्रतिपादयितुमाह—

विज्ञाविज्जइ जलणो गहवइधूआइ वित्थअसिहो वि ।

अणुमरणघणालिङ्गणपिअअमसुहसिज्जिरङ्गीए ॥ ७ ॥

[निर्वाप्यते ज्वलनो गृहपतिदुहित्रा विस्तृतशिखोऽपि ।

अनुमरणघनालिङ्गनप्रियतमसुखस्वेदशीलाङ्ग्या ॥]

प्राकृते पूर्वनिपातानियमात्प्रियतमघनालिङ्गनेति योज्यम् ॥

कापि जारचित्तहरणार्थं पूर्वोक्ताभिप्रायिका गाथामाह—

जारमसाणसमुवभवभूइसुहप्फंससिज्जिरङ्गीए ।

ण समप्पइ णवकावालिआइ उद्धूलणारम्भो ॥ ८ ॥

[जारश्मशानसगुद्भवभूतिसुखस्पर्शस्वेदशीलाङ्ग्याः ।

न समाप्यते नवकापालिक्या उद्धूलनारम्भः ॥]

नवकापालिक्या गृहीताभिनवकापालिकव्रतायाः ।

तत्तत्कारणसानिध्यादेकस्मिन्ननेके भावा भवन्तीति निदर्शयन्कोऽपि सहचरमाह—

एक्को पड्डुअइ थणो बीओ पुलएइ णहमुहालिहिओ ।

पुत्तस्स पिअअमस्स अ मज्झणिसण्णाएँ घरणीए ॥ ९ ॥

[एकः प्रस्रौति स्तनो द्वितीयः पुँलकितो भवति नखमुखालिखितः ।

पुत्रस्य प्रियतमस्य च मध्यनिषण्णाया गृहिण्याः ॥]

जारं त्रयनवसरप्रकटनपरं दूत्या वचनमिदमिति केचित् ॥

ग्रामणीपुत्र्या साभिलाषः कोऽपि प्रहसनमाह—

एत्ताइच्चिअ मोहं जणेइ बालत्तणे वि वट्टन्ती ।

गामणिधूआ विसँकन्दलिअव वड्डीओँ काहिइ अणत्थम् ॥ १० ॥

१ 'विज्ञा विज्जइ' ख. २. 'लिङ्गित' ग. ३. 'विज्ञा निर्वाप्यते' ख, 'विभ्याप्यते'
ग, 'विनिर्वाप्यते' घ. ४. 'लिङ्गितप्रियतमसुखस्विद्यदङ्ग्याः.' ग. ५. 'णवकावालिणीए'
ख. ६. 'पुलकति' घ. ७. 'विसलअव्व' ग.

[एतावत्येव मोहं जनयति बालत्वेऽपि वर्तमाना ।
ग्रामणीर्दुहिता विषकन्दलीव वर्धिता करिष्यत्यनर्थम् ॥]

त्रैविक्रमबन्धरतेन प्रियेण प्रीणिता कापि हरेरूर्ध्वगत चरणं नमस्यन्त्यन्यापदेशे-
नाह—

अपहुप्पन्तं महिमण्डलम्मि णहसंठिअं चिरं हरिणो ।
तारापुष्पअरश्चिअं व तइअं पअं णमह ॥ ११ ॥

[अप्रभवन्महीमण्डले नभःसंस्थितं चिरं हरेः ।
तारापुष्पप्रकाराश्चितमिव तृतीयं पदं नमत ॥]

अप्रभवदसंमात् । हरिर्विष्णुः परदारापहारी च । तारानेत्रमध्य नक्षत्रं च ।
कस्याचिदुत्कण्ठिताया सखीभिरुक्तं सुप्यतामिति सा तास्नाह—

सुप्पउ तइओ वि गओ जामोत्ति सहीओँ कीस मं भणह ।
सेहालिआणँ गन्धो ण देइ सोत्तुं सुअह तुह्णे ॥ १२ ॥

[सुप्यतां तृतीयोऽपि गतो याम इति सख्यः किमिति मां भणथ ।
शेफालिकानां गन्धो न ददाति स्वसुं स्वपत यूयम् ॥]

सखि, कथं तमेवं निरनुक्रोशं स्मरसीति सख्योक्ता विरहोत्कण्ठिता तामाह—

कहँ सो ण संभरिज्जइ जो मे तह संठिआइँ अङ्गाइँ ।
णिव्वत्तिए वि सुरए णिज्जाअइ सुरअरसिओव्व ॥ १३ ॥

[कथं स न संस्मर्यते यो मम तथासंस्थितान्यङ्गानि ।
निवर्तितेऽपि सुरते निध्यायति सुरतरसिक इव ॥]

निध्यायति पश्यति । तथासंस्थितानीत्यनेनानुभवैकगोचरोऽवस्थाविशेषो द्योत्यते ।
कापि जारं प्रति संकेतस्थानमाह—

सुक्खन्तवहलकदमधम्मविसूरन्तकमठपाठीणम् ।
दिट्ठं अदिट्ठउव्वं कालेण तलं तडाअस्स ॥ १४ ॥

[शुष्यद्बहलकर्दमधर्मखिद्यमानकमठपाठीनम् ।
दृष्टमदृष्टपूर्वं कालेन तल तडागस्य ॥]

कर्दमान्तस्य पाठीनान्तेन कर्मधारयः । तथा च पूर्वं जलाद्याहरणार्थं लोकानां ग-

१. 'सुता विषलतेव वर्धमाना' ग. २. 'सुप्यतु' ग. ३. 'विशीर्यमाण' ग.
'खिद्यत्' घ.

तांगितमासीत्, इदानीं तदभावान्निष्प्रत्यूहं विहरेति भावः । कस्यचिदतिसंपन्नस्य पश्चाद्-
रिद्रीभूतस्यान्यापदेशेन काचिदनुशोचनमनया गाथया करोतीति केचित् । अहं सकेत-
स्थानं गता न लमिति जार प्रत्युक्तिर्वा । अतृप्ता सुरतश्रान्त कान्तमुत्साहयितुमन्य-
मनस्कं करोतीति वा ॥

कापि सपरिहास कामपि चाटुवादमाह—

चोरिअरअसद्धालुइ मा पुत्ति ँभमसु अन्धआरम्मि ।

अहिअअरं लक्खिज्जसि तमभरिए दीवसीहव्व ॥ १५ ॥

[चौर्यरतश्रद्धाशीले मा पुत्रि भ्रमान्धकारे ।

अधिकतरं लक्ष्यसे तमोभृते दीपशिखेव ॥]

तमोभृते प्रदेश इति शेषः ॥

सकेतस्थानदाहादसती दुःखितेति कापि सहचरमाह—

वाहित्ता पडिवअणं ण देइ रूसेइ एक्कमेक्कस्स ।

असई कज्जेण विणा पइप्पमाणे णईकच्छे ॥ १६ ॥

[व्याहृता प्रतिवचन न ददाति रुष्यत्येकैकस्य ।

अमती कार्येण विना प्रदीप्यमाने नदीकच्छे ॥]

प्रदीप्यमाने दह्यमाने ॥

त्व कुलटासीति प्रतिवेशिन्योक्ता कापि तामाह—

आम असइ ह्य ओसर पइव्वए ण तुह मइलिअं गोत्तम् ।

किं उण जणस्स जाअव्व चैन्दिलं ता ण कामेमो ॥ १७ ॥

[आम असत्यो वयमपसर पतिव्रते न तव मलिनितं गोत्रम् ।

किं पुनर्जनस्य जायेव नापितं तावन्न कामयामहे ॥]

आमेति सेष्यानुमता । पतिव्रते इति सोपालम्भं संबोधनम् । जनस्य जायेव लमि-
वेत्यर्थः । अयं भावः—भवामो वयं कुलटाः, किं तूत्तमनायकासक्ताः । त्व तु त्वमिव
नापितासक्तेति । अथ च तव गोत्रं नाम न मलिनितम्, किं तु कुलमेवेति ॥

काप्यात्मनोऽनुरागातिशय प्रतिपादयन्ती नायकमाह—

णिहं लहन्ति कहिअं सुणन्ति खलिअक्खरं ण जम्पन्ति ।

जाहिं ण दिट्ठो सि तुमं ताओ च्चिअ सुहअ सुहिआओ ॥ १८ ॥—

[निद्रां लभन्ते कथितं शृण्वन्ति स्वलिताक्षरं न जल्पन्ति ।

याभिर्न दृष्टोऽसि त्वं ता एव सुभग सुखिताः ॥]

वयं तु त्वद्दर्शनाज्जातमन्मथास्तद्विपरीता जाता इति भावः ॥

दूती कस्याश्चिदनुरागातिशयं प्रतिपादयन्ती नायकमाह—

बालअ तुमाइ दिण्णं कण्णे काऊण वोरसंघाडिम् ।

लँज्जालुइणी वि वहु घरं गआ गामरच्छाए ॥ १९ ॥

[बालक त्वया दत्तां कर्णे कृत्वा बैदरसंघाटीम् ।

लँज्जालुरपि वधूर्गृहं गता ग्रामरथ्यया ॥]

वोर बदरीफलम् । संघाटी युगलम् । एतेनासारं यत्किंचिदपि त्वया दत्तं धारयतीति रागातिशयः सूचितः ॥

काचित्प्रियं प्रति गलितमाना पश्चात्तापेन सखीष्विदमाह—

अहं सो विलक्खहिअओ मए अ हव्वाएँ अगहिआणुणओ ।

परवज्जणच्चरीहिं तुहोहिं उवेक्खिअओ णेन्तो ॥ २० ॥

[अथ स विलक्ष्यहृदयो मया अभव्यया अगृहीतानुनयः ।

परवाद्यनर्तनशीलाभिर्युष्माभिरुपेक्षितो निर्यन् ॥]

अथेति प्रश्ने । परस्य वाद्यपूर्वकं यन्नर्तनं कुमार्गप्रापणं मानशिक्षणरूपं तच्छ्रीलाभिः । निर्यन् गच्छन् । युष्माभिर्मनशिक्षावसरे मया यदाशङ्कितं तदिदं जातमित्याशयः ॥

विदग्ध कान्तमलभमाना कापि सखीमाह—

दीसन्तो णअणसुहो णिवुइजणओ करेहिं वि छिवन्तो ।

अव्भत्थिओ ण लव्भइ चन्दो व्व पिओ कलाणिलओ ॥ २१ ॥

[दृश्यमानो नयनसुखो निर्वृतिजननः कराभ्यां [अपि] स्पृशन् ।

अभ्यर्थितो न लभ्यते चन्द्र इव प्रियः कलानिलयः ॥]

निर्वृतिजननः संतापहरः । कराभ्यां हस्ताभ्याम्, पक्षे करैः किरणैः । अभ्यर्थितः प्रार्थितः, पक्षे अभ्यर्थितो गगनस्थितः । कलाश्चतुःषष्टिः, पक्षे षोडश ॥

कापि कालस्य सर्वकपतां प्रतिपादयन्ती जारं प्रति सकेतस्थानमङ्गं श्रावयति—

जे णीलभमरभग्गोछआ आसि णइअडुच्छङ्गे ।

कालेण वज्जुला पिअवअस्स ते थण्णुआ जाआ ॥ २२ ॥

१. 'लज्जलुश्चि अजा' ग. २. 'बदरसहतिम्' ग, 'बदरसंघातम्' घ. ३. 'लज्जालुरपीश्वरसुता' ग. ४. 'जेन्तो' ग. ५. 'अप्युपेक्षितो गच्छन्' ग. ६. 'करैरपि' ग, 'करैः' घ. ७. 'पिअवतस' ग.

[ये नीलभ्रमरभरभग्गुच्छका आसन्नदीतटोत्सङ्गे ।
कालेन वञ्चुलाः प्रियवयस्य ते स्थाणवो जाताः ॥]

स्थाणवो निष्पन्नशाखाः ॥

अस्थिरस्नेह नायक प्रत्युद्विग्ना कापि दृढप्रेमप्रियप्राप्तीच्छाप्रकाशनच्छलेन कस्याप्य
वकाशदानायाह—

खणभङ्गुरेण पेम्मेण माउआ दुम्मिअह्म एत्ताहे ।
सिविणअणिहिलम्भेण व दिट्ठपणट्टेण लोअम्मि ॥ २३ ॥
[क्षणभङ्गुरेण प्रेम्णा मातृष्वसः दूनाः स्म इदानीम् ।
स्वप्ननिधिलम्भेनेव दृष्टप्रनष्टेन लोके ॥]

काप्यचिरेणैव खण्डितप्रणया धूर्त कान्तमन्यापदेशेनाह—

चावो सहावसरलं विच्छिवइ सरं गुणम्मि वि पडन्तम् ।
वङ्कस्स उज्जुअस्स अ संबन्धो किं चिरं होइ ॥ २४ ॥
[चापः स्वभावसरलं विक्षिपति शर गुणोऽपि पतन्तम् ।
वक्रस्य ऋजुकस्य च संबन्धः किं चिर भवति ॥]

सरलो ऋजुः, पक्षे निष्कपटः गुणो मौर्वी । पक्षे सौन्दर्यादिः । 'अथ स्त्रियौ । य
श्चापौ' इत्यमरः ॥

कस्याश्चित्तनयोस्त्रिवल्याश्चोत्कर्ष साभिलाषः कोऽपि वर्णयति ।—

पढमं वामणविहिणा पच्छा हु कओ विअम्भमाणेण ।
थणजुअलेण ईमीए महुमहणेण व्व वलिवन्धो ॥ २५ ॥
[प्रथमं वामनविधिना पश्चात्खलु कृतो विजृम्भमाणेन ।
स्तनयुगलेनैतस्या मधुमथनेनेव वलिवन्धः ॥]

वामनः खल्पः खर्वश्च । वलिस्त्रिवलिरसुरभेदश्च । ववयोरभेदः ॥

दुष्टो न केवल साधूनामपकारमात्रं करोति, किं त्वसाधूनामुपकारमपीति कोऽ
न्यापदेशेनाह—

मालइकुसुमाई कुँलुच्चिउण मा जाणि णिवुओ सिसिरो ।
काअव्वा अज्जवि णिग्गुणाणँ कुन्दाणँ वि समद्धी ॥ २६ ॥

१. 'अशोकाः प्रियावतसस्थानकाः' ग. २. 'विघटयति' घ. ३. 'गुणे वर्तमान
ग, 'गुणे निपतन्तम्' घ. ४. 'मज्जस्स' ग. ५. 'मध्यस्य' ग, 'तस्याः' घ. ६.
धुक्किउण' क, 'रुण्णकओण' ग.

[अन्यः कोऽपि स्वभावो मन्मथशिखिनो हला हताशस्य ।

निर्वाति नीरसानां हृदये सरसानां झटिति प्रज्वलति ॥]

हला सखि । हताशस्येत्युद्वेगमूचकम् । नीरसानामनुरागरहितानां शुष्काणा च ।
सरसानां रागिणामार्द्राणां च ॥

कापि मानग्रहिलायाः सख्याः खण्डितं सौभाग्यं मातुलान्या सविस्मयमाह—

तह तस्स माणपरिवड्ढिअस्स चिरपणअबद्धमूलस्स ।

मामि पडन्तस्स सुओ सद्दो वि ण पेम्मरुक्खस्स ॥ ३१ ॥

[तथा तस्य मानपरिवर्धितस्य चिरप्रणयवद्धमूलस्य ।

मातुलानि पततः श्रुतः शब्दोऽपि न प्रेमवृक्षस्य ॥]

मानेन सत्कारेण परिवर्धितस्य । चिरप्रणय एव वद्धं मूलमस्य । बहुवल्लभस्य लक्षा-
नुरागस्य कल्पचित्पत्न्या इयमुक्तिरिति केचित् ॥

अगृहीतानुनया सखीं सखीं सखेदमाह—

पाअपडिओ ण गणिओ पिअं भणन्तो वि अप्पिअं भणिओ ।

वच्चन्तो वि ण रुद्धो भण कस्स कए कओ माणो ॥ ३२ ॥

[पादपतितो न गणितः प्रियं मणन्नप्यप्रियं भणितः ।

व्रजन्नपि न रुद्धो भण कस्य कृते कृतो मानः ॥]

पादपतितोऽर्थात्प्रिय इति द्रष्टव्यम् । पादपतनादिकमेव मानस्य फलम् । तत्तु जात-
मेवेत्यर्थः । अथवा कस्य कृते कं युवानं रमयितुं त्वया मानच्छलेनावसरः संपादित इति
सोपालम्भं सख्या वचनम् ॥

सपत्न्या दुश्चरितं सूचयन्ती कापि सोपालम्भमाह—

पुसइ खणं धुवइ खणं पप्फोडइ तक्खणं अआणन्ती ।

सुद्धवहू थणवट्टे दिण्णं दइएण णहरवअम् ॥ ३३ ॥

[प्रोञ्छति क्षणं क्षालयति क्षणं प्रस्फोटयति तैत्क्षणमजानती ।

सुगधवधूः स्तनपेदे दत्तं दयितेन नखरपदम् ॥]

नायकमुत्कण्ठयितुं नायिकाया नवयौवनं प्रतिपादयन्त्या दूत्या इयमुक्तिर्वा ॥

आत्मनः संकेतस्थानगमनं जारं प्रति श्रावयन्ती कापि शरद्वर्णनमाह—

वौसारत्ते उण्णअपओहरे जोव्वणे व्व वोलीणे ।

पढेक्ककासकुसुमं दीसइ पल्लिअं व धरणीए ॥ ३४ ॥

१. 'क्लेशजनकस्य' ग. २. 'णक्खवअम्' क. २. 'क्षणमजानन्ती' ख. ४. 'पट्टे'
घ. ५. 'वरिसारत्ते' क.

[मालतीकुसुमानि दग्ध्वा मा जानीहि निर्वृतः शिशिरः ।

कर्तव्याद्यापि निर्गुणाना कुन्दानामपि समृद्धिः ॥]

न केवलं तव दौर्भाग्यं मया कृतं किं तु त्वत्सपत्नीना सौभाग्यमपि विधेयमित्यग्नि-
दिनी नायिका प्रति कुपितनायकेन ध्वनितमिति केचित् ॥

कोऽपि गलितयौवनायाः स्तनावालोक्य सपरिहासमाह—

तुङ्गाणँ विसेसनिरन्तराणँ [सरस]वगलद्धसोहाणम् ।

कककज्जाणँ भडाणँ व थणाणँ पडणँ वि रमणिज्जम् ॥ २७ ॥

[तुङ्गयोर्विशेषनिरन्तरयोः [सरस]व्रणलब्धशोभयोः ।

कृतकार्ययोर्भटयोरिव स्तनयोः पतनमपि रमणीयम् ॥]

तुङ्गयोरुन्नतयोर्मनोन्नतयोश्च । विशेषेण निरन्तरयोरन्योन्यलग्नयोः परस्परनिर्वि-
योश्च ॥

कोऽपि कस्याश्चिद्युवत्याः पीनोन्नतौ स्तनौ वर्णयति—

परिमलणसुहा गुरुआ अलद्धविवरा सलक्खणाहरणा ।

थणआ कव्वालाव व्व कस्स हिअए ण लग्गन्ति ॥ २८ ॥

[परिमलनसुखा गुरुका अलब्धविवराः सलक्षणाभरणाः ।

स्तनकाः काव्यालापा इव कस्य हृदये न लगन्ति ॥

परिमलनं मर्दनं विचारश्च । गुरुकाः पीनोन्नता अर्थगुरुकाश्च । विवरं रन्ध्रं दृपणं
। लक्षणं श्रीफल, दिसादृश्यं पाणिन्यादिप्रोक्तं च । आभरणं हारादिकमुपमानुप्रा-
दिकं च ॥

उपादेयोऽर्थ. कदाचिदनुपादेयता यातीति निदर्शयन्कश्चिदाह—

खिप्पइ हारो थणमण्डलाहि तरुणीअ रमणपरिरम्भे ।

अच्चिअगुणा वि गुणिनो लहन्ति लहुअत्तणं काले ॥ २९ ॥

[क्षिप्यते हारः स्तनमण्डलात्तरुणीभी रमणपरिरम्भे ।

अर्चितगुणा अपि गुणिनो लभन्ते लघुत्वं कालेन ॥]

गुणः सूत्रं शौर्यादिकं च ॥

काव्यात्मनः कस्मिन्नप्यनुरागं मन्मथव्यथां च सूचयन्ती सखीमाह—

अण्णो को वि सुहावो मम्महसिहिणो हला हआसस्स ।

विज्झाइ णीरसाणं हिअए सरसाणँ झत्ति पज्जलइ ॥ ३० ॥

१. 'म्लानानि कृत्वा' ग, 'खल्लञ्जीयमानानीव निर्वृतः' घ. २. घ-पुस्तके तुङ्गाना-
भत्यादि बहुवचन सर्वत्र वर्तते. ३. 'छिप्पइ' क.

[वर्षाकाले उन्नतपयोधरे यौवन इव व्यतिक्रान्ते ।

प्रथमैककाशकुसुमं दृश्यते पलितमिव धरण्याः ॥

उन्नतपयोधरे उन्नतमेधे । पक्षे उन्नतस्तने । अहं ता काशभूर्मिं गता त्व तु नागत भावः । यद्वा न केवलं मामेव वार्धकं ग्रसते पश्य धरण्या अपीमामवस्थामिति तं विटं प्रति जरद्वेश्यायाः कस्याश्चिदियमुक्तिः ॥

श्रवासोद्यतस्य प्रियस्य गमननिषेधाय कापि वर्षाकालं वर्णयति—

कथ गअं रइविम्बं कथ पणट्टाओ चन्दताराओ ।

गअणे वलाअपँन्ति कालो होरं व कट्टेइ ॥ ३५ ॥

[कुत्र गतं रविबिम्बं कुत्र प्रणटाश्चन्द्रतारकाः ।

गगने बलाकापङ्क्तिं कालो होरामिवाकर्षति ॥]

होरा कठिनीरेखा । अन्योऽपि ज्योतिर्विस्मूर्यादिग्रहप्रतिसाधनार्थं कठिनीरेखामा-
तीत्यर्थः । 'होरा लग्नेऽपि राश्यर्धे रेखाशास्त्रभिदोरपि' इति मेदिनी ॥
सशङ्कं जारं निःशङ्कं कर्तुं काचिदाह—

अविरलपडन्तणवजलधारारज्जुघडिअं पअत्तेण ।

अपहुत्तो उक्खेतुं रसइ व मेहो महिं उअह ॥ ३६ ॥

[अविरलपतन्नवजलधारारज्जुघटितां प्रयत्नेन ।

अप्रभवन्नृत्क्षेप्तुं रसतीव मेघो महीं पश्यत ॥]

अविरल पतन्त्यो नवजलधारा एव रज्जवस्ताभिर्घटिता बद्धां महींमुत्क्षेप्तुमप्रभवन्न श-
न्मेघो रसतीव शब्दायत इव । अतिवृष्टौ जलप्रचाराभावान्निःशङ्कं रमस्वेति भावः ॥
कापि कान्तानयनाय सखी त्वरयितुं हृदयोपालम्भव्याजेनात्मपीडां श्रावयति—

ओ हिअअ ओहिदिअहं तइआ पडिवज्जिऊण दइअस्स ।

अत्थेक्काउल वीसम्भघाइ किं तइ समारद्धम् ॥ ३७ ॥

[हे^२ हृदय अवधिदिवसं तदा प्रतिपद्य दयितस्य ।

अकस्मादाकुल विसम्भघातिन् किं त्वया समारब्धम् ॥]

ओ इति दुःखसूचनपूर्वकं संबोधने । प्रतिपद्याङ्गीकृत्य ॥

रतप्रवृत्तजारभग्नवल्याया. सपत्न्याश्चारित्रखण्डनं प्रकाशयन्ती काचिदाह—

जो वि ण आणइ तस्स वि कहेइ भग्गाइँ तेण वलआइँ ।

अइउज्जुआ वराइँ अह व पिओ से हआसाए ॥ ३८ ॥

[योऽपि न जानाति तस्यापि कथयति भ्रान्ति तेन बलयानि ।

अतिक्रजुका वराकी अथवा प्रियस्तस्या हताशायाः ॥]

बलयानीदमन्तर इतीति शेषः । अतिक्रजुका अप्रकाशनीयार्थप्रकाशनात् । अथवेति मया भ्रम नि बलयानीति जरोऽपि वदतीति भावः ॥

योऽपि कस्याश्चिन्नावर्ण्यं वर्णयन्नात्मनश्चुम्बनाभिलाषं प्रकाशयति—

सामाह गरुअजोव्वणविसेसभरिए कवोलमूलम्मि ।

पिज्जइ अहोमुहेण व कण्णवअंसेण लावण्णम् ॥ ३९ ॥

[श्यामाया गुरुकयौवनविशेषभृते कपोलमूले ।

पीयतेऽधोमुखेनेव कर्णावतंसेन लावण्यम् ॥

श्यामाया उत्तमनायिकायाः । यौवनविशेषेण भृते मासलिते ॥

अलामत्रत्या वाह्यमसंवेदयन्त्याः कस्याश्चिद्दृत्तं कापि सखीशिक्षार्थमाह—

सेडह्मिअसव्वङ्गी गोत्तग्गहणेण तस्स सुहअस्स ।

दुइं पट्टाएन्ती तस्सेअ घरङ्गणं पत्ता ॥ ४० ॥

[स्वेदाद्रीकृतसर्वाङ्गी गोत्रग्रहणेन तस्य सुभगस्य ।

दृती प्रस्थापयन्ती (संदिशन्ती वा) तस्यैव गृहाङ्गणं प्राप्ता ॥]

कापि कुमुमशरनमस्कारच्छलेनात्मनो दुःसहां विरहवेदानां प्रकाशयन्ती कान्तानय-
नाय सखीजन त्वरयितुमाह—

जम्मन्तरे वि चलणं जीएण खुं मअण तुज्ज अच्चिस्सम् ।

जइ तं पि तेण बाणेण विज्जसे जेण हँ विज्जा ॥ ४१ ॥

[जन्मान्तरेऽपि चरणौ जीवेन खलु मदन तवार्चयिष्यामि ।

यदि तमपि तेन वाणेन विध्यसि येनाहं विद्धा ॥]

तमपि कान्तमपि ॥

कचिदतिवालायां रतोन्मुखमिद्धितेनाकलय्य प्रतिषेद्धुमुत्फुल्लकरणविशेषं शिक्षयितुं वा
विदग्धवनिता कचिदन्यापदेशेनाह—

णिअवक्खारोविअदेहभारणिउणं रसं लिहन्तेण ।

विअसाविऊण पिज्जइ मालइकलिआ महुअरेण ॥ ४२ ॥

१. 'स्वेदादित' ग. २. 'जम्मन्तरे तुह चलणकमल जीवेण मअण' ग. ३. 'खु' श्व-पुस्तके नास्ति. ४. 'जन्मान्तरे तव चरणकमलं जीवेन मदन' ग. ५. 'चरणं' घ. ६. 'विध्यसे' ग.

[निजपक्षारोपितदेहभारनिपुणं रसं लभमानेन ।

विकास्य पीयते मालतीकलिका मधुकरेण ॥]

यद्वा त्वामपीडयन्नेवासौ रमयिष्यतीति नववधूमाश्वसयितुं नायकस्य नववधूसंभोग-
कौशलमन्यापदेशेन प्रतिपादयन्त्या दूत्या इयमुक्तिः ॥

चिरविरहिणीं युवतीं सखी समाश्वसयितुमाह—

कुरुणाहो त्विअ पहिओ दूमिज्जइ माहवस्स मिलिण्ण ।

भीमेण जहिछिआए दाहिणवाएण छिप्पन्तो ॥ ४३ ॥

[कुरुनाथ इव पथिको दूयते माधवस्य मिलितेन।

भीमेन यथेच्छया दक्षिणवातेन स्पृश्यमानः ॥]

कुरुनाथो दुर्योधन । माधवस्य कृष्णस्य वैशाखस्य च । भीमेन भीमसेनेन भयान-
केन च । दक्षिणवातेन मलयानिलेन, पक्षे दक्षिणपादेन । वसन्तवातभयादचिरादेवा-
गमिष्यति ते प्रिय इति भावः । यद्वा आसन्ने वसन्ते कान्तस्य प्रवासनिषेधार्थं नायि-
काया इयमुक्तिः ॥

अज्ञातयौवनया जायया सह रममाण कापि सानुरागपरिहासमन्यापदेशेनाह—

जाव ण कोसविकासं पावइ ईसीस मालईकलिआ ।

मअरन्दपाणलोहिल्ल भमर तावच्चिअ मलेसि ॥ ४४ ॥

[यावन्न कोषविकासं प्राप्नोतीर्षन्मालतीकलिका ।

मकरन्दपानलोर्भयुक्तं अमरं तावदेव मर्दयसि ॥]

कोष कुञ्जलः, पक्षे कुञ्जलाकारं वराङ्गम् । मकरन्दः पुष्परसः, पक्षे रतिसुखम् ।
अयमाशयः—दुर्विदग्धः खल्वसि यस्त्वमस्मद्विधं युवतिजनविहायास्थाने क्लिश्यसीति ।
यद्वा—अस्यामेव दशायास्त्रियः सुखावहा भवन्ति तस्मान्मर्दयन्मा भेष्यसीति सखीव-
चनमेतत् ॥

कापि मन्दस्नेहं जारमनुकूलयितुं दुष्करस्नेहचर्चामाह—

अकअण्णुअ तुज्ज कए पाउसराईसु जं भए खुण्णम् ।

उप्पेक्खामि अलज्जिर अज्ज वि तं गामचिक्खिल्लम् ॥ ४५ ॥

[अकृतज्ञं तव कृते प्रावृद्धात्रिषु यो मया क्षुण्णः ।

उत्प्रेक्ष्याम्यलज्जशीलं अद्यापि तं ग्रामपङ्कम् ॥]

१. 'लिहता' ग-घ. २. 'दुम्मिज्जइ' ग. ३. 'दुर्मनस्कः क्रियते' ग. ४. 'यद-
च्छया' ग-घ. ५. 'दक्षिणपवनेन' ग. ६. 'स्पृशन्' ग. ७. 'मनागपि' ग. ८. 'लोभिष्ठ'
ग 'लुब्ध' घ. ९. 'उत्प्रेक्षे' ग-घ.

उपेक्षामीत्योन्प्रेक्षे स्वरामीति वार्थः । त्वन्निमित्तं मया बहुतरं दुःखमनुभू
मिति मा प्रन्युदासीनोऽसीति भावः ॥

'समीनरते सुगधवधुप्ररोचनार्थं नागरिकः कस्याश्चित्पुरुषायितं वर्णयति—

गृह्ण गलन्तकेशखलन्तकुण्डलललन्तहारलला ।

अद्भुत्पद्मा विजाहरि व्व पुरुसाहरी बाला ॥ ४६ ॥

[गजते गलत्केशखलत्कुण्डललललद्धारलता ।

अर्धोत्पतिना विद्याधरीव पुंरुषायिता बाला ॥]

'उद्भुत्पद्मा' इति पाठे ऊर्ध्वोत्पतितेत्यर्थः ॥

अन्नागमं निरतिशयानन्दनिधिमपि भक्तानुग्रहाय गृहीतलीलाविग्रहं लम्बितजा-
भाय श्रीकृष्ण सौभाग्यगर्विता बल्लवी काचिदाह—

जइ भमसि भमसु एमेअ कल्ल सोहग्गगठ्विरो गोठ्ठे ।

महिल्लाणं दोसगुणे विचारअइउं जइ खमो सि ॥ ४७ ॥

[यदि भ्रमसि भ्रम एवमेव कृष्ण सौभाग्यगर्वितो गोष्ठे ।

महिलानां दोषगुणौ विचारयितुं यदि क्षमोऽसि ॥]

समदोषी वदन्ना दुर्लभा त्वयेति भावः ॥

नानन्याः सखी तत्कान्तमनुनयपराङ्मुखमन्यापदेशेनाह—

संज्ञाममए जलपूरिअञ्जलिं विहडिअक्कवामअरम् ।

गोरीअ कोसपाणुज्जअं व पमहादिवं णमह ॥ ४८ ॥

[मंथ्याममये जलपूरिताञ्जलिं विघटितैकवामकरम् ।

गौर्यै कोषपानोद्यतमिव प्रमथाधिपं नमत ॥]

विघटितोऽर्धाङ्गैर्यो एको वाम. करो यस्य । जातपत्न्यन्तरशङ्काया गौर्याः प्रन्यायि
नेपमानाज्य दिव्यं शंभुरपि करोतीति त्वयापीयमवश्यमनुनेयेति भावः ॥

सौख्यं सौभाग्यव्योपादेयता प्रतिपादयन्ती सखीमाह—

गामणिणो सव्वासु वि पिआसु अणुमरणगहिअवेसासु ।

मम्मच्छेएसु वि बल्लहाइ उवरी बलइ दिट्ठी ॥ ४९ ॥

[प्रामण्याः सर्वास्वपि प्रियास्वनुमरणगृहीतवेषासु ।

ममच्छेदेष्वपि बल्लभाया उपरि बलते दृष्टिः ॥]

१. 'पुरुषानितशीला' घ. २. 'विचारस्वमो अज्ज वि ण होसि' ग. 'विचारिउं
घ. ३. 'इयमेव' ग. ४. 'दोषगुणविचारक्षमोऽद्यापि न भवसि' ग, 'दोषगुणौ विचार-
विगुणवापि न क्षमोऽसि' घ. ५. 'प्राममुख्यस्य' ग.

यद्वायं मरणदशामापन्नोऽपि सुभगामेव पश्यति गुष्मान्त्वयापि विरक्तः तस्मादनु-
मरणान्निवर्तित्वं कुरुष्वं च जारमित्यभिप्रायेण कुट्टन्या इयमुक्तिरिति ध्येयम् ॥

कथमेवं प्रियवादिनमपि कान्तमवधीरयसीति वदन्तीं मातुलानी काचिदाह—

मामि सरसक्खराणं वि अत्थि विसेसो पअम्पिअव्वाणम् ।

णेहमइआणं अण्णो अण्णो उवरोहमइआणम् ॥ ५० ॥

[मातुलानि सदृशाक्षराणामप्यस्ति विशेषः प्रजल्पितव्यानाम् ।

स्नेहमयानामन्योऽन्य उपरोधमयानाम् ॥]

प्रजल्पितव्यानां वचनानाम् । स्नेहं विनापि शठः परान्वञ्चयितुं मधुरं भाषते । तथा-
प्यनुभवसाक्षिकः स्वरविशेष एव भेदक इति भावः । 'मामि' इति स्थाने 'सुहअ' इति
क्रचित्पाठः । 'सुभग' इत्यर्थः । तत्र कथं मामवधीरयन्तीति वदन्त नायकं प्रति नायिकाय ।
इयमुक्तियोज्या ॥

अन्याराक्तं दाक्षिण्यात्प्रियवादिनं नायकं कापि सरोषमाह—

हिअआहिन्तो पसरन्ति जाइँ अण्णाइँ ताइँ वअणाइँ ।

ओसरसु किं इमेहिँ अहरुत्तरमेत्तभणिणहिँ ॥ ५१ ॥

[हृदयेभ्यः प्रसरन्ति यान्यन्यानि तानि वचनानि ।

अपसर किमेभिरधरोत्तरमात्रभणितैः ॥]

अधरेति मुखमात्रप्रवृत्तैर्न तु हृदयप्रवृत्तैरित्यर्थः ॥

गोत्रस्खलितं कान्त धीरा नायिका सवैदग्ध्यमाह—

कहँ सा सोहग्गुणं मए समं बहइ णिग्घिण तुमम्मि ।

जीअ हरिज्जइ गोत्तं हरिऊण अ दिज्जए मज्झ ॥ ५२ ॥

[कथं सा सौभाग्यगुणं मया समं वहति निर्घृण त्वयि ।

यस्य ह्रियते नाम हृत्वा च दीयते मद्यम् ॥]

विरहजनितमात्मनः काश्चर्मज.नती कापि प्रोषितभर्तृका सखीमाह—

सहि साहसु सवभावेण पुच्छिमो किं असेसमहिलाणम् ।

वडुन्ति करठिआ ठिवअ वलआ दइए पैउट्टम्मि ॥ ५३ ॥

[सखि कथय सद्भावेन पृच्छामः किमशेषमहिलानाम् ।

वर्धन्ते कैरस्थिता एव बलया दयिते प्रोषिते ॥]

'बलयोऽन्नियाम्' इत्यमरः ॥

१. 'सुहअ' ख-ग. २. 'सुभग' ग-घ. ३. 'हृदयस्थानि' ग. ४. 'णामं' ख-ग.

५. 'पउत्थे' क. ६. 'करस्थाः' ग.

आनन्दपटः प्रथमपुष्पवतीवल्लम् । प्रथमरजोदर्शने जाते तद्वस्त्रं बन्धुभिलोकैषु प्रदर्शयति इति देशविशेषे आचारः । जारसंबन्धदृष्टशोणिताया अस्थानं संभ्रमदर्शनेन जारस्य हास इति बोध्यम् ॥

शिशिरसमये अधरे मधूच्छिष्टं लापयन्तीं तरुणी वीक्ष्य कोऽप्यात्मनो वैदग्ध्य-
ख्यापनायाह—

सणिअं सणिअं ललिअङ्गुलीअ मअणवडलाअणमिसेण ।

बन्धेइ धवलवणवट्टअं व वैणिआहरे तरुणी ॥ ५८ ॥

[शनकैः शनकैर्ललिताङ्गुल्या मदनपटलापनमिषेण ।

बध्नाति धवलव्रणपट्टमिव व्रणितांधरे तरुणी ॥]

कापि कुलवधूवृत्तं शिक्षयितुं सखीमाह—

रइविरमलज्जिआओ अप्पत्तणिअंसणाओ सहस व्व ।

ढक्कन्ति पिअअमालिङ्गणेण जहणं कुलवहूओ ॥ ५९ ॥

[रतिविरामलज्जिता अप्राप्तनिवसनाः सहसैव ।

आच्छादयन्ति प्रियतमालिङ्गनेन जघनं कुलवध्वः ॥]

कापि कस्याश्चित्मौभाग्यमन्यापदेशेनाह—

पाअडिअं सोहग्गं तम्बाए उअह गोट्टमज्झम्मि ।

दुट्टवसहस्स सिङ्गे अक्खिउडं कण्डुअन्तीए ॥ ६० ॥

[प्रकटितं सौभाग्यं गवा पश्यत गोष्ठमध्ये ।

दुष्टवृषभस्य शङ्गे अक्षिपुटं कण्डूयन्त्या ॥]

तम्बा गौः ॥

जारप्रलोभनाय दूती कस्याश्चिद्रतलम्पटतामाह—

उह संभमविक्खित्तं रमिअठवअलेहलाए असईए ।

णवरङ्गअं कुडङ्गे धअं व दिण्णं अविणअस्स ॥ ६१ ॥

[पश्य संभ्रमविक्षिप्तं रन्तव्यकलम्पटया असत्या ।

नवरङ्गकं कुङ्गे ध्वजमिव दत्तमविनयस्य ॥]

१. 'अङ्गुलीहिं' ग. २. 'वणिआहरा' ख. ३. 'पट्टिकासिव' घ. ४. 'व्रणिताधरा'
ख-घ. ५. 'णिअसणा हसन्तीओ' क. ६. 'सहसत्ति' ख-ग. ७. 'सहसेति' ग-घ.
८. 'पश्यत' क-ख पुस्तकयोर्नास्ति. ९. 'कण्डूयमानया' ग-घ. १०. 'रतिरङ्गकन्ति-
ग्धया' ग, 'रतिरङ्गस्नेहलया' घ. ११. 'निकुङ्गे' ग.

इमं न भोगं वा पतिं त्यक्तुमिच्छन्तीं परपुरुषाभिमुखीं निषेद्धुं काचिदन्यापदेशेनाह—

भमइ पलित्तइ जूरइ उक्खिविउं से करं पसारेइ ।

करिणो पङ्कक्खुत्तस्स णेहणिअलाइआ करिणी ॥ ५४ ॥

[त्रमति परितः खिद्यते उत्क्षेपुं तस्य करं प्रसारयति ।

करिणः पङ्कनिमग्नस्य खेहनिगडिता करिणी ॥]

इति मरुत्याः शिक्षार्थं पार्वत्या लज्जायामपि स्नेहाभिव्यक्तिवैदग्ध्यं वर्णयति—

रइकेलिहिअणिअंसणकरकिसलअरुद्धणअणजुअलस्स ।

रइम तइअणअणं पव्वइपरिउम्बिअं जअइ ॥ ५५ ॥

[गतिकेलिहृतनिवसनकरकिसलयरुद्धनयनयुगलस्य ।

रइस्य नृतीयनयनं पार्वतीपरिचुम्बितं जयति ॥]

इति मरुत्याः कान्तकलिनं हलिकस्य कस्याचिदनुरागं सूचयन्नागरिकस्तमाह—

धावइ पुरओ पासेसु भमइ दिट्ठीपहम्मि संठाइ ।

णवलइकरस्स तुह हलिअउत्त दे पहरसु वराइम् ॥ ५६ ॥

[धावति पुरतः पार्श्वयोर्भ्रमति दृष्टिपथे संतिष्ठते ।

नवलतिकाकरस्य तव हलिकपुत्र हे प्रहरस्व वराकीम् ॥]

हमरुदः रुबोधने । यद्वा नवलताकुञ्जं संकेतस्थानं त्वं गतो न त्वियमिति कृताप-

१. इमेना प्रहरेति सोपहास कुट्टनीवचनमिदम् ॥

२. इति मरुत्याः सर्वमुपहासास्पदं भवतीति निर्दर्शयन्कश्चित्स्वस्य वैदग्ध्यख्यापनाय सहचर-

३. ७—

काग्मिमाणन्दवडं भामिज्जन्तं बहूअ संहिआहिं ।

पेन्डइ कुमारिजारो हासुम्मिस्सेहिं अच्छीहिं ॥ ५७ ॥

[कृत्रिममानन्दपटं आम्यमाणं बध्वा सखीभिः ।

प्रेष्यते कुमारीजारो हासोन्मिश्राम्यामक्षिभ्याम् ॥]

१. 'मिअडाकआ' ग. २. 'परितप्ता' ग, 'प्रत्यावर्तते' घ. ३. 'खिद्यति' घ.
४. 'भम' ग. ५. 'पङ्कनिखातस्य' ग. ६. 'खेहे निकटीकृता' ग, 'खेहनिगडा
धिया' घ. ७. 'णवलइआए तुह' ख. ८. 'पार्श्वेषु' घ. ९. 'नवलताकरस्य तव' ग,
'नवलतिका तव' घ. १०. 'बन्धूहिं' क-ग.

रन्तव्यकं रतम् । नवरङ्गकं कौसुम्भवस्रम् । कुञ्जे सकेतस्थाने असत्या दत्तमविन-
यस्य ध्वजमिव नवरङ्गकं पश्येत्यन्वयः ॥

भुजंगं प्रति दूती कस्याश्चिदनुरागातिशय प्रतिपादयितुमाह—

हृत्थप्फंसेण जरग्गवी वि प्हहइ दोहहुअगुणेण ।

अवलोअणपह्हुइरिं पुत्तअ पुण्णेहिं पाविहिसि ॥ ६२ ॥

[हस्तस्पर्शेन जरद्रव्यपि प्रस्रौति दोहदगुणेन ।

अवलोकनप्रस्रवनशीलां पुत्रक पुण्यैः प्राप्स्यसि ॥]

अवलोकनेति । अवलोकनमात्रेणानुरक्तमित्यर्थः । तथा चेयमवलोकनमात्रेणैव प्र-
सीदति, अतस्त्वमेना भजस्वेति भावः ॥

नागरिकः सहचरशिक्षार्थमेकस्य जिज्ञासामपरस्य च ज्ञाननैपुण्यमुक्तिप्रत्युक्तिकयाह—

मसिणं चङ्कम्मन्ती पए पए कुणइ कीस सुहभङ्गम् ।

णूणं से मेहलिआ जहणगअं छिवइ णहवन्तिम् ॥ ६३ ॥

[मसृणं चङ्क्रम्यमाणा पदे पदे करोति किमिति मुखमङ्गम् ।

नूनं तस्या मेखलिका जघनगतां स्पृशति नखपङ्क्तिम् ॥]

सपत्नीचरणलाक्षाङ्कितकरं नायकं खण्डिता सेर्ष्यमाह—

संवाहणसुहरसतोसिएण देन्तेण तुह करे लक्खम् ।

चलणेण विक्कमाइत्तचरिअँ अणुसिक्खअं तिस्सा ॥ ६४ ॥

[संवाहनसुखरसतोषितेन ददता तव करे लाक्षाम् ।

चरणेन विक्रमादित्यचरितमनुशिक्षितं तस्याः ॥]

पक्षे संवाहणं संवाधनम् । लक्खं लक्षम् । विक्रमादित्योऽपि भृत्यकर्तृकेण शत्रुसंवा-
धनेन तुष्टः सन् भृत्यस्य करे लक्षं ददातीत्यर्थः ॥

सहसैव परित्यक्तमानां सखीं शिक्षयितुं कापि मानस्य बहुसुखहेतुतामाह—

पाअपडणाणँ मुद्धे रहसबलामोडिचुम्बिअव्वाणम् ।

दंसणमेत्तपसण्णे चुक्कासि सुहाणँ बहुआणम् ॥ ६५ ॥

[पादपतनानां मुग्धे रभसबलात्कारचुम्बितव्यानाम् ।

दर्शनमात्रप्रसन्ने अंधासि सुखानां बहुकानाम् ॥]

१. 'गुणेहिं' ख ग. २. 'बालअ दुक्खेहिं' क. ३. 'दोहदगुणैः' ग-घ. ४. 'प्रस्र-
विनीं' ग. ५. 'अस्या' घ. ६. 'अणुवट्ठिअं' ग. ७. 'अनुवर्तित' ग. ८. 'चुक्किहि सि'
ग. ९. 'रभसबलान्मौल्लिचुम्बितव्याना' ग. १०. 'त्यक्तासि' ग, 'मुक्तासि' घ.
११. 'सुखैर्बहुभिः' ग. 'सुखानां बहुकानाम्' घ.

सुखानामित्यादौ चतुर्थर्थे षष्ठी । पादपतनादिभ्यः सुखेभ्यो भ्रष्टासीत्यर्थः । दर्शनमात्रेण प्रसन्ने इति सुग्धाविशेषणम् । 'रभसो वेगहर्षयोः' इति कोषः ॥

प्रणयकुपितां कान्ता कोऽपि प्रसादयितुमाह—

दे सुअणु पसिअ एहिं पुणो वि सुलहाँइ रूसिअव्वाइं ।

एसा मअच्छि मअलञ्छणुज्जला गलइ छणराई ॥ ६६ ॥

[हे सुतनु प्रसीदेदानीं पुनरपि सुलभानि रोषितव्यानि ।

एसा मृगाक्षि मृगलाञ्छनोज्ज्वला गलति क्षणरात्रिः ॥]

रोषितव्यानि रोषा । क्षणरात्रिरुत्पवरात्रि । 'हे सुहअ' इति पाठे 'हे सुभग' इत्यर्थः । तत्रान्योन्यगृहीतमानौ प्रति दूतीवचनत्वेन व्याख्येयम् ॥

कामार्तायास्तस्याः प्रतीकारं कर्तुं त्वमेव शक्त इत्यन्यापदेशेन दूती कमप्याह—

आवण्णाइं कुलाइं दो विअ जाणन्ति उण्णइं णेउम् ।

गौगीअ हिअअदइओ अहवा सालाहणणरिन्दो ॥ ६७ ॥

[आपन्नानि कुलानि द्वावेव जानीत उन्नतिं नेतुम् ।

गौर्या हृदयदयितोऽथवा शालिवाननरेन्द्रः ॥]

आपन्नान्यापदं प्राप्तानि । पक्षे आपर्णानि । अपर्णा पार्वती तत्सबन्धीनि ॥

विपमशीलकुटिलनाधिक्रायामामक्तं कमप्यन्यापदेशेन निवर्तयितुं काचिदाह—

णिक्कण्ड दुरारोहं पुत्तअ मा पाडलिं समारुहसु ।

आरूढणिवडिआ के इमीअ ण कआ हआसाए ॥ ६८ ॥

[निष्काण्डदुरारोहां पुत्रक मा पाटलिं समारोह ।

आरूढनिर्गतिताः के अनया न कृता हताशया ॥]

काण्डं स्कन्धोऽवसरश्च । तच्छून्यत्वाद्दुरारोहा दुरारुमणीया प्रत्यवायहेतुसंगमां च ॥

ग्रामणीवनितासक्तो देवरो निवार्यतामित्यभिप्रायेण काप्यन्यापदेशेन श्वश्रूमाह—

गामणिघरम्मि अत्ता एक्क विअ पाडला इह ग्गामे ।

बहुपाडलं च सीसं दिअरस्स ण सुन्दरं एअम् ॥ ६९ ॥

[ग्रामणिगृहे श्वश्रु एकैव पाटला इह ग्रामे ।

बहुपाटलं च शीर्षं देवरस्य न सुन्दरमेतत् ॥]

बहूनि पाटलानि पाटलिपुष्पाणि यस्मिस्तत् ॥

१. 'णाहो' ग. २. 'णिक्कन्ध' क-ख, 'दुक्कान्ध' ग. ३. 'निष्कन्ध' क-ख.

४. 'पाटला' घ. ५. 'समारुह' क ख. ६. 'मातः' ग.

मुजंगप्रलोभनाय दूती कस्याश्चित्कटाक्षतैक्ष्ण्यं वर्णयति—

अण्णाणं वि होन्ति मुहे पम्हलधवलाइँ दीहकसणाइँ ।

णअणाइँ सुन्दरीणं तह वि हु दट्टुं ण जाणन्ति ॥ ७० ॥

[अन्यामामपि भवन्ति मुखे पक्षमलधवलानि दीर्घकृष्णानि ।

नयनानि सुन्दरीणां तथापि खलु द्रष्टुं न जानन्ति ॥]

महजा अपि गुणा भ्रूविलासादि वैदग्ध्यं विना न शोभन्त इति भावः ॥

दण्डयात्रोद्यतस्य राज्ञ प्रतिपेधाय राजस्तुतिव्याजेन वर्षाकालं राज्ञी वर्णयति—

हंमेहिँ व तुह रणजलअसमअभअचलिअबिहलवक्खोहिँ ।

परिसेमिअपोम्मासेहिँ माणसं गम्मइ रिऊहिँ ॥ ७१ ॥

[हसैरिव तव रणजलदसमयभयचलितविह्वलपक्षैः ।

परिशेषितपद्माशैर्मानस गम्यते रिपुभिः ॥]

हे राजन्, तव रिपुभिर्मानसं मन । तवेत्यर्थात् । गम्यतेऽनुवर्त्यते । त्वत्सेवया स्वी-
यत इति यावत् । हसपक्षे मानस सरोविशेषः । गम्यते प्राप्यते । कीदृशैः । रण एव ज-
लदसमयः तद्द्रयाच्चलिताः पलायिता अत एव विह्वला पक्षाः सहाया येषां तैः । हस-
पक्षे—रणन्तः शब्दायमाना ये जलदास्तद्द्रयाच्चलिताः कम्पिता. पक्षाश्छदा येषाम् ।
पुनः कीदृशैः । परिशेषिता त्यक्ता पद्माया लक्ष्म्या । पक्षे—पद्मानां कमलानामाशा यैः ।

अनायाससाध्यमेव प्रार्थनीयमिति सखी शिक्षयितुं काचिदाह —

दुग्गअघरम्मि घरिणी रक्खन्ती आउलत्तणं पइणो ।

पुच्छिअदोहलसद्धा पुणो वि उअअं विअ कहेइ ॥ ७२ ॥

[दुर्गतगृहे गृहिणी रक्षन्ती आकुलत्वं पत्युः ।

पृष्ठदोहदश्रद्धा पुनरप्युदकमेव कथयति ॥]

दुर्लभवस्तुप्रार्थनायामसौ व्याकुलो भविष्यतीति बुद्ध्या उदकमेव प्रार्थयत इत्यर्थः ॥

ज्ञाता एव युवत्यो ग्रीष्मे रमयन्तीति वर्णयन्कोऽपि वयस्यमाह—

आअम्बलोअणाणं ओहँपुअपाअडोरुजहणाणम् ।

अवरह्मज्जिरीणं कए ण कामो वहइ चावम् ॥ ७३ ॥

[आताम्रलोचनानामाद्रांशुकप्रकटोरुजघनानाम् ।

अपराह्ममैज्जनशीलानां कृते न कामो वहति चापम् ॥]

आद्रांशुकेन प्रकटमूरु जघनं यासामित्यर्थः । ईदृगवस्थानं युवतीना रक्षणार्थमेव काम-
श्चापं वहति । अन्यथा निरर्थकत्वात्त्यक्तमेव स्यादिति भावः ॥

कोऽपि वेद्यास्त्रीणां सकलव्यामोहकर्ता प्रतिपादयितुमाह—

के उर्वरिआ के इह ण खण्डिआ के ण लुत्तगुरुविहवा ।

णहराई वेसिणिओ गणणारेहा उव वहन्ति ॥ ७४ ॥

[के उर्वरिता के इह न खण्डिताः के न लुप्तगुरुविभवाः ।

नखराणि वेद्या गणनारेखा इव वहन्ति ॥]

के उर्वरिता वेद्याभिरनाकृष्टाः । के न खण्डिताः । केषां व्रतखण्डनं न कृतमित्यर्थः । नखराणि नखक्षतानि । 'नखरोऽस्त्रियाम्' इत्यमरः । यद्वा—णहराई नखराजिम् । नखक्षतपङ्क्तिमिति यावत् । कामुकदत्तनखक्षतपङ्क्तिव्याजेन के उर्वरिता इत्यादि गणनारेखा वहन्तीत्यर्थः ॥

प्रवासादागतं कान्तं प्रति विरहदुःखं निवेदयितुं कापि सवैदग्ध्यमाह—

विरहेण मन्दरेण व हिअअं दुद्धोअहिं व महिऊण ।

उम्मूलिआई अव्वो अम्हं रअणाई व सुहाई ॥ ७५ ॥

[विरहेण मन्दरेणेव हृदयं दुग्धोदधिमिव मथित्वा ।

उन्मूलितानि कैष्टमस्साकं रत्नानीव सुखानि ॥]

उन्मूलितानि दूरीकृतानि । अव्वो इति कष्टसूचकमव्ययम् । 'अव्वो संबुद्धिदुःखयोः' इति देशीकोषः । त्वद्विरहे दुःखमेव केवलं मयानुभूतमतः परं मां विहाय न गन्तव्यमिति भावः ॥

पत्युः प्रियमेव सर्वदा कर्तव्यमिति वदन्ती सखी कापि पत्युर्वैदग्ध्यमीर्ष्यां च सोद्वेगमाह—

उज्जुअरणे ण तूसइ वक्कम्मिअवि आअमं विअप्पेइ ।

एत्थ अहव्वाएँ मए पिए पिअं कहुँ णु काअव्वम् ॥ ७६ ॥

[ऋजुकरते न तुष्यति वक्त्रेऽप्यागमं विकल्पयति ।

अत्राभव्यया मया प्रिये प्रिय कथं नु कर्तव्यम् ॥]

ऋजुके हावभावादिरहिते । वक्त्रे हावभावमणितसीत्कृतदन्तक्षतनखक्षतचुम्बनासन-विशेषादियुक्ते । कुतोऽनया शिक्षितमित्यागमं विकल्पयति । 'आगम' इत्यस्य स्थाने 'आशयं' इति क्वचित्पाठः ॥

रतिकौशलदर्शनेनान्यथाभावशङ्किनं कान्चिदाह—

बहुविहविलासरसिए सुरए महिलाणँ को उवज्झाओ ।

सिक्खइ असिक्खिआई वि सव्वो णेहाणुबन्धेण ॥ ७७ ॥

१. 'वेशिन्यो गणनारेखा उपवहन्ति' घ. २. 'अहो' ग-घ. ३. 'आशय' घ.

[बहुविधविलासरसिके सुरते महिलानां क उपाध्यायः ।

शिक्ष्यते अशिक्षितान्यपि सर्वः स्नेहानुबन्धेन ॥]

नायकसौन्दर्यं प्रकटयन्ती दूती नायिकां प्ररोचयितुमाह—

वैष्णवसिए विअत्थसि सच्चं विअ सो तुए ण संभैविओ ।

ण हु होन्ति तम्मि दिट्ठे सुत्थावत्थाइँ अङ्गाइँ ॥ ७८ ॥

[वैष्णवशिते विकत्थसे सत्यमेव स त्वया न संभावितः ।

न खलु भवन्ति तस्मिन्दृष्टे स्वस्थावस्थान्यङ्गानि ॥]

वर्णो गुणश्रवण तेन वशीकृते इति संबोधनम् । 'वर्णो द्विजादिशुक्लादियशोगुणकथा-
दिषु' इति मेदिनी । विकत्थसे मया दृष्ट इत्यात्मश्लाघा कुरुषे । न संभावितो न दृष्टः ।
अत्र हेतुमाह—न खल्विति । स्वस्थावस्थानि न भवन्ति, किं तु स्वेदकम्परोमाञ्चजृम्भा-
ङ्गभङ्गमोटायितादिभावाकुलानि भवन्तीत्यर्थः ॥

अभिनवविषयानुरक्तः पूर्वानुभूतमवधीरयतीति निदर्शयन्कोऽपि वयस्यमाह—

आसण्णविआहदिँणे अहिणववहुसंगमस्सुअमणस्स ।

पढमघरिणीअ सुरअं वरस्स हिअए ण संठाइ ॥ ७९ ॥

[आसन्नविवाहदिने अभिनववधूसंगमोत्सुकमनसः ।

प्रथमगृहिण्याः सुरतं वरस्य हृदये न सतिष्ठते ॥]

अतिमदनाक्रान्तहृदयः कोऽपि दोषं जानन्नपि रागौत्कण्ठ्यात्प्रेयस्याः सहचरीमाह—

जइ लोकणिन्दिअं जइ अमङ्गलं जइ विमुक्कमज्जाअम् ।

पुप्फवइदंसणं तँहवि देई हिअअस्स णिठ्वाणम् ॥ ८० ॥

[यदि लोकनिन्दितं यद्यमङ्गलं यदि विमुक्तमर्यादम् ।

पुष्पवतीदर्शनं तथापि ददाति हृदयस्य निर्वाणम् ॥]

निर्वाणं सुखम् ॥

पुष्पवतीस्पर्शादुद्विजमान कान्त कापि सविनयोपालम्भमाह—

जइ ण छिवसि पुप्फवइं पुरओ ता कीस वारिओ ठासि ।

छित्तोसि चुलचुलन्तेहिँ धाविउण अम्ह हत्थेहिँ ॥ ८१ ॥

१. 'रमिते' ग. २. 'रणरसिए' ग. ३. 'सच्चरिओ' ग. ४. 'अरण्यरसिके' ग.
५. 'सच्चरित.' ग. ६. 'स्वस्थान्यङ्गानि' ग. ७. 'दिणेषु णव' ग. ८. 'दिनेषु नव' ग.
९. 'तुह तहवि देइ हिअअम्मि' ग. १०. 'तव तथापि ददाति हृदये' ग, 'तव तथापि
मम ददाति हृदये—'घ.

[यदि न स्पृशसि पुष्पवतीं पुरतस्तत्किमिति वारितस्तिष्ठसि ।

स्पृष्टोऽसि चुलचुलायमानैर्धावित्वास्माकं हस्तैः ॥]

चुलचुलैत्यनुकरणमुत्कण्ठातिशयसूचकम् । कण्डूयमानैरित्यर्थः ॥

नायिकाया विप्रलम्भावस्थाकथनेन नायकापराधं प्रकटयन्ती दूती नायकमाह—

उज्जागरअकसाइअगुरुअच्छी मोहमण्डणविलक्खा ।

लज्जइ लज्जालुइणी सा सुहअ सहीहिँ वि वराई ॥ ८२ ॥

[उज्जागरककषायितगुरुकाक्षी मोघमण्डनविलक्षा ।

लज्जते लज्जाशीला सा सुभग सखीभ्योऽपि वराकी ॥]

उज्जागरेण कषायिते गुरुके अक्षिणी यस्याः । मोघेन निरर्थकेन मण्डनेन विलक्षा ॥

गर्भभरेण क्लाम्यन्तीं सखी सखी सपरिहासमाह—

ण वि तह अइगरुएण वि तम्मइ हिअए भरेण गव्भस्स ।

जह विपरीअणिहुअणं पिअम्मि सोह्हा अपावन्ती ॥ ८३ ॥

[नैपि तथातिगुरुकेणापि ताम्यति हृदये भरेण गर्भस्य ।

यथा विपरीतनिर्धुवनं प्रिये स्नुषा अप्राप्नुवती ॥]

गर्भिणीपीवरादीनां विपरीतसुरतस्य निषिद्धत्वादिति भावः ॥

नायिकानुरागप्रकाशनेन दूती नायकमुत्कण्ठयितुमाह—

अगणिअजणाववाअं अवहत्थिअगुरुअणं वराईए ।

तुह गलिअदंसणाए तीए बलिउण चिरं रुण्णम् ॥ ८४ ॥

[अगणितजनापवादमपहस्तितगुरुजनं वराक्या ।

तव गलितदर्शनया तथा वलित्वा चिर रुदितम् ॥]

वादान्तं जनान्तं च क्रियाविशेषणम् ॥

प्रोषितपत्तिका, तत्सखी वा लेखमुखेन नायकमाह—

हिअअं हिअए णिहिअं चित्तालिहिअ व्व तुह मुहे दिट्ठी ।

आलिङ्गणर्रहिआइं णवरं खिज्जन्ति अङ्गाइं ॥ ८५ ॥

१. 'लज्जावती' घ. २. 'सखीना' घ. ३. 'नैव' ग. ४. 'सुरतं' क-ख. ५. 'प्रियमपि' ग. ६. 'दर्शनाशया' क-ख. ७. 'चलित्वा' घ. ८. 'दुहिआइ' ग.

[हृदयं हृदये निहित चित्रालिखितेव तव मुखे दृष्टिः ।

आलिङ्गनरहितानि केवलं क्षीयन्तेऽङ्गानि ॥]

‘आलिङ्गणदुहिआइ’ इति पाठे आलिङ्गनं विना दुःखितानीत्यर्थः ॥

काचिदतिविरहदुःखिता सुज्ञां सखीमाह—

अहअं विओअतणुई दुसहो विरहाणलो चलं जीअम् ।

अप्पाहिज्जउ किं सहि जाणसि तं चेव जं जुत्तम् ॥ ८६ ॥

[अहं वियोगतन्वी दुःसहो विरहानलश्चलं जीवम् ।

अभिधीयतां किं सखि जानासि त्वमेव यद्युक्तम् ॥]

प्रियानयनमेव युक्तमिति भावः ॥

कलहान्तरिताया नायिकाया विरहदुःखं प्रतिपादयन्ती दूती नायकमाह—

तुह विरहुज्जागरओ सिविणे वि ण देइ दंसणसुहाइं ।

वाहेण जहालोअणविणोअणं से हअं तं पि ॥ ८७ ॥

[तव विरहोज्जागरकः स्वप्नेऽपि न ददाति दर्शनसुखानि ।

बाष्पेण यदलोकनविनोदनं तस्या हतं तदपि ॥]

अनुरक्तं कान्तं कापि सोपालम्भमाह—

अण्णावराहकुविओ जहतह कालेण गम्मइ पसाअम् ।

वेसत्तणावराहे कुविअं कहँ तं पसाइस्सम् ॥ ८८ ॥

[अन्यापराधकुपितो यथातथा कालेन गच्छति प्रसादम् ।

द्वेष्यत्वापराधे कुपितं कथं तं प्रसादयिष्यामि ॥]

अन्य आज्ञाखण्डनादिरूपो योऽपराधस्तेन कुपितः । द्वेष्यत्वं सहाजिको द्वेषस्तदू-
पेऽपराधे ॥

अहृदयप्रचारिणं प्रियवादिनं नायकं कापि सोपालम्भमाह—

दीससि पिआणि जम्पसि सबभावो सुहअ एत्तिअ व्वेअ ।

फालेइऊण हिअअं साहसु को दावए कस्स ॥ ८९ ॥

१. ‘दुःखितानि’ ग-घ. २. ‘सदिश्यतां’ ग, ‘आदिश्यतां’ घ. ३. ‘विरहे जागरण’
ग. ४. ‘अवलोकन’ क-ख. ५. ‘अपि तस्याहतं तत्’ ग. ६. ‘गम्यते’ घ. ७. ‘प्रसाद-
यिष्ये’ ग-घ. ८. ‘भणसि’ क-ख.

[दृश्यसे प्रियाणि जैल्पसि सद्भावः सुभग एतावानेव ।

पौटयित्वा हृदयं केथय को दर्शयति कस्य ॥]

तवाकृतिवचनादिकमतिमधुरम्, हृदय तु कालकूटघटितमिवेति भावः ॥

काप्यस्थिरस्नेहं पतिमुपालब्धुमन्यापदेशेनाह—

उअअं लहिउण उताणिआणणा होन्ति के वि सविसेसम् ।

रित्ता णमन्ति सुइरं रहट्टघडिअ व्व कापुरिसा ॥ ९० ॥

[उदकं लब्ध्वा उत्तानितानना भवन्ति केऽपि सविशेषम् ।

रित्ता नमन्ति सुचिरं रूहट्ट(अरघट्ट)घटिका इव कापुरुषाः ॥]

रहट्टो घटीयन्त्रं तत्संबन्धिनः क्षुद्रा घटा इव । उक्तं च—‘जीवनग्रहणे नम्रा गृहीत्वा पुनरुन्नताः । किं कनिष्ठाः किमु ज्येष्ठा घटीयन्त्रस्य दुर्जनाः ॥’ इति ॥

सुधामयूखमयूखमण्डलीधवलिते दिङ्मुखे प्रियसंगममलभमानान्धकाराभिसारिका सोद्वेगं स्वगतमाह—

भग्गपिअसंगमं केत्तिअं व जोह्वाजलं णहसरम्मि ।

चॅन्दरपणालणिञ्जरणिवहपडन्तं ण णिट्टाइ ॥ ९१ ॥

[भग्गप्रियसंगमं कियदिव ज्योत्स्नाजलं नभःसरसि ।

चन्द्रकरप्रणालनिर्झरनिवहपतर्न्न निस्तिष्ठति ॥]

भग्गः प्रियसंगमो येन तत् । तथा चन्द्रकरा एव प्रणालनिर्झरनिवहास्तेभ्यः पतन्न निःशेषं तिष्ठति । न समाप्नोतीत्यर्थः ॥

नाथिकानुरागं सूचयन्ती दूती नायकमाह—

सुन्दरजुआणजणसंकुले वि तुह दंसणं विमग्गन्ती ।

रण्ण व्व भमइ दिट्ठी वराइआए समुव्विग्गा ॥ ९२ ॥

[सुन्दरयुवजनसंकुलेऽपि तत्र दर्शनं विमार्गयन्ती ।

अरण्य इव भ्रमति दृष्टिर्वराकिकायाः समुद्विग्ना ॥]

यथारण्ये शून्यप्रदेशे कमपि न पश्यति तथा त्वद्गतचित्ता सतोऽपि बहून्यूनो न पश्यति किं तु त्वामेवोद्दीक्षत इति भावः । ‘अणुव्विग्गा’ इति पाठे त्वदर्शनकौतुकाद-
गणितखेदेत्यर्थः ॥

१. ‘भगसि’ घ. २. ‘फालयित्वा’ घ. ३. ‘निजहृदयं’ ग. ४. ‘शंस’ घ. ५. ‘कस्यै
दर्शयति’ क-ख. ६. ‘कूपघटिका’ घ. ७. ‘पतन्तं’ ग-घ. ८. ‘न निर्वाति’ ग,
‘न तिष्ठति’ घ. ९. ‘संकटे. ग. १०. ‘विमार्गमाणा’ ग.

प्रोषितपतिकया विरहावस्थां सखी तत्कान्तसमीपगामिन पथिकमाह—

अइकोवणा वि सासू रुआविआ गअवईअ सोह्लाए ।

पाअपडणोण्णआए दोसु वि गलिएसु वलएसु ॥ ९३ ॥

[अतिकोपनापि श्वश्रू रोदिता गतपतिकया स्नुषया ।

पादपतनावनतया द्वयोरपि गलितयोर्वलययोः ॥]

द्वयोर्भुजद्वयविधृतयोः । वलययोरिति सतिसप्तमी । एवमित्यं मत्पुत्रकृते कृशा जाना येनानया मत्पादवन्दनावनतया वलयपातोऽपि न ज्ञान इत्यालोक्य निष्ठुरापि श्वश्रूरो-दीदिति भावः ॥

प्रवासोद्यतस्य कान्तस्य गमननिषेधाय ग्रीष्मातपस्य दुःसहत्व कापि वर्णयति—

रोवन्ति व्व अरण्णे दूसहरइकिरणफंससंतत्ता ।

अइतारझिल्लिविरुएहिँ पाअवा गिम्हमज्झह्णे ॥ ९४ ॥

[रुदन्तीवारण्ये दुःसहरविकिरणस्पर्शसंतप्ताः ।

अतितारझिल्लीविरुतैः पादपा ग्रीष्ममध्याह्ने ॥]

झिल्ली 'शीगुर' इति कान्यकुब्जभाषया प्रसिद्धः क्रीटविशेषः । अचेतनानां पादपानामपीयमवस्था किं पुनश्चेतनानामिति भावः । यद्वा संकेतवनोपगत लोकागमं शङ्कमानं कान्तं प्रत्यभिसारिकाया इयमुक्तिः । नायं जनचरणसंचरणचलितपत्रत्वनिः, किंतु झिल्ली-ध्वनिरिति निःशङ्कं रमस्वेति भावः ॥

संकेतितसरस्तीरमहं गता, त्वं तु न गतः, इति जारं श्रावयन्ती कापि कमलवनवर्णनच्छलेन सखीमाह—

पढमणिलीणमधुरमधुलोहलालिउलबद्धझंकारम् ।

अहिमअरकिरणणिउरम्बचुम्बितं दलइ कमलवणम् ॥ ९५ ॥

[प्रथमनिलीनमधुरमधुलुब्धनालिकुलबद्धझंकारम् ।

अहिमकरकिरणनिकुरुम्बचुम्बितं दलति कमलवनम् ॥]

प्रथमनिलीनेन मधुरमधुलुब्धेनालिकुलेन बद्धो झंकारो यत्र तत् । पाठान्तरे प्रथमनिलीनमधुकरीलुब्धेत्यर्थः । तत्र प्रथमनिलीनेति मधुकरीविशेषणम् । सुप्तस्य राज्ञः प्रबोधनाय वैतालिकस्येदं वचनमिति केचित् । साध्यो विधिरनुष्ठीयतामिति, सुरभयो मुच्यन्तामिति, विक्रेयवस्तूनि प्रसार्यन्तामिति, नास्तीदानीं पिशाचादिभयमिति, पथिक प्रतिष्ठस्वेत्यादि प्रस्तावदेशकालादिभेदात्पुनरनेकविधो व्यङ्ग्योऽर्थः सहृदयैः स्वयमूहनीयः ॥

मानिनीमानापनोदाय नायक प्रेरयितुं दूती नायकसहचरमाह—

गोक्तकखलणं सोऊण पिअअमे अज्ज तीअ खणदिअहे ।

वज्झमहिंसस्स माल व्व मण्डणं उअह पडिहाइ ॥ ९६ ॥

[गोत्रस्खलनं श्रुत्वा प्रियतमे अद्य तस्याः क्षणदिवसे ।

वध्यमहिषस्य मालेव मण्डनं पश्यत प्रतिभाति ॥]

श्रुत्वैत्यनन्तरं स्थिताया इति शेषः । क्षणदिवसे उत्सवदिवसे । वध्येति देव्यै उपहार-
रत्वेन कल्पितस्य महिषस्य कृतमपि मण्डन यथासन्नमरणतया न शोभते तथा अस्या अ-
नीत्यर्थः । तथा च यावदभिमानेन न म्रियते तावदेव शीघ्रमनुनीयतामियमिति भावः ॥

कापि कान्तानयनाय सखी त्वरयितुमात्मनो दु सहां विरहावस्थामाह—

महमहइ मलयवाओ अत्ता वारेइ मं घराणेन्तीम् ।

अङ्कोलपरिमलेण वि जो कखु मओ सो मओ व्वेअ ॥ ९७ ॥

[महमहायते मलयवातः श्वश्रूर्वारयति मां गृहान्निर्यान्तीम् ।

अङ्कोटपरिमलेनापि यः खलु मृतः स मृत एव ॥]

महमहायते अतिसौरभमुद्रहतीत्यर्थः । अङ्कोटेति । अङ्कोटो गृहवाटिकायामेव प्रा-
यशो भवतीति प्रसिद्धिः । अयमाशयः—सुरभिमलयमास्तस्पर्शोद्दीपितविषमविषमवाण-
गणभिन्नहृदया हृदयस्फोटेन विनह्वयतीति संभाव्य श्वश्रूर्मा बहिर्गन्तुं न ददाति । किमे-
तावता । गृहस्थिताङ्कोटगन्धेनाप्यहं मरिष्याम्येवेति । ‘अङ्कोटे तु निकोचकः’ इत्यमरः ॥

कस्यचिदभियोगनिरासार्थं दूती दंपत्योः परस्परानुरागमाह—

सुहपेच्छओ पई से सा वि हु सविसेसदंसणुम्मइआ ।

दोवि कअत्था पुहइं अमहिलपुरिसं व मण्णन्ति ॥ ९८ ॥

[मुखप्रेक्षकः पतिस्तस्याः सापि खलु सविशेषदर्शनोन्मत्ता ।

द्वावपि कृताथौ पृथिवीममहिलापुरुषामिव मन्येते ॥]

प्रोषितपत्निका कान्तिकयापि क्षेमं पृष्ट्वा तामाह—

खेमं कन्तो खेमं जो सो खुज्जम्बओ घरहारे ।

तस्स किल मत्थआओ को वि अणत्थो समुप्पण्णो ॥ ९९ ॥

[क्षेमं कुतः क्षेमं योऽसौ कुब्जाम्रको गृहद्वारे ।

तस्य किल मस्तकात्कोऽप्यनर्थः समुत्पन्नः ॥]

अनर्थो मुकुलः । वसन्तकालः संप्राप्त इति भावः ॥

१. ‘माता’ ग. २. ‘पेच्छिरो’ ग. ३. ‘सापि च’ ग. ४. ‘दर्शनान्मत्ता’ ग,
‘दर्शनोन्मादिता’ घ.

प्रवासावसरमधिगम्य कस्यामप्यभियोक्तुर्जारस्य निरासार्थं दूत्याह—
आउच्छणविच्छाअं जाआइ मुहं णिअच्छमाणेण ।

पहिएण सोअणिअलाविएण गन्तुं ठिवअ ण इट्टम् ॥ १०० ॥

[आपृच्छनविच्छायं जायाया मुखं निरीक्षमाणेन ।

पथिकेन शोकनिर्गडितेन गन्तुमेव नेष्टम् ॥]

आपृच्छनं गन्तुमनुजानीहीति प्रश्नः ॥

रसिअजणहिअदइए कइवच्छलपमुहसुकइणिम्मइए ।

सत्तसअम्मि समत्तं पञ्चमं गाहासअं एअम् ॥

[रसिकजनहृदयदयिते कवित्सलप्रमुखसुखविनिर्मिते ।

सप्तशतके समाप्तं पञ्चमं गाथाशतकमेतत् ॥]

षष्ठं शतकम् ।

जनापवादभयादप्राप्तयथेष्टप्रियावलोकना कुलटा सखीमाह—

सूईवेहे मुसलं विच्छहमाणेण दडुलोएण ।

एक्कग्गामे वि पिओसमअं अच्छीहिं वि ण दिट्ठो ॥ १ ॥

[सूचीवेधे मुसलं^३ निक्षिपता दग्धलोकेन ।

एकग्रामेऽपि प्रियः समाभ्यामक्षिभ्यामपि न दृष्टः ॥]

सूचीवेध इति । अल्पमपि दूषणं बहु कुर्वतेत्यर्थः । दग्धशब्दो निर्वेदसूचने । समाभ्यां सर्वाभ्याम् । 'समं सदृशि सर्वस्मिन्' इति कोषः ॥

कापि पतिगमनस्यात्ममरणहेतुतां प्रतिपादयन्ती पत्युर्गमननिषेधार्थं सखीमाह—

अज्जं पि ताव एक्कं मां मं वारेहि पिअसहि रुअन्तिम् ।

कल्लिं उण तम्मि गए जइ ण मुआ ता ण रोदिस्सम् ॥ २ ॥

[अद्यापि तावदेकं मां मां वारय प्रियसखि रुदतीम् ।

कल्ये पुनस्तस्मिन्गते यदि न मृता तदा न रोदिष्यामि ॥]

अपिरवधारणे । अवैवेत्यर्थः । एक दिनमित्यर्थात् ॥

ऋतुमत्या युवत्या वैदग्ध्यं सूचयन्ती कापि सखीं शिक्षयितुमाह—

एहि त्ति वाहरन्तम्मि पिअअमे उअह ओणअमुहीए ।

विउणावेट्ठिअजहणत्थलाइ लज्जाणअं हसिअम् ॥ ३ ॥

१. 'निगडायितेन' घ. २. 'विच्छुहमाणम्मि दडुलोअम्मि' ग. ३. 'विक्षिप्यमाणे' ग. 'प्रक्षिपता' घ. ४. 'मासं' ग. ५. 'म्रिये न रोदिष्ये' ग.

[एहीति व्याहरति प्रियतमे पश्यतावनतमुख्या ।

द्विगुणावेष्टितजघनस्थलया लज्जावनतं हसितम् ॥]

कोऽपि युवत्याः कटाक्षवर्णनेन स्वाभिलाषं प्रकाशयन्नाह—

मारेसि कं ण मुद्धे इमेण रत्तन्ततिकखविसमेण ।

भुलआचावविणिग्गअतिकखअरद्धच्छिभझेण ॥ ४ ॥

[मारयसि कं न मुग्धे अनेन रत्तान्ततीक्ष्णविषमेण ।

भ्रूलताचापविनिर्गततीक्ष्णतरार्धाक्षिभझेण ॥]

भल्लः काण्डभेदः । 'रत्तन्ततिकख' इति स्थाने 'पेरन्तरत्त' इति क्वचित्पाठः । तत्र 'पर्यन्तरत्त' इत्यर्थः ।

नायिकाया अनुरागातिशयं प्रकाशयन्ती दूती जारमाह—

तुह दंसणे सअह्णा सहं सोऊण णिग्गदा जाइं ।

तइ बोलीणे ताइं पआइँ वोढव्विआ जाआ ॥ ५ ॥

[तव दर्शने सतृष्णा शब्दं श्रुत्वा निर्गता यानि ।

त्वयि व्यतिक्रान्ते तानि पदानि वोढव्या जाता ॥]

शब्दं तव वचनम् । त्वदर्शनोत्साहेन गमनावसरेऽज्ञातक्लेशा त्वयि नेत्रपथातीते पुनर्गतजीवितेव परसंवाह्या जातेत्यर्थः ॥

किमित्येवं कृशासीति पृष्ट्वा कापि मातुलानीमाह—

ईसामच्छररहिएहिँ णिव्विआरेहिँ मामि अच्छीहिँ ।

एहिँ जणो जणम्मिव णिरिच्छए कहँ ण छिँज्जामो ॥ ६ ॥

[ईर्ष्यामत्सररहिताभ्यां निर्विकाराभ्यां मातुलान्यक्षिभ्याम् ।

इदानीं जनो जनमिव निरीक्षते कथं न क्षीयामहे ॥]

जनः प्रियः । जनमिव साधारणमिव । निरीक्षते अस्मानिति शेषः । ईर्ष्यामत्सरभ्रू-
भङ्गादिकमनुरागज्ञापकमिति तदभावात्क्षीणास्मीति भावः ॥

दुहितुः किञ्चिदपि सौभाग्यसूचकं मातरं तोषयतीति कापि कस्यचिच्छिक्षार्थमाह—

वाउद्धअसिचअविहाविओरुदिट्ठेण दन्तमग्गेण ।

वहुमाआ तोसिज्जइ णिहाणकलसस्स व मुहेण ॥ ७ ॥

[वातोद्धतसिचयविभावितोरुदष्टेन दन्तमार्गेण ।

वधूमाता तोष्यते निधानकलशस्येव मुखेन ॥]

१. 'पेरन्तरत्त' ख. २. 'पर्यन्तरत्त' घ. ३. 'खिज्जामो' क. ४. 'मातुलि' घ.
५. 'तुष्यति' ग.

दन्तमार्गेण दन्तक्षतेन । ऊरुप्रदेशे दन्तनखघातादयः सुरते कर्तव्या इति कामशास्त्र-
मनुसृन्येदमुक्तम् ॥

काप्यात्मन ईर्ष्यादोष परिहरन्ती स्नेहानुवृत्त्यर्थं वल्लभमाह—

हिअअम्मि वससि ण करेसि मण्णुअं तह वि णेहभरिएहिं ।

सङ्किज्जसि जुअइसुहावगलिअधीरेहिं अम्हेहिं ॥ ८ ॥

[हृदये वससि न क्रगेषि मन्तुं तथापि स्नेहभृताभिः ।

शङ्क्यसे युवतिस्वभावगलितधैर्याभिरस्त्राभिः ॥]

यद्यपीदानीं स्निह्यसि तथाप्यत्रे विरंस्यस इति मनसि सशयो भवतीति भावः ॥

कापि कस्मिन्नपि यूनि जाताभिलाषा तस्य भार्यापारतन्त्र्यं सूचयन्ती स्वहृदयं
सनिर्वेदमाह—

अण्णं पि किं पि पाविहिसि मूढ मा तम्म दुक्खमेत्तेण ।

हिअअ पराहीणजणं मग्गन्त तुह केत्तिअं एअम् ॥ ९ ॥

[अन्यदपि किमपि प्राप्स्यसि मूढ मा ताम्य दुःखमात्रेण ।

हृदय परार्धीनजनं भ्रूयमाणं तव कियन्मात्रमिदम् ॥]

किमपीति । प्रियविप्रयोगवच्छरीरवियोगमपि प्राप्स्यसीत्यर्थः । मरणस्य पदान्तरेणो-
पादानममङ्गलदाय्यश्लीलावहमिति किमपीत्युक्तम् ॥

कान्तस्यान्यस्यामनुरागम्, तस्याश्च तस्मिन्द्वेषम्, आत्मनश्च तस्मिन्ननुरागम्, तस्य
चात्मनि द्वेषं सूचयन्ती कापि नायकमाह—

वेसोसि जीअ पंसुल अहिअअरं सा हु वल्लभा तुज्झ ।

इअ जाणिऊण वि मए ण ईसिअं दड्डुपेम्मस्स ॥ १० ॥

[द्वेष्योऽसि र्यस्याः पांसुल अधिकतरं सा खलु वल्लभा तव ।

इति ज्ञात्वापि मया न ईर्ष्यितं दग्धप्रेम्णः ॥]

चतुर्थ्यर्थे षष्ठी । प्रेम्णे इत्यर्थः । अयमाशयः—अवगतं मया यो यस्त्वां द्वेष्टि स स
तव प्रियः । यथा मत्सपत्नी । मया तु त्वय्यनुरक्त्या कथं प्रियया भवितव्यमिति
प्रेम्णे कथं नेर्ष्यां न कृतेति । यद्वा प्रेम्ण इति पञ्चमी । ईर्षितमिति तुभ्यमिति शेषः ।
प्रेमवशाद्वेषो न कृत इत्यर्थः । चिकीर्षितापीर्ष्यां प्रेम्णा प्रतिबन्धान्न निष्पन्नेति भावः ॥

अपरा निपुणा प्रेयसी खुवन्त कान्त कापि सेर्ष्यमाह—

सा आम सुहअ गुणरूअसोहिरी आम णिग्गुणा अ अहम् ।

भण तीअ जो ण सरिसो किं सो सव्वो जणो मरउ ॥ ११ ॥

१. 'स्नेहभृतैः' क-ख. २. 'धैर्यैः' क-ख. ३. 'कामयमानं तव कियदेतत्' ग,
'इच्छन् तव कियदेतत्' घ. ४. 'जीव' घ.

[मा सैत्यं सुभग गुणरूपशोभेनशीला सैत्यं निर्गुणा चाहम् ।
भण तस्या यो न सदृशः किं स सर्वो जनो त्रियताम् ॥]

आमेति सेष्यानुमतौ । सत्यमित्यर्थः । अत्र विपरीतलक्षणया रागान्धस्त्वं गुणरूपा-
दिकं विवेक्तमेव न जानासि । यतोऽधमामपि तां बहु मन्यस इति व्यज्यते ॥

दुर्लभाभिलाषिणी खगृहवधू प्रति वैराग्यजननार्थं कोऽपि पुत्रमाह—

सन्तमसन्तं दुःखं सुहं च जाओ धरस्स जाणन्ति ।

ता पुत्तअ महिलाओ सेसाओ जरा मनुस्साणम् ॥ १२ ॥

[सदसदुःखं सुखं च या गृहस्य जानन्ति ।

ताः पुत्रक महिलाः शेषा जरा मनुष्याणम् ॥]

गृहस्य गृहपते । सद्विद्यमानम् । असदविद्यमानम् । वस्तिवति शेषः । यथा सुखं
दुःखं च या जानन्ति ता महिला गृहिणीपदाधिकारिण्यः । अन्यास्तु जराः क्षयहेतु-
त्वादित्यर्थः ॥

कापि सख्याः शिक्षार्थं कुलवधूवृत्तमाह—

हसिएहिँ उवालम्भा अञ्जुवचारेहिँ खिज्जिअव्वाइं ।

अंसूहिँ मण्डणाइं एसो मग्गो सुमहिलाणम् ॥ १३ ॥

[हसितैरुपालम्भा अत्युपचारैः खेदितव्यानि ।

अश्रुभिः कलहा एष मार्गः सुमहिलानाम् ॥]

हसितैर्न तु रोदनैः, उपचारैर्न तु गृहकृत्परित्यागेन, अश्रुभिर्न तु वचोभिरिति भावः ॥
जनापवादभयादकृतसंभाषणे प्रेयस्यलमुद्वेगेनेति वदन्तीं दूर्तीं कापि सप्रणयरो-

प्रमाह—

उल्लावो मा दिज्जउ लोअविरुद्ध त्ति णाम कैऊण ।

सँमुहापडिए को उण वेसेँ वि दिट्ठिँ ण पाडेइ ॥ १४ ॥

[उल्लापो मा दीयतां लोकविरुद्ध इति नाम कृत्वा ।

सँमुखापतिते कः पुनर्द्वेष्येऽपि दृष्टिं न पातयति ॥]

लोकविरुद्ध इति कृत्वा उल्लापो मा दीयतां नामेत्यन्वयः । नाम कृत्वा नामग्रहण-
पूर्वकमिति वार्थः । यद्वा परपुरुषसंभाषणं लोकविरुद्धमिति मा क्रियताम्, कथं पुनस्त-
मद्राक्षीरपि नेति साध्वी प्रति कुट्टन्या इयमुक्तिः ॥

अतिक्रान्तसंकेतसमयां प्रियां प्रति कोऽपि सोद्वेगमाह—

साहीणपिअमो दुग्गओ वि मण्णइ कअत्थमप्पाणम् ।

पिअरहिओ उण पुहविं वि पाविउण दुग्गओ च्चेअ ॥ १५ ॥

[स्वाधीनप्रियतमो दुर्गतोऽपि मन्यते कृतार्थमात्मानम् ।

प्रियरहितः पुनः पृथिवीमपि प्रीप्य दुर्गत एव ॥]

स्वाधीना प्रियतमा यस्येति बहुव्रीहिः । यद्वा किमेव कृशोऽसीति पृष्टस्येच्छानुरूपां प्रियामलभमानस्य कस्यचिदियमुक्तिः ॥

कामप्यप्राप्तप्रियतमां लोकभयाद्दृढयस्थित स्नेह गोपायन्तीं सख्याह—

किं रुवसि किं अ सोअसि किं कुप्पसि सुअणु एकमेकस्स ।

पेम्मं विसं व विसमं साहसु को रुन्धिउं तरइ ॥ १६ ॥

[किं रोदिषि किं च शोचसि किं कुप्यसि सुतनु ऐकैकसौ ।

प्रेम विषमिव विषमं कथय को रोद्धुं शक्नोति ॥]

प्रेमवशाद्दुःखिता भवसि, वृथास्मान्प्रति कोप मा कृथा इति भावः ॥

अनभ्युपगच्छन्तीमभियोज्यामङ्गीकारयितु दूती स्वानुभूतानामेवार्थानामनित्यता-
माह—

ते अ जुआणा ता गामसंपआ तं च अम्ह तारुण्णम् ।

अक्खाणअं व लोओ कहेहि अम्हे वि तं सुणिमो ॥ १७ ॥

[ते च युवानस्ता ग्रामसंपदस्तच्चास्माकं तारुण्यम् ।

आख्यानकमिव लोकः कथयति वयमपि तच्छृणुमः ॥]

तदेवमनित्ये संसारे तथाविधविदग्धवल्लभसमागमसुख किमिति परिहरसीति भावः ॥

कान्तेन सशपथमनुनीयमानायाः कान्तं प्रत्युद्वेगवादं सखी सखीमाह—

वाहौहभरिअगण्डाहराए भणिअं विलक्खहसिरीए ।

अज्ज वि किं रुसिज्जइ सवहावस्थं गअं पेम्मम् ॥ १८ ॥

[बाष्पौघधृतगण्डाधरया भणितं विलक्षहसनशीलया ।

अद्यापि किं रुष्यते शपथावस्थां गतं प्रेम ॥]

१. 'प्रियारहितः' ग. २. 'प्राप्तो' घ. ३. 'किसाअसि' ग. ४. 'किं कृशासि' ग.
५. 'एकैकस्स' घ. ६. 'बाहोळफुरिअ' ग. ७. 'बाष्पाद्रैस्फुरित' ग. ८. 'भरित' घ.
९. 'विलक्षं हसन्त्या' ग.

अकारणमिति । अदोपमेव दोषं कल्पयन्त्येत्यर्थः । माननिमित्तं विनैवाग्रहेण निमित्तं संपाद्य मानं विदधत्या मयानुनयन्नपि प्रियो नावलोकितः संप्रत्यदर्शनात्स्नेह एव गतः । कथं तद्दर्शनं भवतीति भावः । प्रौढवादः सप्रतिज्ञप्रत्याख्यानम् ॥

कृतापराधमनुनयन्तं कापि सचाट्टपालम्भमाह—

अणुऊलं विअ वोत्तुं बहु वल्लह वल्लहे वि वेसे वि ।

कुविअं अ पसाएउं सिक्खइ लोओ तुमाहित्तो ॥ २३ ॥

[अनुकूलमेव वक्तुं बहुवल्लभ वल्लभेऽपि द्वेष्येऽपि ।

कुपितं च प्रसादयितुं शिक्षते लोको युष्मत्तः ॥]

सर्वमिदं तव हृदयबाह्यमित्यर्थः ॥

मन्दस्नेहस्य कान्तव्याकृतज्ञतां सूचयन्ती कापि सखीमाह—

लज्जा चत्ता सीलं अ खण्डिअं अजसघोसणा दिण्णा ।

जस्स कए णं पिअसहि सो च्चेअ जणो जाओ ॥ २४ ॥

[लज्जा त्यक्ता शीलं च खण्डितमयशोघोषणा दत्ता ।

यस्य कृतेन (कृते ननु) प्रियसखि स एव जनो जनो जातः ॥]

जनो वल्लभः । जन उदासीनो जातः ॥

कापि सख्याः शिक्षार्थं कुलवधूवृत्तमाह—

हसिअं अदिट्टदन्तं भमिअमणिक्कन्तदेहलीदेसम् ।

दिट्टमणुक्खित्तमुहं एसो मग्गो कुलवहूणम् ॥ २५ ॥

[हसितमदृष्टदन्तं भ्रमितमनिष्क्रान्तदेहलीदेशम् ।

दृष्टमनुत्क्षिप्तमुखमेष मार्गः कुलवधूनाम् ॥]

निष्परिच्छदतया केनापि निन्द्यमानस्य नायकस्यान्यापदेशेन गुणातिशयं दूती नायिकामनुकूलयितुमाह—

धूलिमइलो वि पङ्काङ्किओ वि तणरइअदेहभरणो वि ।

तह वि गैइन्दो गरुअत्तणेण ढक्कं समुव्वहइ ॥ २६ ॥

[धूलिमलिनोऽपि पङ्काङ्कितोऽपि तृणरचितदेहभरणोऽपि ।

तथापि गैजेन्द्रो गुरुकत्वेन ढक्कां समुद्रहति ॥]

तस्यैव परं यशोडिण्डिम इति भावः । भरणं पोषणम् । गुरुत्वं परिमाणविशेष उत्कर्षश्च ॥

विपद्यपि महतामुन्नतचित्तत्वमेवेति सखी शिक्षयितुं कापि सुभटस्त्रियाश्चौरेण सहो-
क्तिप्रत्युक्तिकौशलमाह—

करमरि कीस ण गम्मइ को गव्वो जेण मसिणगमणासि ।

अदिट्टदन्तहसिरीअ जम्पिअं चोर जाणिहिसि ॥ २७ ॥

[बन्दि किमिति न गम्यते को गर्वो येन मसृणगमनासि ।

अदृष्टदन्तहसनशीलया जल्पितं चोर ज्ञास्यसि ॥]

करमरी हठहृतमहिला । गमनासीत्यनन्तरमिति चौरैणोक्ते सतीति शेषः । ज्ञास्य-
सीति । मम प्रिय आगच्छति क्षणादेवास्याविनयस्य फलमनुभविष्यसीति भावः । 'अ-
दिट्ट' इति स्थाने 'दरदिट्ट' इति क्वचित्पाठः । तत्र 'ईषदृष्टदन्तहसनशीलया' इत्यर्थः ॥

कस्याप्यभियोगनिरासार्थं दूती नायिकाया ऋतुकालेऽप्यनवसरमाह—

थोरंसुएहिं रुण्णं सवत्तिवग्गेण पुप्फवइआए ।

भुअसिहरं पइणो पेछिऊण सिरलग्गतुप्पलिअम् ॥ २८ ॥

[स्थूलाश्रुभी रुदितं सपत्नीवर्गेण पुष्पवत्याः ।

भुजशिखर पत्युः प्रेक्ष्य शिरोलभवर्णघृतलिप्तम् ॥]

रजस्वलामपि तामसौ न त्यजतीति भावः । तुप्पं वर्णघृतं तेन लिप्तं तुप्पलिअम् ॥
अनुरागातिशयात्कोऽपि रजस्वलामाह—

लोओ जूरइ जूरउ वअणिज्जं होइ होउ तं णाम ।

एहि णिमज्जसु पासे पुप्फवइ ण एइ मे णिदा ॥ २९ ॥

[लोकः खिद्यते खिद्यतु वचनीयं भवति भवतु तन्नाम ।

एहि निर्मेज्ज पार्श्वे पुष्पवति नैति मे निद्रा ॥]

वचनीय परीवादः ॥

काप्यनुरागातिशयं व्यञ्जयन्ती कमपि युवानमाह—

जं जं पुलएमि दिसं पुरओ लिहिअ व्व दीससे तत्तो ।

तुह पडिमापडिवाडि वहइ व सअलं दिसाअक्कम् ॥ ३० ॥

[यां यां प्रलोकयामि दिशं पुरतो लिखित एव दृश्यसे तत्र ।

तव प्रतिमापरिपाटीं वहर्ताव सकलं दिशाचक्रम् ॥]

प्रतिमा प्रतिबिम्बम् । परिपाटी परम्परा ॥

एकत्रानुभूतव्यसनस्तत्सदृशमन्यदभिलषितमप्युपादातुं विभेतीलन्यापदेशेन कोऽप्याह—

ओसरइ धुणइ साहं खोक्खामुहलो पुणो समुल्लिहइ ।

जम्बूफलं ण गेहइ भमरो त्ति कई पढमडको ॥ ३१ ॥

[अपसरति धुनोति शाखां खोखासुखरः पुनः समुल्लिखति ।

जम्बूफलं न गृह्णाति भ्रमर इति कपिः प्रथमदृष्टः ॥]

खोखा ध्वनिविशेषः । डको दृष्टः ॥

अभिमतमपि मूढः प्रतिकूलबुद्ध्या परिहरतीलन्यापदेशेन कोऽपि सहचरमाह—

ण छिवइ हत्थेण कई कैण्डूइभएण पत्तलणिउञ्जे ।

दरल्लम्बिअगोच्छकइकच्छुसच्छहं वाणरीहत्थम् ॥ ३२ ॥

[न स्पृशति हस्तेन कपिः कैण्डूतिभयेन पत्रलनिकुञ्जे ।

ईर्षलम्बितगुच्छकपिकच्छुसदृश वानरीहस्तम् ॥]

पत्रलः पत्रवहुलः । कपिकच्छु. शूकशिम्बिः । प्राकृते पूर्वनिपातानियमात्कपिकच्छुगुच्छसदृशमित्यर्थः ॥

नायिकाया विरहदु खं सूचयन्ती दूती नायकमाह—

सरसा वि सूसइ च्चिअ जाणइ दुक्खाइँ मुद्धहिअआ वि ।

रत्ता वि पण्डुर च्चिअ जाआ वरई तुह विओए ॥ ३३ ॥

[सरसापि शुष्यत्येव जानाति दुःखानि मुग्धहृदयापि ।

रक्तापि पाण्डुरैव जाता वराकी तव वियोगे ॥]

रस आर्द्रता इच्छा च । मुग्धत्वमचेतनत्वमितिकर्तव्यताबुद्धिराहित्यं च । रक्तत्वं रक्तवर्णता प्रीतिविशेषश्च । अत्र विरोधालंकारेण त्वद्विरहे सर्वमेव सुखसाधनं दुःखसाधनं जातं तस्या इति वस्तु व्यज्यते ॥

कामपि गलितयौवनां शीघ्रुपानेन जातमन्मथविकारां शरद्वर्णनच्छलेनोपहसन्नागरिकः सहचरमाह—

आरुहइ जुण्णअं खुज्जअं वि जं उअह वल्लरी तउसी ।

णीलुप्पलपरिमलवासिअस्त सरअस्स सो दोसो ॥ ३४ ॥

१. 'सुखरः समुल्लसति' घ. २. 'खोखा वानरशब्दः' इति कुलबालदेवः. ३. 'कण्डू-अण' ख-ग. ४. 'कण्डूयन' ग-घ. ५. 'दरलम्बित' ग-घ. ६. 'सच्छवि' घ.

[आरोहति जीर्णं कुब्जकमपि यत्पश्यत वेह्लेनशीला त्रपुसी ।
नीलोत्पलपरिमलवासितायाः शरदः स दोषः ॥]

वेह्लेनशीला वेष्टनशीला । पक्षे वेष्टिताख्यालिङ्गनशीला । त्रपुसी कर्कटीविशेषः ।
दोषो विकारः । कर्कट्याः पुनर्नवीकरणं जरत्याश्च युवतीकरण विकारः । शरत्काले क-
र्कटीलता यदेव पुरस्थित शुष्कमार्द्र सरलं वक्रं वा तदेवारोहति । तथा लतेव लता
नायिका वृद्ध तरुण वा यद्भजते नायमस्या दोषः । किंतु सरअस्स सरकस्य इक्षुम-
वस्य । 'सरकोऽस्त्री शीघ्रुपाने शीघ्रुपात्रेक्षुशीघ्रुनोः' इति मेदिनी ॥

पूर्वमनुभूतमधूत्सवा कापि प्रियविरहिता पुनः प्रवृत्ते मधूत्सवे सखीमाह—

उत्पहपहाविहजणो पविजिम्हिअकलअलो पहअतूरो ।

अव्वो सो ज्ञेअ छणो तेण विणा गामडाहो व्व ॥ ३५ ॥

[उत्पथप्रधावितजनः प्रविजृम्भितकलकलः प्रहततूर्यः ।

दुःखं स एव क्षणस्तेन विना ग्रामदाह इव ॥]

उत्पथेति । उत्सवतरलतया संप्रमाचेति भावः । अव्वो इति दुःखाभिनये आश्चर्ये
ण । क्षणो मधूत्सवः ॥

खलसङ्गनिषेधाय कापि सखीमाह—

उल्लावन्तेण ण होइ कस्स पासट्टिएण ठड्डेण ।

सङ्का मसाणपाअवलम्बिअचोरेण व खलेण ॥ ३६ ॥

उल्लापयमानेन न भवति कस्य पार्श्वस्थितेन स्तब्धेन ।

शङ्का श्मशानपादपलम्बितचोरेणेव खलेन ॥]

उल्लापयमानेन संभाषमाणेन, पक्षेऽभिभवता । पार्श्वस्थितेन संनिहितेन, पक्षे पास-
ट्टिएण पार्श्वस्थितेन । स्तब्धेन अहकारात्, पक्षे प्राणवायुविरहात् । शङ्का वितर्कः,
पक्षे भयम् ॥

प्रोषितभर्तृका प्रियसखीं समाश्रासयितुं राखी पितृभगिनीमाह—

असमत्तगुरुअकज्जे एहिं परिए धरं णिअत्तन्ते ।

णवपाउसो पिउच्छा हसइ व कुडअट्टहासेहिं ॥ ३७ ॥

१. 'जीर्णखर्जूरमपि' ग. २. 'वैपमाना दुन्दुरि.' ग, 'वहरी त्रपुसी' घ. ३. 'वा-
सेतस्य सरसः को दोषः' घ. ४. 'सूचितः स एव' घ. ५. 'उल्लापयमानेन' ग,
उल्लापन्तेन' घ.

[असमाप्तगुरुककार्ये इदानीं पथिके गृहं प्रतिनिवर्तमाने ।
नवप्रावृट् पितृष्वसः हसतीव कुटजाट्टहासैः ॥]

मच्चिह्नदर्शनाद्भीत प्रियाविरह सोढुमशक्नुवन्नकृतकार्य एवाहं गृहं प्रति प्रस्थित इति
हसतीवेत्यर्थः । कुटजकुसुमान्येवाट्टहासः ॥

कोऽपि वर्षोपक्रमे गृहगमनाय पथिकं त्वरयितुमाह—

दूट्टूण उण्णामन्ते मेहे आमुक्कजीविआसाए ।

पहिअघरिणीअ डिम्भो ओरुण्णमुहीअ सच्चविओ ॥ ३८ ॥

[दृष्ट्वा उन्नमतो मेघानामुक्तजीविताशया ।

पथिकगृहिण्या डिम्भोऽर्वरुदितमुख्या दृष्टः ॥]

अवरुदितेति । का गतिरस्य भवित्री केन वायं पालयितव्यइत्यादि चिन्तयेति भावः ॥
कलहान्तरितया कोपोज्झितभूषणयापि न त्यक्तानि बलयानीति तस्याः सुज्ञतां वि-
रहकृशता च सूचयन्ती सखी तत्कान्तमाह—

अविहवलकखणवलअं ठाणं णेन्तो पुणो पुणो गलिअम् ।

सहिसत्थो च्चिअ माणंसिणीअ वलआरओ जाओ ॥ ३९ ॥

[अविधवालक्षणवलयं स्थानं नैन्यनुनःपुनर्गलितम् ।

सखीसार्थ एव मनस्विन्या वलयकारको जातः ॥]

वलयकारको वलयपरिधापकः ॥

कोऽपि दुर्गतविरहिवध्वस्थाप्रकटनेन प्रावृषि पथिकं त्वरयितुमाह—

पहिअवहू विविरन्तरगलिअजलोह्ले घरे अणोलं पि ।

उहेसं अविरअवाहसलिलणिवहेण उह्लेइ ॥ ४० ॥

[पथिकवधूर्विर्वरान्तरगलितजलाद्रै गृहेऽनार्द्रमपि ।

उद्देशमविरतबाष्पसलिलनिवहेनार्द्रयति ॥]

उद्देशं स्थानम् ॥

१. 'पीयूषा' घ. २. 'अवनतमुख्या' ग. ३. 'सत्यायितः' ग, 'संस्थापितः' घ.
४. 'अविधव्य' ग, 'अविभव' घ. ५. 'नीयमानं' ग. ६. 'सखीहस्तः' ग-घ. ७. 'बलया-
कारो' ग, 'बलयारजो' घ. ८. 'कुडन्तर' ख-ग. ९. 'कुड्यान्तर' ग-घ. १०. 'प्र-
देश' ग.

अनुनेतुमागतं प्रियवादिनं कान्तं कलहान्तरिता सपरितोषमाह—

जीहाइ कुणन्ति पिअं भवन्ति हिअअम्मि णिवुइं काउम् ।

पीडिज्जन्ता वि रसं जणन्ति उच्छू कुलीणा अ ॥ ४१ ॥

[जिह्वायां (पक्षे—जिह्वया) कुर्वन्ति प्रियं भवन्ति हृदये निर्वृतिं कर्तुम् ।

पीड्यमाना अपि रसं जनयन्तीक्ष्वः कुलीनाश्च ॥]

जिह्वयामिति मधुरत्वात्प्रियंवदत्वाच्च । भवन्ति प्रभवन्ति । निर्वृतिं संतापस्योद्धे-
गस्य च प्रशमम् । पीड्यमाना दन्तेन निप्रुरवादेन च । रसं द्रवं प्रीतिं च ॥

वसन्तागमं प्रति विप्रतिपद्यमानां श्वश्रूं वधूराह—

दीसइ ण च्चअमउलं अत्ता ण अ वाइ मलअगन्धवहो ।

पत्तं वसन्तमासं साहइ उक्कण्ठिअं वेअं ॥ ४२ ॥

[दृश्यते न चूतमुकुलं श्वश्रु न च वाति मलयगन्धवहः ।

श्रीं वसन्तमासं कथयत्युत्कण्ठितमेव ॥]

उत्कण्ठितमुत्कण्ठा । 'उत्कण्ठिअ चेअ' इति पाठे 'उत्कण्ठितं चेत.' इत्यर्थः ॥

आश्वसिहि प्रोषितपतिके न जातो वसन्तारम्भ इति वदन्ती सखीं वसन्तागममूचकं
सहकाराङ्कुरोद्गमं प्रतिपादयन्ती नायिका आह—

अम्बवणे भमरउलं ण विणा कज्जेण ऊमुअं भमइ ।

कत्तो जलणेण विणा धूमस्स सिहाउ दीसन्ति ॥ ४३ ॥

[आम्रवने अमरकुलं न विना कार्येणोत्सुक भ्रमति ।

कुतो ज्वलनेन विना धूमस्य शिखा दृश्यन्ते ॥]

कुसुमेन विना नालिनो भ्रमन्ति । जाते चाम्रकुसुमे प्रवृत्त एव वसन्त इति भावः ॥

कथमनलंकृतामेवैना बहुमन्यस इति वदन्तं सहचरं विदग्धः कश्चिदाह—

दइअकरग्गहलुलिओ धम्मिहो सीहुगन्धिअं वअणम् ।

मअणम्मि एत्तिअं चिअ पसाहणं हरइ तरुणीणम् ॥ ४४ ॥

[दयितकरग्रहलुलितो धम्मिहः सीधुगन्धितं वैदनम् ।

भेदने एतावदेव प्रसाधनं हरति तरुणीनाम् ॥]

मदने वसन्तोत्सवे । मदन इति निमित्तसप्तमी वा । मदननिमित्तमित्यर्थः । एतावदे-
वेति किमन्यैः सुरतानुपयोगिभिर्भारभूतैरिति भावः । किमलंकारेण । शीघ्रं कान्तमभिस-
रेति दूतीवचनमिति कश्चित् ॥

१. 'करन्ति' ख-ग. २. 'हरन्ति' ख. ३. 'हरन्ति हृदय' घ. ४. 'चेअं' ख.
५. 'आगत च' ग. ६. 'चेतः' ग-घ. ७. 'वचनं' घ. ८. 'मदनोऽयेतावदेव' ग.

ग्राम्यस्त्रियोऽप्यत्र रमणीया भवन्तीति वसन्तं स्तुवन्कोऽपि सहचरमाह—

गामतरुणीओं हिअअं हँरन्ति छेआणँ थणहरिल्लीओ ।

मअणे कुँसुम्भरञ्जिअकञ्चु[इ]आहरणमेत्ताओ ॥ ४५ ॥

[ग्रामतरुण्यो हृदयं हरन्ति विद्वैग्धानां स्तनभारवत्यः ।

मैदने कुसुम्भरागयुक्तकञ्चुकाभरणमात्राः ॥]

प्राकृते पूर्वनिपातानियमात्कञ्चुकमात्राभरणा इत्यर्थः । एतादृश्यो ग्रामतरुण्योऽपि स्पृहणीया भवन्ति किमुत परार्थ्यभूषणभूषिताः प्रमदा इति भावः ॥

कोऽप्यनभ्यस्तप्रवासस्याभिनवपथिकस्य विरहवैधुर्यं कथयन्प्रवासनिषेधार्थं तमाह—

आलोअन्त दिसाओ ससन्त जम्मन्त गन्त रोअन्त ।

मुच्छन्त पडन्त खलन्त पहिअ किं ते पउत्थेण ॥ ४६ ॥

[आलोकयन्दिशः श्वसञ्जृम्भमाण गायन्स्वदन् ।

मूर्च्छन्पतन्स्खलन्पथिक किं ते प्रवसितेन ॥]

चकितत्वाद्दिशोऽवलोकयन्, प्रियास्मरणाच्छ्वसन्, मदनायासेन जृम्भमाणः, दुःखविनोदाय गायन्, पुनश्च निर्वेदाद्भुदन्, तदेकासक्तचित्तत्वान्मूर्च्छादिविकार प्राप्नुवन् हे पथिक, ते प्रवसितेन प्रवासेन किं फलम् । गतोऽप्यकृतकृत्य एवागमिष्यसि । यतः सप्रत्येव तवेयमवस्था किञ्चिद्दूरगमने तु कीदृश्यवस्था भविष्यतीति न जाने । तस्मान्निवर्तस्वेति भावः ॥

सख्या रहोवृत्तमनुसंधातुं गता कथमियच्चिरेणागतासीति सख्या पृष्ट्वा सखी तामाह—

दट्टूण तरुणसुरअं विविहविलासेहिँ करणसोहिल्लम् ।

दीओ वि तग्गअमणो गअं पि तेलं ण लक्खेइ ॥ ४७ ॥

[दृष्ट्वा तरुणसुरतं विविधविलासैः करणशोभितम् ।

दीपोऽपि तद्गतमना गतमपि तैलं न लक्षयति ॥]

विविधविलासैरालिङ्गनचुम्बनादिभिरुपलक्षितम् । करणैरुत्तानकतिर्यग्विपरीतायासनबन्धैः कामशास्त्रोक्तैः शोभितम् । तरुणी च तरुणश्च तरुणौ । 'पुमान्त्रिया' इत्येकशेषः । तयोः सुरतम् । अचेतनो दीपोऽपि यत्र स्पृहयालुस्तत्र मद्दिधो जनः कथं कौतुकाद्विरमतीति भावः ॥

१. 'हरन्ति पीवरथणहरुल्लीउ' ग. २. 'कुसुम्भराइल्ल' ग. ३. 'छेकाना' घ. ४. 'प्रौढस्तनभाराः' ग. ५. 'मदयन्ति कुसुम्भरक्तकञ्चुकिमात्राभरणाः' ग, 'मन्ये कुसुम्भरञ्जितकञ्चुकिकाहरणमात्राः' घ. ६. 'आलोकयमान' ग. ७. 'गच्छन्' ग. ८. 'पृच्छन्' घ. ९. 'कि त्वया' ग. १०. 'प्रोषितेन' ग-घ. ११. 'करणसौहित्यम्' घ.

प्रौढकामिनीमुत्कण्ठयितुं दूती सवैदग्ध्य नायकस्य सुरतमल्लत्वमन्यापदेशेनाह—

पुणरुत्तकरप्फालणउहअतडुल्लिहणवडुणसआइं ।

जूहाहिवस्स माए पुणो वि जइ णम्मआ सहइ ॥ ४८ ॥

[पुनरुत्तकरास्फालनोभयतटोल्लिखनपीडनशतानि ।

यूथाधिपस्य मातः पुनरपि यदि नर्मदा सैहते ॥]

पुनरुत्तं पुनःपुनर्यत्करेण शुण्डादण्डेन हस्तेन चास्फालनं जलादौ पृष्ठादौ च । उभयतटं कूलद्वयं पार्श्वद्वयं च यूथाधिपस्य गजमुख्यस्य गोष्ठीनायकस्य च । मातरित्वा-
श्चर्यपरं संवोधनम् । नर्मदा नदी नर्म सुखं ददातीति व्युत्पत्त्या क्रीडानुकूला न यिका
च । यद्वा सुन्दरि, कान्तसमीपं गच्छेति वदन्ती सखी प्रति नायिकाया इयमुक्तिः ।
गच्छेयमहं यदि तस्य सुरतदुर्विदग्ध्यस्य स्तनतटनखक्षतोरस्ताडनमर्दनशतानि पुनरपि
सहेयमिति भावः ॥

पूर्वसकेतितस्य कार्पासीक्षेत्रस्य सापायतां खगृहस्यैव खच्छन्दप्रचारयोग्यता च
जारं श्रावयन्ती कुलटा सोद्वेगमाह—

बोडसुणओ विअण्णो अत्ता मत्ता पैई वि अण्णत्थो ।

फलिहं व मोडिअं महिसएण को तस्स साहेउ ॥ ४९ ॥

[दुष्टशुनको विपन्नः श्वश्रूर्मत्ता पतिरप्यन्यस्थः ।

कार्पास्यपि भग्ना महिषकेण कस्तस्य कथयतु ॥]

बोडो दुष्टश्छिन्नकर्णो वा । 'बुडूसुणओ' इति पाठे वृद्धशुनक इत्यर्थः । अन्यस्थो
देशान्तरस्थः । कार्पासी कर्पासवाटिका । तस्य निजपत्युः । 'अत्ता मत्ता पैई वि अ-
ण्णत्थो' इति स्थाने 'अत्ता मत्तो पैई णवसुराए' इति क्वचित्पाठः । तत्र श्वश्रु इति
संबोधनम् । पतिर्नवसुरया मत्त इत्यर्थः ॥

कान्तेन खमुखेन दत्ता मदिरा मानिन्या मानमपनयतीति शिक्षयन्नागरिकः सहच-
माह—

सकअग्गहरहसुत्ताणिआणणा पिअइ पिअमुहविइण्णम् ।

थोअं थोअं रोसोसहं व उअ माणिणी मँइरम् ॥ ५० ॥

[सकचग्रहरमसोत्तानितानना पिबति प्रियमुखवितीर्णाम् ।

स्तोकं स्तोकं रोषौषधमिव पश्य मानिनी मदिराम् ॥]

१. 'कर्षणशतानि' घ. २. 'हसते' घ. ३. 'पैई णवसुराए' ख. ४. 'सरअ' ख-
१. ५. 'सकचग्रहोन्नामितानना पिबत्याननविकीर्णम्' घ. ६. 'पश्यत मानिनी सर-
म्' घ.

सकचग्रहं रभसेनोत्तानितमाननं यस्याः सा । 'सरअ' इति पाठे सरकमिक्षुमद्य-
मित्यर्थः ॥

नार्नन्न्वविचारक्षमो भवतीति मध्याह्नवर्णनच्छलेन प्रदर्शयन्नागरिकः सहचरमाह—
गिरसोत्तो त्ति भुअंगं महिसो जीहइ लिहइ संतत्तो ।

महिसस्स क्हवत्थरइर्रो त्ति सप्पो पिअइ लालम् ॥ ५१ ॥

[गिरिस्रोत इति भुजंगं महिषो जिह्वया लेढि सतप्तः ।

महिषस्य कृष्णप्रस्तरश्चर इति सर्पः पिबति लालाम् ॥]

महिषस्य लालामिति संबन्धः ॥

शारिकाया रहस्याख्यानतः सलज्जा कुलवधूमांतुलानीमाह—

पञ्जरसारिं अत्ता ण णेसि किं एत्थ रइहराहिन्तो ।

वीसम्भजम्पिआइं एसा लोआणं पअडेइ ॥ ५२ ॥

[पञ्जरशारी मांतुलानि न नयसि किमत्र रतिगृहात् ।

विसम्भजल्पितान्येषा लोकानां प्रकटयति ॥]

पञ्जरशरी पञ्जरबद्धां शारिकाम् । विसम्भजल्पितानि सुरतसमयोदितवचनानि ।
लोकानां लोकेभ्यः । प्रकटयति श्रावयति ॥

दन्तधावनार्थं करञ्जनिकुञ्जपल्लवभञ्जकं भिक्षार्थमटन्तं धार्मिकं भीषयन्ती कुलटा
तन्निषेधार्थमाह—

एइहमेत्ते गामे ण पडइ भिक्ख त्ति कीस मं भणसि ।

धम्मिअ करञ्जभञ्जअ जं जीअसि तं पि दे बहुअम् ॥ ५३ ॥

[एतावनमात्रे ग्रामे न पतति भिक्षेति किंमिति मां भणसि ।

धार्मिकं करञ्जभञ्जकं यज्जीवसि तदपि ते बहुकम् ॥]

द्वयर्थवचनविन्यासेनानुरागं व्यञ्जयन्ती कुलटा कृतगुडवेतनमिक्षुपीडकमाह—

जन्तिअ गुँलं विमग्गसि ण अ मे इच्छाइ वाहसे जन्तम् ।

अणरसिअ किं ण आणसि ण रसेण विणा गुलो होइ ॥ ५४ ॥

[यान्त्रिकं गुडं विमार्गयसे न च ममेच्छया वाहयसि यन्नम् ।

अणरसिकं किं न जानासि न रसेन विना गुँडो भवति ॥]

यान्त्रिको यन्त्रकर्मकारकः, यन्त्रं चक्षुपीडोचितं सुरतोचितं च । रसो द्रवोऽनुरा-

१. 'झरं ति' क-ख. २. 'श्वश्रूः' घ. ३. 'एतावनमात्रेऽपि' क. ४. 'कीदृश'
घ. ५. 'गुलमह मग्गसि' क-ख. ६. 'अन्यरसिक' घ. ७. 'गुणो' घ.

गश्च । अरसिक द्रपस्यानुरागस्य च निवानानभिज्ञ । रसेन द्रवेगानुरागेण च विना गुडो
न भवति नोत्पद्यते न प्राप्यते चेत्यर्थः । अतो मय्यनुरज्यस्वेति भावः ॥

स्नानोत्तीर्णा श्यामाङ्गी सानुरागं वर्णयन्कश्चित्सहचरमाह—

पत्तणिअम्बप्फंसा ह्णाणुत्तिण्णाएँ सामलङ्कीए ।

जलविन्दुएहिँ चिहुरा रुअन्ति बन्धस्स व भएण ॥ ५५ ॥

[प्राप्तनितम्बस्पर्शाः स्नानोत्तीर्णायाः श्यामलाङ्गयाः ।

जलविन्दुकैश्चिकुरा रुदन्ति बन्धस्येव भयेन ॥]

स्नानावसरे लम्बमानाश्चिकुराः प्राप्तसुन्दरीनितम्बस्पर्शसुखाः पुनर्वन्धनेन तत्स्पर्श-
सुखविच्छेदं शङ्कमाना गलज्जलविन्दुच्छलेन रुदन्तीवेति भावः ॥

निर्भयाभिसारयोग्यता जारं प्रति सूचयन्ती कुलटा वटप्रशसामाह—

गामङ्गणणिअडिअकह्वक्ख वड तुज्झ दूरमणुलग्गो ।

तित्तिह्वपडिअक्खकभोइओ वि गामो ग उव्विग्गो ॥ ५६ ॥

[ग्रामाङ्गणनिर्गडितकृष्णपक्ष वट तव दूरमनुलग्नः ।

दौःसाधिकप्रतीक्षकभोगिकोऽपि ग्रामो नोद्विग्नः ॥]

ग्रामाङ्गणे निगडितो बद्धः । सर्वदा स्थापित इति यावत् । तत्कार्यकरत्वात्कृष्णपक्षे
येनेति वटविशेषणम् । निविडच्छायत्वेनान्धकारबाहुल्यात् । तव दूरमनुलग्न इति त्व-
याच्छादितत्वादिति भावः । दौःसाधिकः प्रतीक्षको यस्य भोगिकस्य स दौःसाधिकप्र-
तीक्षकः । तादृशो भोगिको भोगासक्तः कामुकजनो यस्मिन् । एतादृशोऽपि ग्रामो
नोद्विग्नः । अनुपलक्षिताभिसारतया राजभयशून्यत्वात् । तित्तिह्वो दौःसाधिकः । 'त-
न्तिह्वपडिअक्खरभोइओ वि' इति पाठे तु चिन्तापरासहनभोक्तृकोऽपि । तन्तिश्चिन्ता
तद्युक्तः प्रतिखरोऽसहनो भोक्ता ग्रामाधिकारी यत्रेत्यर्थः । तथा च यद्यप्येतस्य ग्राम-
स्य प्रभुरतितीक्ष्णो न्यायान्वेषणतत्परश्च तथापि त्वत्प्रसादाद्ग्रामस्थः कुलटाजनो नो-
द्विजत इति भावः ॥

कापि पतिं श्रावयन्ती सपत्न्याः सोपालम्भं दुश्चरितमाह—

सुप्पं ङडुं चणआ ण भज्जिआ सो जुआ अइक्कन्तो ।

अत्ता वि घरे कुविआ भूआणँ व वाइओ वंसो ॥ ५७ ॥

[सूर्पो दग्ध चणका न भृष्टाः स युवातिक्रान्तः ।

श्वश्रूरपि गृहे कुपिता भूतानामिर्व वादितो वंशः ॥]

१. 'उत्तिण्णतिव्वकरभो इओ वि' ख. २. 'गलित' ग; 'निपतित' घ. ३. 'तत्त्वज्ञ-
प्रतिपक्षभोगिकोऽपि' ग; 'उत्तीर्णतीव्रकरभो इतोऽपि' घ. ४. 'दौःसाधिको द्वारपालः'
इति त्रिकाण्डशेषः. ५. 'सूर्पो दग्धः' ग. ६. 'व' ग.

गश्च । अरसिक द्रवस्थानुरागस्य च निधानानभिन्न । रसेन द्रवेगानुरागेण च विना गुडो न भवति नोत्पद्यते न प्राप्यते चेत्यर्थः । अतो मय्यनुरज्यस्वेति भावः ॥

स्नानोत्तीर्णा श्यामाङ्गी सानुरागं वर्णयन्कश्चित्सहचरमाह—

पत्तणिअम्बप्फंसा ह्माणुत्तिण्णाए सामलङ्गीए ।

जलविन्दुएहिं चिहुरा रुअन्ति बन्धस्स व भएण ॥ ५५ ॥

[प्राप्तनितम्बस्पर्शाः स्नानोत्तीर्णायाः श्यामलाङ्ग्याः ।

जलविन्दुकैश्चिकुरा रुदन्ति बन्धस्येव भयेन ॥]

स्नानावसरे लम्बमानाश्चिकुराः प्राप्तसुन्दरीनितम्बस्पर्शसुखाः पुनर्बन्धनेन तत्स्पर्श-सुखविच्छेदं शङ्कमाना गलज्जलविन्दुच्छलेन रुदन्तीवेति भावः ॥

निर्भयाभिसारयोग्यता जारं प्रति सूचयन्ती कुलटा वटप्रशसामाह—

गामङ्गणणिअडिअकह्वक्ख वड तुज्झ दूरमणुलमो ।

१तित्तिह्वपडिअकभोइओ वि गामो ग उव्विगो ॥ ५६ ॥

[ग्रामाङ्गणनिर्गडितकृष्णपक्ष वट तव दूरमणुलमः ।

दौःसाधिकप्रतीक्षकभोगिकोऽपि ग्रामो नोद्विग्नः ॥]

ग्रामाङ्गणे निगडितो बद्धः । सर्वदा स्थापित इति यावत् । तत्कार्यकरत्वात्कृष्णपक्षो येनेति वटविशेषणम् । निविडच्छायत्वेनान्धकारबाहुल्यात् । तव दूरमणुलम इति त्व-याच्छादितत्वादिति भावः । दौःसाधिकः प्रतीक्षको यस्य भोगिकस्य स दौःसाधिकप्र-तीक्षकः । तादृशो भोगिको भोगासक्तः कामुकजनो यस्मिन् । एतादृशोऽपि ग्रामो नोद्विग्नः । अनुपलक्षिताभिसारतया राजभयशून्यत्वात् । तित्तिह्वो दौःसाधिकः । 'त-न्तिह्वपडिअकभोइओ वि' इति पाठे तु चिन्तापरासहनभोक्तृकोऽपि । तन्तिश्चिन्ता तद्युक्तः प्रतिखरोऽसहनो भोक्ता ग्रामाधिकारी यत्रेत्यर्थः । तथा च यद्यप्येतस्य प्रा-मस्य प्रभुरतितीक्ष्णो न्यायान्वेषणतत्परश्च तथापि स्वप्नसादाद्गामस्थः कुलटाजनो नो-द्विजत इति भावः ॥

कापि पति श्रावयन्ती सपत्न्याः सोपालम्भं दुश्चरितमाह—

सुपं डडं चणआ ण भज्जिआ सो जुआ अइक्कन्तो ।

अत्ता वि घरे कुविआ भूआणं व वाइओ वंसो ॥ ५७ ॥

[सूर्पं दग्धं चणका न भृशः स युवातिक्रान्तः ।

श्वशूरपि गृहे कुपिता भूतानामिर्व वादितो वंशः ॥]

१. 'उत्तिण्णतिव्वकरभो इओ वि' ख. २. 'गलित' ग; 'निपतित' घ. ३. 'तत्त्वज्ञ-प्रतिपक्षभोगिकोऽपि' ग; 'उत्तीर्णतीव्रकरभो इतोऽपि' घ. ४ 'दौ.साधिको द्वारपालः' इति त्रिकाण्डशेषः. ५. 'सूर्पो दग्ध.' ग. ६. 'व' ग.

स इति । यं द्रष्टुं निर्गता सोऽपीत्यर्थः । भूतानां श्रुतिविकलानाम् । तथा च बधिरा-
णामग्रे वशवादनवत्सर्वं तस्याश्चेष्टितं व्यर्थमेव संवृतमिति भावः ॥

निहृतमयर्थं विदग्धा बुध्यन्त इति बोधयन्नागरिकः सहचरमाह—

पिसुणेन्ति कामिणीणं जललुक्कपिआवऊहणसुहेल्लिम् ।

कण्ठइअकवोलुप्फुल्लणिच्चलच्छीइँ वअणाइँ ॥ ५८ ॥

[पिशुनयन्ति कामिनीनां जलनिलीनप्रियावगूहनसुखकेलिम् ।

कण्ठकितकपोलोत्फुल्लनिश्चलाक्षीणि वदनानि ॥]

पिशुनयन्ति सूचयन्ति जलनिमग्नस्य प्रियस्य यदवगूहनमालिङ्गनं तेन यत्सुखं तद्रूपां
केलिमित्यर्थः । कण्ठकितौ संजातपुलकौ कपोलौ येषां तानि । तथा हर्षविशेषादुत्फुल्ले
स्तम्भाद्येन सात्त्विकभावेन निश्चले चाक्षिणी येषु तानि वदनानि ॥

वनमयूरलसित संकेतितलतागृहमह गता, त्व तु न गत इति जारं श्रावयन्ती कुलटा
वर्षाप्रशंसामाह—

अहिणवपाउसरसिएसु सौँहइ साआइएसु दिअहेसु ।

रहसपसारिअगीवाणँ णच्चिअं मोरवुन्दाणम् ॥ ५९ ॥

[अभिनवप्रावृद्धसितेषु शोभते श्यामायितेषु दिवसेषु ।

रहसप्रसारितग्रीवाणां नृत्यं मयूरवृन्दानाम् ॥]

अभिनवानि प्रावृषो रसितानि मेघगर्जितानि येषु तेषु । मेघान्तरितभास्करतया
श्यामायितेषु रात्रिसदृशेषु दिनेषु नृत्यं शोभत इति संबन्धः । दिवैव संकेतस्थानस्याभि-
सारयोग्यता प्रतिपादयन्त्या दूत्या इयमुक्तिरिति कश्चित् ॥

महिषशालाया रममाणा कापि जारोत्साहनाय दोषं गुणीकृत्याह—

महिसक्खन्धविलगं घोलइ सिङ्गाहअं सिमिसिमन्तम् ।

आहअवीणाइँकारसइँमुहलं मसअवुन्दम् ॥ ६० ॥

[महिषस्कन्धविलग्न धूर्णते शृङ्गाहतं सिमिसिमायमानम् ।

आहतवीणाइँकारशब्दमुखरं मशकवृन्दम् ॥]

धूर्णते भ्रमति । सिमिसिमायमानमित्यनुकरणम् । सिमिसिमशब्द कुर्वदित्यर्थः । आह-
ताया वीणाया इव यो इँकारः शब्दस्तेन मुखरम् ॥

१. 'सूचयन्ति' ग. २. 'जललवोत्कम्पितावरोहणसक्रीडम्' घ. ३. 'क्रीडा' ग.
४. 'कन्दलितकपोलोत्फुल्लनिश्चललक्ष्मीकानि' घ. ५. 'श्यामायमानेषु' ग; 'सामाक्षिकेषु'
घ. ६. 'ध्रुवते' घ. ७. 'सिमिसिमायन्तम्' ग; 'सिमिसिमन्तम्' घ.

कुमुदसरस्तीरलतागृहे चन्द्रोदयपर्यन्तमहं स्थितः, त्वं तु न गतेति कुलटां ध्रावयन्क-
श्चिदाह—

रेहन्ति कुमुददलनिचलद्विआ मत्तमहुअरणिहाआ ।

ससिअरणीसेसपणासिअस्स गण्ठि व्व तिमिरस्स ॥ ६१ ॥

[राजन्ते कुमुददलनिचलस्थिता मत्तमधुकरनिकायाः ।

शशिकरनिःशेषप्रणाशितस्य ग्रन्थय इव तिमिरस्य ॥]

शालिक्षेत्रे शुकपतनशङ्का सूत्रयन्ती शालिगोपी सुरतसत्वर जारमन्यमनस्कं कर्तुमाह—

उअह तरुकोडराओ णिक्कन्तं पुंसुवाणं रिञ्छोलिम् ।

सरिए जरिओ व्व दुमो पित्तं व्व सलोहिअं वमइ ॥ ६२ ॥

[पश्यत तरुकोटरान्निष्कान्तां पुंशुकानां पङ्क्तिम् ।

शरदि ज्वरित इव द्रुमः पित्तमिव सलोहित वमति ॥]

रममाणस्य जारस्य भयत्तरापनयनार्थं दुर्दिनाभिसारिका दुर्दिनानुबन्धलिङ्गमाह—

धाराधुव्वन्तमुहा लम्बिअवक्खा णिउञ्चिअग्गीवा ।

वइवेढनेसु काआ सूलाहिण्णा व्व दीसन्ति ॥ ६३ ॥

[धाराध्राव्यमानमुखा लम्बितपक्षा निकुञ्चितग्रीवाः ।

वृत्तिवेष्टनेषु काकाः शूलाभिन्ना इव दृश्यन्ते ॥]

ऊर्ध्वप्रसारितशूलाग्राकारचञ्चुत्वाच्छूलेना समन्ताद्भिन्ना इवेत्यर्थः । एते च दुर्दि-
नस्य चिरकालानुवृत्तिसूचका इति भावः ॥

वल्लभसंभाषणविमुखी कलहान्तरिता शिक्षयन्ती काचिदाह—

ण वि तह अणालवन्ती हिअअं दूमेइ माणिणी अहिअम् ।

जह दूरविअम्भिअगरुअरोसमज्झत्थभणिएहिं ॥ ६४ ॥

[नापि तथानालपन्ती हृदयं दुर्नोति मानिन्यधिकम् ।

यथा दूरविजृम्भितगुरुकरोषमध्यस्थभणितैः ॥]

रोषपूर्वकाणि यानि मध्यस्थभणितान्युदासीनवचनानि तैरित्यर्थं । तदुक्तं मातृगुप्ता-
चार्यैः—‘निष्ठुराणि न वक्तव्यो नातिक्रोध च दर्शयेत् । न वाक्यैर्वाच्यसंमिश्रैरुपालभ्यो
मनोरमः ॥’ इति ॥

१. ‘कुसुम’ घ. २. ‘निर्वाताः’ ग; ‘निकराः’ घ. ३. ‘प्रशमितस्य’ ग. ४. ‘ग्रन्थि-
रिव’ घ. ५. ‘निष्कामति शुकशतानां’ ग. ६. ‘प्रोञ्छिताना रिञ्छोलिम्’ घ. ७. ‘धा-
राधरोन्मुखाः’ घ. ८. ‘न वितथमनालपन्ती’ घ. ९. ‘दुर्मनायते’ ग.

वर्षासु प्रियतमाविनाशमाशङ्कमानं पथिकमाश्वासयंस्तत्सहचर आह—

गन्धं अग्धाअन्तअ पक्ककलम्बाणं वाहभरिअच्छ ।

आससु पहिअजुआणअ घरिणिमुहं मा ण पेच्छिहिसि ॥ ६५ ॥

[गन्धर्माजिघ्रन्पक्ककदम्बानां बाष्पभृताक्ष ।

आश्वासिहि पथिकयुवन् गृहिणीमुखं मा न प्रेक्षिष्यसे ॥]

न प्रेक्षिष्यस इति मा । किं तु प्रेक्षिष्यस एवेत्यर्थः ॥

गर्जितश्रवणशङ्कितप्रियतमाविनाशः पथिको जलधरमाह—

गज्ज महं चिअ उवरिं सव्वत्थामेण लोहहिअअस्स ।

जलहर लम्बालइअं मा रे मारेहिसि वराइम् ॥ ६६ ॥

[गर्ज ममैवोपरि सर्वस्थान्ना लोहहृदयस्य ।

जलधर लम्बालकिकां मा रे मारयिष्यसि वराकीम् ॥]

सर्वस्थान्ना सर्वबलेन । रे इति संबोधनम् । लोहवत्कठोरहृदयत्वात्त्वद्गर्जनं सोढुमत् समर्थं । सा पुनः शिरीषादपि मृद्गङ्गी कथं जीविष्यतीति भावः ॥

हेमन्तोपक्रमवर्णनच्छलेन शालिक्षेत्रस्याभिसारयोग्यता श्रावयन्ती कुलटा का चिदाह—

पङ्कमइलेण छीरेकपाइणा दिण्णजाणुवडुण्णेण ।

आनन्दिज्जइ हलिओ पुत्तेण व सालिछेत्तेण ॥ ६७ ॥

[पङ्कमलिनेन क्षीरैकपायिना दत्तजानुपतनेन ।

आनन्द्यते हालिकः पुत्रेणैव शालिक्षेत्रेण ॥]

क्षीरं तण्डुलारम्भकं जलं दुग्धं च । जानु ऊरुपर्व उपचाराद्धान्यनालग्नन्थिश्च ॥

प्रातरेवाहं संकेतस्थानं शालिक्षेत्रं गता, त्वं तु न गत इति जारं श्रावयन्ती नीहारा भिसारिका शालेरपि खलसंयोगादुद्वेगमाह—

कहं मे परिणइआले खलसङ्गो होहिइ त्ति चिन्तन्तो ।

ओणअमुहो ससूओ रुवइ व साली तुसारेण ॥ ६८ ॥

[कथं मे परिणतिकाले खलसङ्गो भविष्यतीति चिन्तयन् ।

अवनतमुखः सशूको रोदितीव शालिस्तुषारेण ॥]

१. 'आप्रायन्' घ. २. 'भरिताक्ष' घ. ३. 'पथिकेदानी' घ. ४. 'लोष्ट' ५. 'त बालिकां' ग. ६. 'मारयसि' घ. ७. 'वलणेण' ख. ८. 'वलनेन' घ. ९. 'आनन्द्यति' घ. १०. 'भवतीति' घ.

खलस्य धान्यमर्दनस्थानस्य दुर्जनस्य च सङ्गः । अवनतं मुखं शीर्षाग्रं वदनं च यस्य
सः । शूक्रेण धान्यकण्टकेन सह वर्तत इति सशूकः । अथ च ससूओ सशोकः ॥

अभिसारस्थानगमनाय प्रदोषाभिसारिकां त्वरयन्ती दूती प्रदोषवर्णनमाह—

संज्ञाराओत्थइओ दीसइ गअणम्मि पडिवआचन्दो ।

रत्तदुऊलन्तरिओ थणणहलेहो व्व णववहुए ॥ ६९ ॥

[संध्यारागावस्थगितो दृश्यते गगने प्रैतिपच्चन्द्रः ।

रत्तदुकूलान्तरितः स्तननखलेख इव नववध्वाः ॥]

अर्धचन्द्रावलोकनकौतुकादाकाशं पश्यन्त देवरं कापि सपरिहासमाह—

अइ दिअर किं ण पेच्छसि आआसं किं मुहा पलोएसि ।

जाआइ बाहुमूलम्मि अद्धअन्दाणं परिवाडिम् ॥ ७० ॥

[अयि देवर किं न प्रेक्षसे आकाशं किं मुधा प्रलोकयसि ।

जायाया बाहुमूलेऽर्धचन्द्राणां परिपाटीम् ॥]

जायाया बाहुमूलेऽर्धचन्द्राणा परिपाटीं परम्परा किं न प्रेक्षसे इति योजना ॥

वक्ष्यसि मद्रचनेन मत्प्रियमेवमिति प्रोषितभर्तृका प्रियसमीपगामिनं पान्थमाह—

वाआइ किं भणिज्जउ केत्तिअमेत्तं व लिक्खए लेहे ।

तुह विरहे जं दुक्खं तस्स तुमं चेअ गहिअत्थो ॥ ७१ ॥

[वाचया किं भण्यतां कियन्मात्रं वा लिख्यते लेखे ।

तव विरहे यदुःखं तस्य त्वमेव गृहीतार्थः ॥]

बहुत्वादुःखानां किं वक्तव्यं कियद्वा लेख्यमित्यर्थः । गृहीतार्थो ज्ञाता । गृहीतो-
ऽर्थो येनेति व्युत्पत्तेः । मद्विरहेण त्वया यावद्दुःखमनुभूतमस्ति तेनैवानुमीयतां मद्दुःख-
मिति भावः ॥

कोऽपि कस्याश्चित्केशपाशप्रशंसां साभिलाषमाह—

मअणग्गिणो व्व धूमं मोहणपिच्छि व लोअदिद्वीए ।

जोव्वणधअं व मुद्धा वहइ सुअन्धं चिउरभारम् ॥ ७२ ॥

[मदनाग्रेरिव धूमं मोहनपिच्छिकामिव लोकेदृष्टेः ।

यौवनध्वजमिव मुग्धा वदति सुगन्धं चिकुरभारम् ॥]

मोहनेति । अन्योऽप्येन्द्रजालिकः पिच्छिकया मोहं करोतीति भावः ॥

१. 'रागस्थगितो' घ. २. 'प्रतिपदाचन्द्रः' घ. ३. 'आयास' घ. ४. 'वाचा किं भ-
णिष्यति' घ. ५. 'व' घ. ५. 'गृहीतात्र' घ. ७. 'दिद्वीअ' ख. ८. 'लोकदृष्ट्याः' ग-घ.

सखि, कथय तस्य रूपमिति पृच्छन्तीं सखीमन्या काचिदाह—
रूपं सिद्धं चिअ से असेसपुरिसे णिअत्तिअच्छेण ।
वाहोलेण इमीए अजम्पमाणेण वि मुहेण ॥ ७३ ॥

[रूपं शिष्टमेव तस्याशेषपुरुषे निवर्तिताक्षेण ।
बाष्पाद्रैणासा अजल्पतापि मुखेन ॥]

शिष्टमेव कथितमेव ॥

प्रियेण सह कीडारसादविदितनिशावसानां सखी प्रबोधयन्ती सखी प्रभात-
वर्णनमाह—

रुन्दारविन्दमन्दिरमअरन्दाणन्दिआलिरिञ्छोली ।

झणझणइ कसणमणिमेहल व्व महुमासलच्छीए ॥ ७४ ॥

[बृहदरविन्दमन्दिरमकरन्दानन्दितालिपङ्क्तिः ।

झणझणायते कृष्णमणिमेखलेव मधुमासलक्ष्म्याः ॥]

रुन्द बृहदरविन्दं तदेव मन्दिरं तत्र मकरन्देन पुष्परसेनानन्दितेत्यर्थः । उद्दीपन-
विभावप्रतिपादनेन सकेतस्थानस्तुतिपरं दूल्या इद वचनमिति केचित् ॥

जाताभिलाष. कश्चिद्विलासी कामपि कामिनीमाह—

कस्स करो बहुपुण्यफलैकतरुणो तुहं विसम्मिहइ ।

थणपरिणाहे मम्महणिहाणकलसे व्व पारोहो ॥ ७५ ॥

[कस्य करो बहुपुण्यफलैकतरोस्तव विश्रमिष्यति ।

स्तनपरिणाहे मन्मथनिधानकलश इव प्ररोहः ॥]

परिणाहो विशालता । विशालस्तन इत्यर्थः । पूर्वनिपातानियमात् । प्ररोहः पल्लवः ।
मन्मथनिधानकलशे तव स्तनपरिणाहे बहुपुण्यफलैकतरोः कस्य करः प्ररोह इव विश्र-
मिष्यतीत्यन्वयः ॥

यो यच्छीलः स सापायादपि तस्मान्मनो निवर्तयितुं न शक्नोतीति निदर्शयन्नाग-
रिकः सहचरमाह—

चोरा सभअसत्तहं पुणो पुणो पेसअन्ति दिट्ठीओ ।

अहिरक्खिअणिहिकलसे व्व पोढवइआथणुच्छङ्गे ॥ ७६ ॥

[चोराः सभयसन्तृष्णं पुनः पुनः प्रेषयन्ति दृष्टीः ।

अहिरक्षितनिधिकलश इव प्रौढैपतिकास्तनोत्सङ्गे ॥]

प्रौढः शूरः पतिर्यस्याः सा प्रौढपतिका । चोराः परस्त्रीहारकाः परस्वापहारकाश्च ।
तथा च सर्पप्रायोऽस्याः पतिरस्मान्घातयिष्यतीति भयात्प्रप्रष्टुमसमर्था अपि साभिलाष
पश्यन्तीत्यर्थः ॥

प्रवासोन्मुखस्य कान्तस्य गमनप्रतिषेधाय कापि वर्षावर्णनच्छलेनाह—

उव्वहइ णवतणङ्कुरोमञ्चपसाहिआँइ अङ्गाइ ।

पाउसलच्छीअ पओहरेहिँ परिपेह्लिओ विञ्जो ॥ ७७ ॥

[उद्वहति नवतृणाङ्कुरोमाञ्चप्रसाधितान्यङ्गानि ।

श्रावृटलक्ष्म्याः पयोधरैः परिप्रेरितो विन्ध्यः ॥]

पयोधरैर्मेधैः । अन्योऽपि कामुकः कान्तया पयोधराभ्यां स्तनाभ्यां परिप्रेरितः स-
न्रोमाञ्चमुद्वहतीति ध्वनिः ॥

कोऽपि प्रियायाः साभिलाषमन्यापदेशेन प्रशंसामाह—

आम बहला वणाली मुहला जलरङ्कुणो जलं सिसिरम् ।

अण्णणईणँ वि रेवाइ तह वि अण्णे गुणा के वि ॥ ७८ ॥

[सैत्यं बहला वणाली मुखरा जलरङ्कुवो जलं शिशिरम् ।

अन्यनदीनामपि रेवायास्तथाप्यन्ये गुणाः केऽपि ॥]

आमेति स्त्रीकारे । बहला विस्तृता वनपङ्क्तिर्वृक्षादिस्थानीया । मुखराः सशब्दा ज-
लरङ्कुवः पक्षिविशेषा नूपुरादिस्थानीयाः । शिशिरं जलमङ्गसुखस्पर्शस्थानीयम् । गुणा
गाम्भीर्यादय सौभाग्यादयश्च । अन्ये इतरविलक्षणाः । नायकप्ररोचनाय दूत्या इयमु-
क्तिरिति कश्चित् ॥

कोऽपि कस्याश्चित्साभिलाषं स्तनौ वर्णयन्सहचरमाह—

एह इमीअ णिअच्छह परिणअमात्तूरसच्छहे थणए ।

तुङ्गे सप्पुरिसमणोरहे व्व हिअए अमाअन्ते ॥ ७९ ॥

[आगच्छतास्या निरीक्षध्वं परिणतमात्तूरसदृशौ स्तनौ ।

तुङ्गौ सत्पुरुषमनोरैथाविव हृदये अमान्तौ ॥]

मात्तूरो बिल्वः । प्राकृते द्विवचनबहुवचनयोरैक्यान्मनोरथानिवेत्यर्थः । अतएव व-
चनभेदनिबन्धन उपमादोषोऽप्यत्र नेति ध्येयम् । पूर्ववद्दूत्या उक्तिर्वा ॥

मेघागमस्य कामोद्दीपकतां सूचयन्ती कापि कान्तानयनाय सखीं त्वरयितुमाह—

हत्थाहत्थिं अहमहमिआइ वासागमम्मि मेहेहिम् ।

अव्वो किं पि रहस्सं छण्णं पि णहङ्गणं गलइ ॥ ८० ॥

[हस्ताहस्ति अहमहमिकया वर्षागमे मेघैः ।

आश्चर्यं किमपि रहस्यं छन्नमपि नभोज्झणं गलति ॥]

मेघैश्छन्नमपीति योजना ॥

सखी, किमेवमतिचञ्चलं प्रिय नानुनयसीति वदन्तीं सखीं काचिदाह—

केत्तिअमेत्तं होहिइ सोहगं पिअअमस्स भमिरस्स ।

महिलामअण्णुहाउलकडक्खविकखेववेप्पन्तम् ॥ ८१ ॥

[कियन्मात्रं भविष्यति सौभाग्यं प्रियतमस्य त्रैमणशीलस्य ।

महिलामदनक्षुधाकुलकटाक्षविक्षेपेर्गृह्यमाणम् ॥]

मदनलक्षणक्षुधयाकुलेन महिलाना कटाक्षविक्षेपेण गृह्यमाणमित्यर्थः । कटाक्षध्वस्व
वैर्यस्य स्वत एवास्य चाञ्चल्यं यास्यति । किमस्य प्रियाचरणेनेति भावः ॥

कापि चलवृत्तं सर्वदापरगृहपरस्त्रीसंभोगलम्पटं स्वकान्तं रात्रिशेषे कुक्कुटशब्दे
परवसतिशङ्कया पलायनेच्छुमाह—

णिअधणिअं उवऊहसु कुक्कुडसहेन झत्ति पडिबुद्ध ।

परवसहिवाससङ्किर णिअए वि घरम्मि मा भासु ॥ ८२ ॥

[निजगृहिणीर्मुपगूहस्व कुक्कुटशब्देन झटिति प्रतिबुद्ध ।

परवसतिवासशङ्किन्निजकेऽपि गृहे मा भैषीः ॥]

धणिआशब्दः स्वभार्यावचनो देशी । परवसतिः परगृहम् । वासोऽवस्थानम् ॥

दुर्दिनाभिसारिका कान्तमन्यमनस्कं कर्तुमाह—

खरपवणरअगलत्थिअगिरिऊडावडणभिण्णदेहस्स ।

धुक्काधुक्कइ जीअं व विज्जुआ कालमेहस्स ॥ ८३ ॥

[खरपवनरयगलहस्तितगिरिकूटापतनभिन्नदेहस्य ।

धुकधुकायते जीव इव विद्युत्कालमेघस्य ॥]

खरपवनेन रयेण वेगेन गलहस्तितः प्रेरितः अत एव गिरेः कूटाच्छृङ्गाद्यदापतनं रं
भिन्नदेहो विशीर्णदेहो यः कालमेघस्तस्य जीव इव विद्युद्बुधुकायते । कम्पत इत्यर्थं
लोकेऽपि बलवता केनापिगलहस्तितस्योच्चस्थानात्पतितस्य विशीर्णदेहस्य हृदये क
भवतीति भावः ॥

२. 'हस्ताहस्तिकाभिः' ग. २. 'मातः' ग; 'अहो' घ. ३. 'अमतः' ग. ४. 'वि
पान्गुहृतः' ग; 'विक्षेपवेपमानम्' घ. ५. 'धन्या' ग. ६. 'उपगूहस्व रे' ग-घ. ७. '
रिचूडा' ग. ८. 'जीवमिव' क-ख.

तथैवापरगाथामाह—

मेहमहिसस्स णज्जइ उअरे सुरचावकोडिभिण्णस्स ।
क्रन्दन्तस्स सविअणं अन्तं व पलम्बए विज्जू ॥ ८४ ॥

[मेघमहिषस्य ज्ञायते उदरे सुरचापकोटिमिन्नस्य ।
क्रन्दतः सवेदनमन्नमिव प्रलम्बते विद्युत् ॥]

भविष्यत्पथिकस्य गमनप्रतिषेधार्थं कापि वसन्तोपक्रममाह—

णवपल्लवं विसण्णा पहिआ पेच्छन्ति च्चूरुक्खस्स ।
कामस्स लोहिउप्पङ्गराइअं हत्थभल्लं व ॥ ८५ ॥

[नवपल्लवं विषण्णाः पथिकाः पश्यन्ति चूतवृक्षस्य ।
कामस्य लोहितसमूहराजितं हस्तभल्लमिव ॥]

उप्पङ्गशब्दो देश्यां समूहवचनः ॥

प्रवासोद्यतस्य कान्तस्य गमनप्रतिषेधाय काचिदाह—

महिलाणं चिअ दोसो जेण पवासम्मि गँव्विआ पुरिसा ।
दोतिण्णि जाव ण मरन्ति तँ ण विरहा समप्पन्ति ॥ ८६ ॥

[महिलानामेव दोषो येन प्रवासे गर्विताः पुरुषाः ।
द्वे^३ तिस्रो यावन्न म्रियन्ते तावन्न विरहाः समाप्यन्ते ॥]

द्वे तिस्रो वा । अर्थात्प्रोषितपतिकाः । तावदिति तेन हि प्रियामरणभयान्न प्रवत्स्य-
तीति भावः ॥

नायिकासमीपगमनाय त्वरयन्ती दूती नायकमाह—

बालअ दे वच्च लहुं मरइ वराई अलं विलम्बेण ।
सा तुज्झ दंसणेण वि जीवेज्जइ णत्थि संदेहो ॥ ८७ ॥

[बालक हे ब्रज लघु म्रियते वराकी अलं विलम्बेन ।
सा तव दर्शनेनापि जीविष्यति नास्ति सदेहः ॥]

हेशब्दः साभ्यर्थनसंबोधने । हे बालक अज्ञ । शीघ्रं लघु । तवेत्यन्यस्य पुनरौषधेनापि
न जीविष्यतीत्यर्थः । दर्शनेनापीति आस्तामालिङ्गनचुम्बनसकचग्रहाधरपानदन्तनख-
क्षतनिधुवनद्रवीभावादिकमित्यपेक्ष्यः ॥

१. 'प्रेक्षन्ते' ग-घ. २. 'लोहितोऽप्यङ्ग' ग; 'लोहितपुङ्ग' घ. ३. 'गव्विरा' ख.
४. 'ताव' क-ख. ५. 'द्वित्रा.' ग-घ. ६. 'जिवेज्ज ण एत्थि' क. ७. 'जीवति' ग.

विनाशहेतुमपि मुग्धाः सुखहेतुं कलयन्तीत्यन्यापदेशेन कोऽपि महचरमाह—
तस्मिन्परसरिअहुअवहजालालिपलीविण वणाहोए ।

किंसुअवणन्ति कलिऊण मुद्धहरिणो ण णिक्कमइ ॥ ८८ ॥

[तौअवर्णप्रसृतहुतवहज्वालावलिप्रदीपिते वनाभोगे ।

किंशुकवनमिति कलयित्वा मुग्धहरिणो न निष्कामति ॥]

अत्र स्वतःसंभविना भ्रान्तिमदलंकारेण परस्त्रीलम्पटः कश्चिद्विनाशहेतुमपि परस्त्री-
संसर्गं सुधाप्रार्थं मन्यमानस्तद्ब्रह्मन्निःसरतीति वस्तु व्यज्यते ॥

कापि जारं प्रत्यात्मनो वैदग्ध्यं ख्यापयन्ती सखीमाह—

णिहुअणसिपं तँह सारिआइ उल्लाविअं म्ह गुरुपुरओ ।

जह तं वेळं माए ण आणिमो कथ वच्चामो ॥ ८९ ॥

[निधुवनशिल्पं तँथा शारिकयोऽल्लपितमस्माकं गुरुपुरतः ।

यथा तां वेला मातर्न जानीमः कुत्र ब्रजामः ॥]

निधुवनशिल्पं सुरतवैचित्र्यम् । ता वेलां तस्या वेलायाम् । 'कालकाध्वनोरत्यन्तसं-
योगे' इति सप्तम्यर्थे द्वितीया । न जानीम इति व्रीडावशादिति भावः ॥

कापि नवयुवत्यनुरक्तचित्तं कान्तमन्यापदेशेनाह—

पच्चग्गप्फुल्लदल्लसन्तमअरन्दपाणलेहलओ ।

तं णत्थि कुन्दकलिआइ जं ण भमरो महइ काँउम् ॥ ९० ॥

[प्रत्यग्रोत्फुल्लदलोऽल्लसन्मकरन्दपानलुब्धः ।

तन्नास्ति कुन्दकलिकाया यन्न भ्रमरो धाञ्छति कर्तुम् ॥]

चुम्बनादिकं सर्वं कर्तुमिच्छतीत्यर्थः ॥

कापि कस्याश्चिन्नवयुवत्याः सौभाग्यातिशयमन्यापदेशेनाह—

सो को वि गुणाइसओ ण आणिमो माँमि कुन्दलइआए ।

अच्छीहिं च्चिअ पाउं अँहिलस्सइ जेण भमरेहिम् ॥ ९१ ॥

[स कोऽपि गुणातिशयो न जानीमो माँतुलानि कुन्दलतिकायाः ।

अक्षिभ्यामेव पातुमभिलष्यते येन भ्रमरैः ॥]

अन्यासां लतानां पुष्पं मुखैः पीयते, इयं तु लतैवाक्षिभिश्चेत्युत्कर्षः ॥

१. 'अविरअ' ग. २. 'अविरत' ग; 'तपनशीलहुतवह' घ. ३. 'तुह' ग. ४. 'तव'
ग-घ. ५. 'अस्सत्' ग. ६. 'पाउम्' क. ७. 'लोलुपः' ग; 'लम्पटः' घ. ८. 'महति'
ग; 'इच्छति' घ. ९. 'पातुम्' घ. १०. 'बहिणि कुन्दकलिआए' ग. ११. 'अहिल-
जइ' क-ग. १२. 'जानामि भगिनि कुन्दकलिकायाः' ग. १३. 'मातुलि' घ.

नायकप्रलोभनाय दूती कस्याश्चित्सौन्दर्यातिशयमाह—

एक च्चिअ रूअगुणं गामणिधूआ समुव्वहइ ।

अणिमिसणअणो सअलो जीए देवीकओ गामो ॥ ९२ ॥

[एकैव रूपगुणं ग्रामणीदुहिता समुद्रहति ।

अनिमिषनयनः सैकलो यया देवीकृतो ग्रामः ॥]

न निमिषतीत्यनिमिषम् । अनिमिषं नयनं यस्य सः । ग्रामस्थो जनोऽवलोकनकौतु-
कादेता पश्यन्कोऽपि निमेषं न करोतीति भावः ॥

अधरपानाभिलाष सूचयन्कोऽपि सवैदग्ध्यमभियोज्यामाह—

मण्णे आसाओ च्चिअ ण पाविओ पिअअमाहररसस्स ।

तिअसेहिँ जेण रअणाअराहि अमअं समुद्धरिअम् ॥ ९३ ॥

[मन्ये आस्वाद एव न प्राप्तः प्रियतमाधररसस्य ।

त्रिदशैर्येन रत्नाकरादमृतं समुद्धृतम् ॥]

प्राणालयहेतुरपि न तथा व्यथयति यथा प्रियविरह इत्यन्यापदेशेन क्षेहशिक्षार्थं को-
ऽपि प्रियामाह—

आअण्णाअड्ढिअणिसिअभँल्लमन्माहआइ हरिणीए ।

अँइंसणो पिओ होहिइ त्ति वल्लिउं चिरं दिट्ठो ॥ ९४ ॥

[आकर्णाकृष्टनिशितभँल्लमर्माहतया हरिण्या ।

अदर्शनः प्रियो भविष्यतीति वैलित्वा चिर दृष्टः ॥]

न विद्यते दर्शनं यस्येत्यदर्शनः । दर्शनागोचर इति यावत् । 'दुइंसण' इति क्वचि-
त्पाठः । तत्र दुर्दर्शनो दुर्लभदर्शन इत्यर्थः ॥

कस्यचिद्राज्ञः शौर्यं खयापयन्ती सेवाकुशला स्त्री राजानमुद्दिश्याह—

विसमट्ठिअपिक्केक्कम्बदंसणे तुज्झ सत्तुघरिणीए ।

को को ण पत्थिओ पहिआणं डिम्भे रुअन्तम्मि ॥ ९५ ॥

[विषमस्थितपक्वैकाम्रदर्शने तव शत्रुगृहिण्या ।

कः को न प्रार्थितः पथिकानां डिम्भे रुदति ॥]

डिम्भे बालके रुदति सति तव शत्रुगृहिण्या पथिकाना मध्ये कः को न प्रार्थितः ।

१. 'सूआ गहवइणो महिलत्तणं' ग. २. 'सुतागृहपतेर्महिलात्व' ग, 'रूपगुणौ' घ.
३. 'सवौ' ग. ४. 'भल्लसमुहाहआइ' ग. ५. 'दुइंसणो' ग. ६. 'भल्लसंमुखाहतया' ग.
७. 'वल्लितः' घ. ८. 'बालके' ग.

अपि तु सर्वे एवेत्यर्थः । अयमाशयः—त्वदागमनशङ्कासंजातवेपथुस्खलितचरणसंचारम-
शेषपरिवारं विहाय बालकमादाय तव शत्रुविलासिनी महारण्य प्राविशत् । तत्र च घन-
घनायमानघनच्छदच्छायतरुनिकरनिराकृतदिनकरोत्करश्यामायिते वर्त्मनि गच्छन्ती
ध्रुत्पीडितस्य बालकस्याक्रन्दितमाकलय्य निपुणतर निरीक्षमाणा विषमशाखान्तर्गतमे-
कमात्रफलमद्राक्षीत् । तत्पातनार्थं च पान्थानयाचतेति ॥

कोऽपि सौन्दर्यादिगुणयुक्ता मालाकारस्त्रियं सामिलाषं पश्यन्सहचरमाह—

मालारी ललिउल्लुलिअबाहुमूलेहिं तरुणहिअआई ।

उल्लूरइ सज्जुल्लूरिआइ कुसुमाईं दावेन्ती ॥ ९६ ॥

[मालाकारी ललितोल्ललितबाहुमूलाभ्यां तरुणहृदयानि ।

उल्लुनाति संधोऽवल्लूनानि कुसुमानि दर्शयन्ती ॥]

मालाकारी मालाकारस्त्री । ललिताभ्या सुन्दराभ्यामुल्ललितभ्यां चञ्चलाभ्या बाहुमू-
लाभ्यामुपलक्षिता । उल्लुनाति व्याकुलीकरोति ॥

कोऽपि व्याधस्त्रियाः स्तनोद्गमं सामिलाषं वर्णयन्सहचरमाह—

मज्झो पिओ कुअण्डो पल्लिजुआणा सवत्तीओ ।

जह जह वडुन्ति थणा तह तह झिज्जन्ति पञ्च वाहीए ॥ ९७ ॥

[मध्यः प्रियः कुटुम्बं पल्लीयुवानः सपत्न्यः ।

यथा यथा वर्धते स्तनौ तथा तथा क्षीयन्ते पञ्च व्याध्याः ॥]

व्याध्या व्याधस्त्रियाः ॥

यो यदभिलाषुकः स च्छलेनापि स्व(तत्)कार्यं साधयतीति निदर्शयन्कोऽपि सह-
चरमाह—

मालारीए वेल्लहलबाहुमूलावलोअणसअह्लो ।

अलिअं पि भमइ कुसुमग्घपुच्छिरो पंसुलजुआणो ॥ ९८ ॥

[मालाकार्याः सुन्दरबाहुमूलावलोकनसत्तृष्णः ।

अलीकमपि भ्रमति कुसुमार्धप्रश्रशीलः पंसुलयुवा ॥]

पंसुलः परस्त्रीलम्पटः । अर्धो मूल्यम् । वेल्लहल इति सुन्दरार्थं देशी ॥

विस्मृतपूर्ववृत्तसुरतसंकेतस्थानादिकं तवाह न कोऽपीति वदन्तं नायकं कापि सोपा-
लम्भमाह—

अकअण्णुअ घणवण्णं घणवण्णन्तरिअतरणिअरणिअरम् ।

जइ रे रे वाणीरं रेवाणीरं पि णो भरसि ॥ ९९ ॥

१. 'मालाकारस्त्री' ग. २. 'व्याकुलयति' ग. ३. 'मध्यस्थितानि' घ. ४. 'ददती'
ग. ५. 'कुसुममूल्यप्रश्रशीलः' ग; कुसुमार्धपृच्छाशील.' घ.

[अकृतज्ञ घनवर्णं घनपर्णान्तरिततरणिकरनिकरम् ।

यदि रे रे वानर रेवानीरमपि न स्मरसि ॥]

घनवर्णं मेघश्यामम् । घनैर्निर्बिडैः पत्रैरन्तरित आच्छादितस्तरणिकरनिकरः सूर्यर-
श्मिसमूहो येनेति वानीरविशेषणम् । रे रे इति साक्षेपसबोधनम् । वानीरं वेतसकुञ्जं यदि
न स्मरसि तर्हि मा स्मर । रेवाया नर्मदाया नीर जलमपि कथं न स्मरसीत्यर्थः ॥

कापि गृहपतिसुता हलिकसुतानुरागं विरहवैधुर्यं च प्रतिपादयन्ती हलिकसुतोपाल-
म्भपुरःसरमाह—

मन्दं पि ण आणइ हलिअणन्दणो इह हि डडुगामम्मि ।

गहवइसुआ विवज्जइ अवेज्जए कस्स साहामो ॥ १०० ॥

[मन्दमपि न जानाति हलिकनन्दन इह हि दग्धग्रामे ।

गृहपतिसुता विपद्यतेऽवैद्यके कस्य कथयामः ॥]

मन्दमप्यल्पमपि । अवैद्यके वैद्यरहिते । हलिकपुत्रनिमित्तममन्दपञ्चबाणबाणप्रहारज-
र्जरितहृदया ग्रामणीसुता विपद्यते । हलिकपुत्रश्च पशुकल्पः । अतः कस्मै कथयामी-
त्यर्थः ॥

रसिअजणहिअदइए कइवच्छलपमुहसुकइणिम्मइए ।

सत्तसअम्मि समत्तं सट्टं गाहासहं एअम् ॥

[रसिकजनहृदयदयिते कविवत्सलप्रमुखसुकविनिर्मिते ।

सप्तशतके समाप्तं षष्ठं गाथाशतकमेतत् ॥]

सप्तम शतकम् ।

पशुद्वन्द्वस्याप्येवमन्योन्यानुरागो न पुनस्तवेति दूती मन्दस्नेहं नायकमुपालब्धुमन्या-
पदेशेनाह—

एककमपरिरक्खणपहारसँमुहे कुरङ्गमिहुणम्मि ।

वाहेण मण्णुविअलन्तवाहधोअं धणुं मुक्कम् ॥ १ ॥

[अन्योन्यपरिरक्षणप्रहारसंमुखे कुरङ्गमिथुने ।

व्याधेन मन्युविर्गलद्वाष्पधौतं धनुर्मुक्तम् ॥]

प्रहारसमयेऽन्योन्यस्य परिरक्षणार्थं कुरङ्गमिथुने संमुखे स्थिते सति मन्युना दैन्येव
विगलन्त्यो बाष्पस्तेन धौतं प्रक्षालित धनुर्व्याधेन मुक्तम् । त्यक्तमित्यर्थः । 'मन्युर्दैन्ये
कृतौ कुधि' इति हेमचन्द्रः ॥

मन्दलेहं नायकमनुकूलयितु दूती नायिकाया विरहवैभुर्यमाह—
ता सुहृअ विलम्ब खणं भणामि कीअ वि कएण अलमह वा ।
अविआरिअकज्जारम्भआरिणी मरउ ण भणिस्सम् ॥ २ ॥

[तत्सुभग विलम्बस्व क्षणं भणामि कस्या अपि कृतेनालमथ वा ।
अविचारितकार्यारम्भकारिणी म्रियतां न भणिष्यामि ॥]

सेष्या काचिद्भ्रतुर्ग्रामव्यापारिकमहिलानुरागं सूचयन्ती सखीमाह—
भोइणिदिण्णपहेणअचक्खिअदुस्सिक्खिओ हलिअउत्तो ।
एत्ताहे अण्णपहेणआणँ छीवोल्लअं देई ॥ ३ ॥

[भोगिनीदत्तप्रहेणकास्वादनदुःशिक्षितो हलिकपुत्रः ।
इदानीमन्यप्रहेणकानां छी इति वचनं ददाति ॥]

भोगिनी ग्रामव्यापारिकस्त्री । तथा दत्तानि यानि प्रहेणकानि मोदकादिवायनकानि
तेषां चक्खणमास्वादन तेन दुःशिक्षितः । 'प्रहेणकं वायनकम्' इति हारावली । छी इति
निन्दानुकरण लोके प्रसिद्धम् ॥

अज्ञातरजनिविरामा क्रीडाप्रसक्ता सखी प्रबोधयितु कापि प्रभात वर्णयति—
पच्चूसमऊहावलिपरिमलणसमूससन्तवत्ताणम् ।
कमलाणँ रअणिविरमे जिअलोअसिरी महम्महइ ॥ ४ ॥

[प्रत्यूषमयूखावलिपरिमलनसमुच्छ्वसत्पत्राणाम् ।
कमलानां रजनिविरामे जितेश्लोकश्रीर्महमहायते ॥]

प्रयूषे या मयूखावलिर्थादादित्यस्य । पच्चूहशब्द आदित्यवचनो देशीति कश्चित् ।
जिता लोका यया सा तथा । जीवलोकश्रीरिति वार्थः । महमहायतेऽतिपुरभिर्भवतीत्यर्थः ॥
कापि कस्याश्चित्परिहासव्याजेन सौभाग्यस्तुतिमाह—

वाउव्वेल्लिअसाउलि थएसु फुडदन्तमण्डलं जहणम् ।
चडुआरअं पइं मा हु पुत्ति जणहासिअं कुणसु ॥ ५ ॥

[वातोद्वेल्लितवस्त्रे स्थगय स्फुटदन्तमण्डलं जघनम् ।
चटुकारकं पतिं मा खलु पुत्रि जनहास्यं कुरु ॥]

जनैर्हस्यत इति जनहास्यः । जनहासास्पदमित्यर्थः । साउलीति वस्त्रवाचको देशी ॥

१. 'भणिष्ये' ग-घ. २. 'मोदकभक्षण' घ. ३. 'एतावताशेषप्रहेणकानां मुख-
विधूननं ददाति' ग; 'इदानीमन्यमोदाकानामक्षिविकारं ददाति' घ. ४. 'छीवोल्लण
मुखविकार.' इति कुलबालदेवः ५. 'जीवलोकश्रीः' ग; 'आमोदश्रीः' घ. ६. 'प्रिय'
ग. ७. 'जनहसितं' ग.

कामुकजनावकाशनिरासाय दूती बध्वाः पूर्ववृत्तान्यथाभावमाह—
वीसत्थहसिअपरिसक्किआण पढमं जलञ्जली दिण्णो ।
पच्छा वहुअ गहिओ कुडम्बभारो णिमज्जन्तो ॥ ६ ॥

[विस्मयहसितपरिक्रमाणां प्रथम जलाञ्जलिर्दत्तः ।

पश्चाद्बध्वा गृहीतः कुटुम्बभारो निमज्जन् ॥]

परिसकित परिक्रमणम् । कुटुम्बभारानुरोधाद्विस्मयहसितादिरूपं चाञ्जल्यं त्यक्त-
मिति भावः ॥

कापि सख्याः सपरिहासं सौन्दर्यप्रशंसामाह—

गम्मिहिसि तस्स पासं सुन्दरि मा तुरअ वडूउ मिअङ्को ।
दुद्धे दुद्धं मिअ चन्दिआइ को पेच्छइ मुहं दे ॥ ७ ॥

[गमिष्यसि तस्य पार्श्वं सुन्दरि मा त्वरस्य वर्धतां मृगाङ्कः ।

दुग्धे दुग्धमिव चन्द्रिकायां कः प्रेक्षते मुखं ते ॥]

कापि ग्रामणीपुत्रं प्रत्यनुरागातिशयं सूचयन्ती समानशीलां मातुलानीमाह—
जइ जूरइ जूरउ णाम मामि परलोअवसणिओ लोओ ।

तह वि बला गामणिणन्दणस्स वअणे वलइ दिट्ठी ॥ ८ ॥

[यदि खिद्यते खिद्यतां नाम मातुलानि परलोकव्यसनिको लोकः ।

तथापि बलाद्ग्रामणीनन्दनस्य वदने बलते दृष्टिः ॥]

नायिकाया अनुरागातिशयं प्रतिपादयन्ती दूती नायकमाह—

गेहं व वित्तरहिअं णिञ्जरकुहरं व सलिलसुण्णविअम् ।

गोहणरहिअं गोट्टं व तीअ वअणं तुह विओए ॥ ९ ॥

[गृहमिव वित्तरहितं निर्झरकुहरमिव सलिलशून्यम् ।

गोधनरहितं गोष्ठमिव तस्या वदनं तव वियोगे ॥]

न शोभत इति शेषः ॥

कस्याश्चिद्भ्रज्जापारतन्व्यमनुरागातिशयं च प्रतिपादयन्ती दूती नायकमाह—

तुह दंसणेण जणिओ इमीअ लज्जाउलाइ अणुराओ ।

दुग्गअमणोरहो विअ हिअअ च्चिअ जाइ परिणामम् ॥ १० ॥

१. 'विस्मयहसितपरिशिक्षितानां' ग, 'विश्वस्तहसितपरिशिक्षितानां' घ. २. 'खि-
द्यति खिद्यतु नाम भगिनि' ग, 'क्रुध्यति क्रुध्यतु नाम मातुलि' घ. ३. 'सलिलशून्यी-
कृतम्' ग.

[तव दर्शनेन जनितोऽस्या लज्जालुकाया अनुरागः ।

दुर्गतमनोरथ इव हृदय एव याति परिणामम् ॥]

लज्जावशात्कुत्रापि न वदतीत्यर्थः ॥

किमिति कृशासीति विदेशादागल्य हासपूर्वकं पृच्छन्तं कान्तं प्रति नायिकाया उक्ति-
कौशलं कापि सखीशिक्षार्थमाह—

जं तणुआअइ सा तुह कएण किं जेण पुच्छसि हसन्तो ।

अह गिम्हे मह पअई एव्वं भणिऊण ओरुण्णा ॥ ११ ॥

[या तैनूयते सा तव कृतेन किं येन पृच्छसि हसन् ।

असौ ग्रीष्मे मम प्रकृतिरिति^१ भणित्ववारुदिता ॥]

या महिला तन्वी भवति सा सर्वा त्वन्निमित्तमिति नियमो नास्तीत्यर्थः । किंनिमित्तं
तर्हि तव कार्यं तत्राह—असाविति । अह इत्यसावित्यर्थे देशी ॥

अविच्छिन्नप्रियालिङ्गनाभिलाषमात्मनः प्रकाशयन्ती काप्यन्यापदेशेन वल्लभमाह—

वण्णकमरहिअस्स वि एस गुणो णवरि चित्तकम्मस्स ।

णिमिसं पि जं ण मुञ्चइ पिओ जणो गाढमुवऊढो ॥ १२ ॥

[वर्णक्रमरहितस्याप्येष गुणः केवलं चित्रकर्मणः ।

निमिषमपि यन्न मुञ्चति प्रियो जनो गाढमुपगूढः ॥]

वर्णक्रमो हरितपीतादिवर्णविन्यासः । चित्रकर्मण आलेख्यस्य । चित्रे प्रिययोपगूढः
प्रियः प्रियां क्षणमपि न मुञ्चतीत्यर्थः । यद्वा वर्णक्रमो गुणविशुद्धिपरम्परा तद्रहितस्य ।
चित्रस्य विचित्रस्य कर्मणः । धर्माधर्मादिरूपस्येत्यर्थः । आत्मा धर्माधर्मादिक क्षणमपि
न मुञ्चतीत्यर्थः । केचित्तु ब्राह्मणादिवर्णक्रमरहितस्यापि चित्तअम्मणो चित्तजन्मनो
मन्मथस्यायं कोऽपि गुणो येन प्रियः प्रियां क्षणमपि न त्यजतीत्यर्थं इति व्याचक्षते ॥

कोमलां नवोढामविदग्धः कोऽपि रमयतीत्यन्यापदेशेन कापि सखीमाह—

अविहत्तसंधिवन्धं पढमरसुब्भेअपाणलोहिल्लो ।

उव्वेलिउं ण आणह खण्डइ कलिआमुहं भमरो ॥ १३ ॥

[अविभक्तसंधिवन्धं प्रथमरसोद्वेदपानर्तुब्धः ।

उद्वेलितुं न जानाति खण्डयति कलिकामुखं भ्रमरः ॥]

अत्र कलिकामधुपवृत्तान्तव्याजेनानुद्भिन्नवयःसंधि नायिकामविदग्धः कोऽप्युपभो-

१. 'लज्जालो.' ग, 'लज्जावत्याः' घ. २. 'तन्वीभवति' ग. ३. 'कृते' ग-घ.

४. 'अथ' ग, 'एषा' घ. ५. 'एषैवं भणित्वा रोदितुं लग्ना' ग. ६. 'चित्तअम्मस्स'

ग. ७. 'चित्तजन्मनः' ग. ८. 'लोभिष्ठः' ग, 'लोभवान्' घ. ९. 'उद्वेलयितु' ग.

क्षुमिच्छति । न च जानाति केवलं पीडयतीति वस्तु व्यज्यते । उद्वेहितुं विकासयितुम्, पक्षे संमुखीकर्तुम् ॥

विपरीतरताय प्रियामुत्साहयितुं कश्चिदाह—

दरवेविरोरुजुअलासु मउलिअच्छीसु लुलिअचिहुरासु ।

पुरिसाइरीसु कामो पिआसु सज्जाउहो वंसइ ॥ १४ ॥

[ईषेद्वेपनशीलोरुयुगलासु मुकुलिताक्षीषु लुलितचिकुरासु ।

पुरुषायितशीलासु कामः प्रियासु सज्जायुधो वसति ॥]

ममाप्रियं कर्तुं नार्हसीति वदन्तं कान्तं मानिनी सोद्रेगमाह—

जं जं ते ण सुहाअइ तं तं ण करेमि जं ममाअत्तम् ।

अहअं चिअ जं ण सुहामि सुहअ तं किं ममाअत्तम् ॥ १५ ॥

[यद्यत्ते न सुखायते तत्तन्न करोमि यन्ममायत्तम् ।

अहमेव यन्न सुखाये सुगम तत्किं ममायत्तम् ॥]

न सुखाये न सुखायामि ॥

कथालापय प्रियं समुत्साहयितु कुलटा लज्जाखभावमाह—

वावारविसंवाअं सअलावअवाणं कुणइ हअलज्जा ।

सवणणं उणो गुरुसंणिहे वि ण णिरुञ्जइ णिओअम् ॥ १६ ॥

[व्यापारविसंवादं सकलावयवानां करोति हतलज्जा ।

श्रवणयोः पुनर्गुरुसंनिधावपि न निरुणद्धि नियोगम् ॥]

विसंवादो व्याघातः । नियोगो व्यापारः । त्वदासक्ततया नेत्रादिव्यापारः सर्व एव विसंवादं प्राप्तः । केवलं श्वशुरादिसनिधावपि त्वत्कथाश्रवणे श्रवणौ व्यापारयतीति नायकं प्रति दूतीवचनमिदमिति कश्चित् ॥

आगतप्रायस्ते प्रेयानिति सखीभिराश्वासिता प्रोषितभर्तृका सनिर्वेदमाह—

किं भणह मं सहीओ मा मर दीसिहइ सो जिअन्तीए ।

कज्जालाओ एसो सिणेहमग्गो उँण ण होइ ॥ १७ ॥

[किं भणथ मां सख्यो मा प्रियस्व द्रक्ष्यते स जीवन्त्या ।

कार्यालाप एष स्नेहमार्गः पुनर्न भवति ॥]

१. 'होइ' ख. २. 'दरवेपन' घ. ३. 'सुखयति' ग. ४. 'सुखयामि' ग,
'सुखये' घ. ५. 'चिअ' ग. ६. 'द्रक्ष्यसे प्रियं जीवन्ती' ग. ७. 'एव' ग.

भवतीभिर्यदुच्यते तत्कार्यपर्यालोचनयानुष्ठानं शक्यते । न च स्नेहः कार्यं पर्यालोच-
यतीत्यर्थः ॥

मन्दस्नेहं निष्करुणं च नायकमुपालब्धुमन्यापदेशेन काचिदाह—

एकलमओ दिट्टीअ मइअ तह पुलइओ सअह्लाए ।

पिअजाअस्स जह धणुं पडिअं वाहस्स हत्थाओ ॥ १८ ॥

[एकाकी मृगो दृष्ट्या मृग्या तथा प्रलोकितः सतृष्णया ।

प्रियजायस्य यथा धनुः पतितं व्याधस्य हस्तात् ॥]

मृग्याश्चक्षुर्निभालनेनात्मीयप्रियाविलोचनमनुस्मरतो व्याधस्य हस्तात्करुणया धनुः
पतितमित्यर्थः । अतिपामरस्य हिंस्रस्य व्याधस्याप्येवं करुणा स्नेहश्च, नतु तवेति
भावः ॥

नायिकायाः सौन्दर्यातिशयं प्रतिपादयन्ती दूती चलवृत्तं नायकमन्यापदेशेन सोपा-
लम्भमाह—

णैलिणीसु भमसि परिमलसि सत्तलं मालइं पि णो मुअसि ।

तरलत्तणं तुह अहो महुअर जइ पाँडला हरइ ॥ १९ ॥

[नैलिनीषु भ्रमसि परिमृद्रासि सप्तलां मालतीमपि नो मुञ्चसि ।

तरलत्वं तवाहो मधुकर यदि पाँटला हरति ॥]

‘सप्तला नवमालिका’ इत्यमरः । कस्याश्चिन्निर्कटे भ्रमस्येव कांचित्पीडयस्येव कां-
चिद्वचनमात्रेण सभावयसि । एतच्च तव चाञ्चल्यं पाटलवर्णां सैवापहर्तुं समर्था ना-
न्येति भावः ॥

कामुकजनप्रलोभनाय दूती नायिकायाः स्तनौ वर्णयति—

दोअङ्गुलअकवालअपिणद्धसविसेसणीलकञ्चुइआ ।

दावेइ थणत्थलवण्णिअं व तरुणी जुअजणाणम् ॥ २० ॥

[द्वैयङ्गुलककपाटकपिनद्धसविशेषनीलर्कञ्चुकिका ।

दर्शयति स्तनस्थलवर्णिकामिव तरुणी युवजनेभ्यः ॥]

द्वयङ्गुलपरिमितं संधिबन्धस्थले कपाटवत्पार्श्वद्वये यद्भवति तत्कपाटकम् । तेन पि-
नद्धो नीलकञ्चुको यस्याः सा । तथा च तत्र स्तनैकदेशदर्शनाद्गर्णिकामिव दर्शयतीत्यु-
त्प्रेक्षा । वस्तुपरीक्षार्थं यद्वस्त्वेकदेशप्रदर्शनं तद्गर्णिकेत्युच्यते ॥

१. ‘एकाकिमृगो’ घ. २. ‘प्रियजानेरित्युचितम्’. ३. ‘कमलेषु’ ग. ४. ‘कइ-
त्थपाडला’ ख. ५. ‘कमलेषु’ ग. ६. ‘कपित्थपाडला’ घ. ७. ‘द्वयङ्गुलकृतजालक’
घ. ८. ‘कञ्चुका’ ग. ९. ‘यूनः’ ग, ‘यूनाम्’ घ.

प्रतीकारोऽपि क्वचिदपकाराय भवतीति निदर्शयन्काश्चित्सखायमाह—
रक्खेइ पुत्तअं मत्थएण ओच्छोअअं पडिच्छन्ती ।

अंसुहिँ पहिअघरिणी ओल्लिज्जन्तं ण लक्खेइ ॥ २१ ॥

[रक्षति पुत्रकं मस्तकेन पटलप्रान्तोदकं प्रैतीच्छन्ती ।

अश्रुभिः पथिकगृहिणी आर्द्रीभवन्तं न लक्षयति ॥]

ओच्छोअअं इति च्छदिप्रान्तजलार्थको देशीशब्दः । प्रतीच्छन्ती गृह्णती ॥

सरस्तीरस्य पथिकाक्रान्तत्वेन संकेतस्थानभङ्गं जारं श्रावयन्ती कापि शरद्वर्णनच्छले-
नाह—

सरए सरम्मि पहिआ जलाइँ कन्दोदिसुरहिगन्धाइँ ।

धवलच्छाँइँ सअह्णा पिअन्ति दइआणँ व मुहाइँ ॥ २२ ॥

[शरदि सरसि पथिका जलानि नीलोत्पलसुरभिगन्धीनि ।

धवलच्छानि सतृष्णाः पिबन्ति दयितानामिव मुखानि ॥]

कन्दोद निलोत्पलम् । तेन सुगन्धीनि । पक्षे तद्वत्सुगन्धीनि । धवलानि च तान्य-
च्छानि च । पक्षे धवलाक्षाणि । धवलनयनानीत्यर्थः । सतृष्णाः सपिपासाः । पक्षे सा-
भिलाषाः ॥

कर्दममयादनागच्छन्तं नायकं प्रति दूतीमार्गस्य सुगमत्वप्रतिपादनच्छलेन नायि-
काया अनुरागातिशयं प्रतिपादयन्ती आह—

अब्भन्तरसरसाओ उवरिँ पव्वाअबद्धपङ्काओ ।

चङ्कम्मन्तम्मि जणे समुस्ससन्ति व्व रच्छाओ ॥ २३ ॥

[अभ्यन्तरसरसा उपरि प्रवातबद्धपङ्काः ।

चङ्कममाणे जने समुच्छ्वसन्तीव रँथाः ॥]

प्रवातेन प्रकृष्टवातेन बद्धः पङ्को यासु ताः । अत्र समासोक्त्वलंकारेण प्रवातप्रायगु-
रुजनभयेनोपरि रूक्षत्वेऽप्यन्तरनुरक्तत्वं नायिकाया व्यज्यते ॥

पिष्टककणावकीर्णौ कस्याश्चित्स्तनौ साभिलाषं वर्णयन्नागरिकः सहचरमाह—

मुहपुण्डरीअछाआइ संठिआ उअह राअहंसे व्व ।

छणपिटुकुट्टुणुच्छलिअधूलिधवले थणे वहइ ॥ २४ ॥

१. 'अच्छोदकं' ग-घ. २. 'प्रतीक्षमाणा' घ. ३. 'कमल' घ. ४. 'धवलानि'
ग. ५. 'आश्यानबद्धपङ्काः' ग, 'विशुष्कबद्धपङ्काः' घ. ६. 'चङ्कमति' ग. ७. 'प-
न्थानः' ग.

[मुखपुण्डरीकच्छायायां संस्थितौ पश्यत राजहंसाविव ।
क्षीणपिष्टकुट्टनोच्छलितधूलिधवलौ स्तनौ वहति ॥]

धन उन्सव. ॥

* प्रोत्रिदन्योन्यानुरागं प्रकटयन्नागरिकः स्ववैदग्ध्यख्यापनार्थमाह—
तह तेणवि सा दिट्टा तीअ वि तह तस्स पेसिआ दिट्ठी ।
जह दोण्ह वि समअं चिअ णिवुत्तरआइँ जाआइँ ॥ २५ ॥

[तथा तेनापि सा दृष्टा तथा तस्मै प्रेषिता दृष्टिः ।
यथा द्वावपि सममेव निर्वृत्तरतौ जातौ ॥]

सममेव एककालमेव ॥

जारं प्रत्यभिसाररसिकतां सूचयन्ती कुलटा ग्रीष्मवर्णनमाह—

वाउलिआपरिसोसण कुँडङ्गपत्तलणसुलहसंकेअ ।

सोहग्गकणअकसवट्ट गिम्ह मा कह वि झिज्जिहिसि ॥ २६ ॥

[स्वल्पखातिकापरिशोषण निकुञ्जपत्रकरणसुलभसंकेत ।

सौभाग्यकनककषपट्ट ग्रीष्म मा कथमपि क्षीणो भविष्यसि ॥]

वाउलिआशब्दः स्वल्पखातिकायां देशी । स्वल्पखातिकानां परिशोषणेन निकुञ्जानां
पत्रसप्त्या च सुलभः संकेतो यत्र स तथेति ग्रीष्मसबोधनम् ॥

दुर्जनससर्गादुद्विग्नं गुणशालिनं विदग्धा काप्यन्यापदेशेन प्रवृत्तिपाटवार्थमाह—

दुस्सिक्खिअरअणपरिक्खएहिँ घिट्ठोसि पत्थरे तावा ।

जा तिलमेत्तं वट्टसि मरगअ का तुज्झ मुल्लकहा ॥ २७ ॥

[दुःशिक्षितरत्नपरीक्षकैर्धृष्टोऽसि प्रस्तरे तावत् ।

यावत्तिलमात्रं वर्तसे मरकत का तव मूल्यकथा ॥]

दुःशिक्षिता अतत्त्वज्ञा दुर्विदग्धाश्च । अहं त्वतिशयितव्युत्पन्ना सर्वं तत्त्वं जानामीति
भावः ॥

पल्लीनिवासिन्या विलासिन्या दूती पल्लीभङ्गशङ्कयानागच्छन्तं तत्कान्तं तत्समीपगम-
ना योत्साहयितुमाह—

जैह चिन्तेइ परिअणो आसङ्कइ जह अ तस्स पडिवक्खो ।

बालेण वि गामणिणन्दणेण र्त्तह रक्खिआ पल्ली ॥ २८ ॥

१. 'घन' घ. २. 'तस्य' घ. ३. 'द्वयोरपि सममेव निर्वृत्तरतानि जातानि' घ.

४. 'मिउङ्ग' ख. ५. 'वापिका' घ. ६. 'क्षयिष्यसि' घ. ७. 'तह' ग. ८. 'तह'

ग-पुस्तके नास्ति.

[यथा चिन्तयति परिजन आशङ्कते यथा च तस्य प्रतिपक्षः ।

बालेनापि ग्रामणीनन्दनेन तथा रक्षिता पल्ली ॥]

कथमनेन बालेन रक्षा कर्तव्येति परिजनश्चिन्तयति । बालोऽयमस्माभिर्ग्राह्य इति प्रतिपक्षश्चिन्तयतीत्यर्थः ॥

पत्युर्विक्रमगुणं ख्यापयन्ती व्याधवधूः पृषतचर्मं पृच्छन्तं पथिकमाह—

अण्णेषु पहिअ पुच्छसु वैहअपुत्तेसु पुसिअचम्माइं ।

अम्हं वाहजुआणो हरिणेषु धणुं ण गामेइ ॥ २९ ॥

[अन्येषु पथिकं पृच्छ व्याधकपुत्रेषु पृषतचर्मणि ।

अस्माकं व्याधयुवा हरिणेषु धनुर्न नामयति ॥]

पृषतो मृगविशेषः । 'गोकर्णपृषतैर्णश्यरोहिताश्रमरो मृगाः' इत्यमरः । प्रचण्डदोर्दण्डबलमदोद्धतोऽयं करुणया मृगान्न हन्ति । किंतु मत्तमातङ्गानिति भावः ॥

वधू प्रति सासूया व्याधमाता बन्धुजनमाह—

गअवहुवेहव्वअरो पुत्तो मे एककण्डविणिवाई ।

तह सोल्लाइ पुँलइओ जह कण्डवरण्डअं वहइ ॥ ३० ॥

[गजवधूवैधव्यकरः पुत्रो मे एककाण्डविनिपाती ।

तथा स्नुषया प्रैलोकितो यथा काण्डसमूहं वहति ॥]

'विण्डिओ' इति क्वचित्पाठः । तत्र विलङ्घितः शोषित इत्यर्थः । वरण्डकः समूहः । अयमर्थः—पूर्वमसौ मत्पुत्र एकेनैव शरेण मत्तमातङ्गान्हत्वा तद्वधूना वैधव्यं कृतवान् । सप्रति वधूसक्तः शरसमूहमेव वहति, नतु किमपि कर्तुं क्षम इत्यर्थः ॥

ग्रामणीभार्या शत्रुं विजित्य सङ्ग्रामादागतस्य शस्त्रभिन्नस्य भर्तुर्मनस्विनो मानग्लानिश्रवणान्मरणमाशङ्कमाना तन्निवारणाय परिजनमाह—

विञ्झारुहणालावं पल्ली मा कुणउ गामणी ससइ ।

पच्चजिविओ जइ कह वि सुणइ ता जीविअं मुअइ ॥ ३१ ॥

[विन्ध्यारोहणालापं पल्ली मा करोतु ग्रामणीः श्वसिति ।

प्रत्युज्जीवितो यदि कथमपि शृणोति तज्जीवितं मुञ्चति ॥]

पल्लीनिवसिजनो भयाद्विन्ध्यारोहणकथा मा करोतु । अस्मिञ्जीवति कुतो भयमिति

१. 'तथा' ग. २. 'तथा' ग-पुस्तके नास्ति ३. 'वाहकुडुम्बेसु' ग. ४. 'व्याधकुडुम्बेसु' ग. ५. 'विलुल्लिओ' ग. ६. 'विनिघाती' घ. ७. 'विलुल्लितो' ग, 'विघटितो' घ. ८. 'काण्डकं' घ. ९. 'यथा' घ.

भावः । श्वसिति जीवति । प्रत्युज्जीवितः प्रत्यागतप्राणो यदि शृणोति तदा पल्लीनिवासि-
जनपलायनश्रवणजातमानभङ्गो जीवितमेव जह्यादित्यर्थः ॥

यो यस्य स्निग्धः स म्रियमाणोऽपि तस्य हितमेवोपदिशतीति निदर्शयन् कोऽपि सह-
चरमाह—

अप्याहेइ मरन्तो पुत्रं पल्लीवई पअत्तेण ।

मह णामेण जह तुमं ण लज्जसे तह करेज्जासु ॥ ३२ ॥

[शिक्षयति म्रियमाणः पुत्रं पल्लीपतिः प्रयत्नेन ।

मम नाम्ना यथा त्वं न लज्जसे तथा करिष्यसि ॥]

अप्याहेइ शिक्षयति संदिशतीति वार्थः । यः खलु निर्गुणो भवति सोऽमुकस्य पुत्रो-
ऽयमिति व्यपदिश्यते पूज्यते चेति नाम्नो लज्जाहेतुत्वम् । गुणवास्तु स्वपौरुषेणैव ख्यातो
भवतीति भावः ॥

अनुकूले विधावमङ्गलान्यपि मङ्गलानि भवन्तीति निदर्शयन्कोऽपि सखायमाह—

अणुमरणपत्थिआए पच्चागअजीविए पिअअमम्मि ।

वेहव्वमण्डणं कुलवहूअ सोहग्गअं जाअम् ॥ ३३ ॥

[अनुमरणप्रस्थितायाः प्रत्यागतजीविते प्रियतमे ।

वैधव्यमण्डनं कुलवध्वाः सौभाग्यकं जातम् ॥]

दन्तचिह्नं दृष्ट्वा परस्त्रीसङ्गशङ्कया पशुकल्पानां पामरीणामपीर्ष्या भवति निरपराधे
पत्न्यौ, किं पुनरस्या महाकुलीनायाः शीलादार्यादिगुणसपन्नायाः सापराधे त्वयि । अतः
पादयोः पतित्वैना प्रसादयेत्यनुनयविमुखं नायकं प्रति दूत्याह—

महुमच्छिआइ दट्टं दट्टूण सुहं पिअस्स सूणोट्टम् ।

ईसालुई पुलिन्दी रुक्खच्छाअं गआ अण्णम् ॥ ३४ ॥

[मधुमक्षिकया दष्टं दृष्ट्वा सुखं प्रियैस्सोच्छूनोष्ठम् ।

ईर्ष्यालुः पुलिन्दी वृक्षच्छायां गतान्याम् ॥]

पत्या सह कृतकलहा सा त्वत्समागमाभिलाषिणी तिष्ठतीति जारं प्रति दूत्या इयमु-
क्तिरिति कश्चित् ॥

गिरिग्रामप्रशंसाल्लेनासती जारं प्रति स्वच्छन्दाभिसारस्पृहामाह—

धण्णा वसन्ति णीसङ्कमोहणे बहलपत्तलव्वेइम्मि ।

वाअन्दोलणओणविअवेणुगहणे गिरिग्गामे ॥ ३५ ॥

[धन्या वसन्ति निःशङ्कमोहने बहलपत्रलघृतौ ।

वातान्दोलनावनामितवेणुगहने गिरिग्रामे ॥]

निःशङ्कं मोहनं सुरत यत्र सः । तथा बहलैरुच्चतरैः पत्रलैः पत्रबहुलैरर्थाद्दृक्षैर्वृतिर्वेष्टनं यत्र ॥

गिरिग्रामगमनाय नायकमुत्साहयन्ती दूती वर्षागमनकृतं तेषां रामणीयकातिशयमाह—

पप्फुल्लघनकलम्बा णिद्धोअसिलाअला मुइअमोरा ।

पसरन्तोज्झरमुहला ओसाहन्ते गिरिग्गामा ॥ ३६ ॥

[प्रोत्फुल्लघनकदम्बा निर्धौतशिलातला मुदितमयूराः ।

प्रसरन्निर्झरमुखरा उत्साहयन्ति गिरिग्रामाः ॥]

अत्र प्रथमविशेषणेन सभोगोद्दीपनविभाव, द्वितीयेन शयनस्थलम्, तृतीयेन संभोगानन्तरं विनोदसंभारः, चतुर्थेन स्तनितमणितादिध्वनिनिह्ववश्च प्रतिपाद्यते ॥

नीरसायामपि रसोत्पादकत्वमन्यापदेशेन कथयन्ती दूती नायकस्य सुरतोपचारचतुर्थे कामिनीजनानुरञ्जनार्थमाह—

तह परिमलिआ गोवेण तेण हत्थं पि जा ण ओल्लेइ ।

स च्चिअ धेणू एहिं पेच्छसु कुडदोहिणी जाआ ॥ ३७ ॥

[तथा परिमलिता गोपेन तेन हस्तमपि यार्द्रयति ।

सैव धेनुरिदानीं प्रेक्षध्वं कुटदोहिनी जाता ॥]

तथा तेन प्रकारेण स्तनपृष्ठादिपरामर्शेन, पक्षे करिहस्तादिविन्यासेन । कुटो घटः । घटपूर्णं दुग्धं ददातीत्यर्थः । पक्षे बहुतरं स्मरजलं क्षरतीत्यर्थः ॥

कापि कस्याश्चित्तौभाग्यातिशयमन्यापदेशेनाह—

धवलो जिअइ तुह कए धवलस्स कए जिअन्ति गिट्ठीओ ।

जिअ तम्बे अम्ह वि जीविण्ण गोठं तुमाअत्तम् ॥ ३८ ॥

[धवलो जीवति तव कृते धवलस्य कृते जीवन्ति गृष्टयः ।

जीव हे गौः अस्माकमपि जीवितेन गोष्ठं त्वदायत्तम् ॥]

तम्बा गौः, धवलो वृषश्रेष्ठः । 'धवला गवि । वृषश्रेष्ठे पुमान्' इति मेदिनीकोषः । गृष्टिरेकवारप्रसूता गौः । 'अथ गृष्टिः सकृत्प्रसूतगवि' इति मेदिनीकोषः ॥

१. 'वने' ग-घ. २. 'वातान्दोलनचलद्वेषु' ग. ३. 'उअसाहन्ते, ग. ४. 'प्रसरन्तो झर' घ. ५. 'गृष्ट्य' ग.

यो यस्य प्रियस्तस्य तदवयवानुकारिणि प्रीतिर्भवतीति निदर्शयन्कोऽपि सहचर
माह—

अग्घाइ छिवइ चुम्बइ ठेवइ हिअअम्मि जणिअरोमञ्चो ।
जाआकवोलसरिसं पेच्छह पहिओ महुअउप्फम् ॥ ३९ ॥

[आजिघ्रति स्पृशति चुम्बति स्थापयति हृदये जनितरोमाञ्चः ।

जायाकपोलसदृशं पश्यत पथिको मधूकपुष्पम् ॥]

नार्तस्तत्त्वविचारणक्षमो भवतीति दर्शयन्कोऽपि मध्याह्नवर्णनमाह—

उअ ओल्लिजइ मोहं भुअंगकित्तीअ कडअलग्गाइ ।

ओज्झरधारासद्दालुएण सीसं वणगएण ॥ ४० ॥

[पश्याद्रींक्रियते मोघं भुजंगकृतौ कटकलभायाम् ।

निर्झरधाराश्रद्दालुकेन शीर्षं वनगजेन ॥]

‘अप्पिज्जइ’ इति पाठे अप्यर्थः । इत्यर्थः । मोघं निरर्थकम् । कृतौ कञ्चुके । वनगजे-
नार्थात्प्रचण्डातपतप्तेन । जारस्यान्यमनस्कतासंपादनार्थं मध्याह्नाभिसारिकाया उक्तिर्वा ॥

पूर्वनायिकां विहाय गुणान्तरलोभेन नाथिकान्तरगामिनं नायकं काप्यन्यापदे-
शनाह—

कमलं मुअन्त महुअर पिक्ककइत्थाण गन्धलोहेण ।

आलेक्खलडुअं पामरो व्व छिविऊण जाणिहिसि ॥ ४१ ॥

[कमलं मुञ्चन्मधुकर पक्ककपित्थानां गन्धलोभेन ।

आलेख्यलडुकं पामर इव स्पृष्टा ज्ञास्यसि ॥]

यथा ह्यनभिज्ञः पामरश्चित्रस्थं मोदकादिकमालोकयन्मोदमानः करस्थं भक्ष्यमपहाय
तज्जिघृक्षया गतः स्पृष्ट्वा तत्स्वरूपमवधार्य खिद्यते, एवं त्वमपि नीरसकर्कशस्पर्शकपि-
त्थस्य गन्धेनाकृष्टचेताः कमलं मुञ्चन्स्पर्शनसमनन्तरमेतयोरन्तरं ज्ञास्यसीति भावः ॥

काप्यासन्नविवाहाया सखीजनं सपरिहासमाह—

गिज्जन्ते मङ्गलग्गाइआहिं वरगोत्तदिण्णअण्णाए ।

सोउं व णिग्गओ उअह होन्तवहुआइ रोमञ्चो ॥ ४२ ॥

[गीयमाने मङ्गलग्गायिकाभिर्वरगोत्रदत्तकर्णायाः ।

श्रोतुमिव निर्गतैः पश्यत भविष्यद्वधूकाया रोमाञ्चः ॥]

गोत्रं नाम ॥

-
१. ‘आघ्राति’ ग. २. ‘प्रकम्पते’ घ. ३. ‘अवज्ञर’ घ. ४. ‘मुच्यमान’ ग.
५. ‘गायनीभिः’ ग. ६. ‘निर्गच्छति’ ग. ७. ‘वध्वा’ ग-घ.

आसन्नविवाहा व्यभिचारशीला काचित्पुष्पितं संकेतवेतसनिकुञ्जमालोकयोत्प्रेक्षते—

मण्णे आअण्णन्ता आसण्णविआहमङ्गलुग्गाइम् ।

तेहिँ जुआणेहिँ समं हसन्ति मं वेअसकुडङ्गा ॥ ४३ ॥

[मैन्ये आकर्णयन्त आसन्नविवाहमङ्गलोद्गीतम् ।

तैर्युवभिः समं हसन्ति मां वेत्तसनिकुञ्जाः ॥]

यैः समं पूर्वं सुरतसौख्यमनुभूतं तैः सममित्यर्थः ॥

बन्धुजनप्रीतये काचिदचिरवृत्तविवाहयोर्दपत्नोरन्योन्यानुरागमाह—

उअगअचउत्थिमङ्गलहोन्तविओअसविसेसलगोहिँ ।

तीअ वरस्स अ सेअंसुएहिँ रुण्णं व हत्थेहिँ ॥ ४४ ॥

[उपगतचतुर्थीमङ्गलभविष्यद्वियोगसविशेषलम्नाभ्याम् ।

तस्या वरस्य च स्वेदाश्रुभी रुदितमिव हस्ताभ्याम् ॥]

उपगते चतुर्थीमङ्गले वियोगो भविष्यतीति भयेन सविशेषं लम्नाभ्यामित्यर्थः । चतुर्थी कृत्वा जामाता स्वगृह गच्छतीति लोकव्यवहारः ॥

नववधूसंगमस्यालौकिकचमत्कारित्वं प्रतिपादयन्कोऽपि सहचरमाह—

ण अ दिट्ठिं णेइ मुहं ण अ छिविउं देह णालवइ किं पि ।

तह वि हु किं पि रहस्सं णववहुसङ्गो पिओ होइ ॥ ४५ ॥

[न च दृष्टिं नयति मुखं न च स्पष्टं ददाति नालपति किमपि ।

तथापि खलु किमपि रहस्यं नववधूसङ्गः प्रियो भवति ॥]

अत्र प्रियत्वहेतुमन्तरेणापि प्रियत्वमिति विभावनालंकारः । 'क्रियायाः प्रतिपेधेऽपि ऋलव्यक्तिर्विभावना' इति तल्लक्षणात् ॥

बालाया वाम्येन कुपितं वरं प्रसादयितुं कापि नववध्वाः स्वभावमाह—

अलिअपसुत्तवलन्तम्मि णववरे णववहूअ वेवन्तो ।

संवेळ्ळिओरुसंजमिअवत्थगण्ठि गओ हत्थो ॥ ४६ ॥

[अलीकप्रसुप्तवलमाने नववरे नववध्वा वेपमानः ।

संवेष्टितोरुसंयमितवस्त्रग्रन्थि गतो हस्तः ॥]

अलीकप्रसुप्तश्चासौ वलमानश्च तथाभूते सतीत्यर्थः । संवेष्टिताभ्यामन्योन्यसंश्लेषिता-

१. 'चेअसि' ख-ग. २. 'जानासि' ग. ३. 'सार्ध' ग. ४. 'चेतसि' ग. ५. 'पश्य चतुर्थी' घ. ६. 'सार्धः' ग. ७. 'प्रसुप्ते वलति' ग. ८. 'कम्पितोर' ग.

भ्यामूरुभ्यां संयमितस्य वल्लस्य ग्रन्थिं नववध्वा हस्तो गत इति संबन्धः । स्वभाव एवायं बालानाम् । ननु कोपेनेति भावः ॥

नववधूवल्लम्भणानभिज्ञेन कान्तेन कोपितायाः कस्याश्चिदवस्थां कापि सखीमाह—

पुच्छिज्जन्ती ण भणइ गहिआ पप्फुरइ चुम्बिआ रुअइ ।

तुल्लिक्का णववहुआ कआवराहेण उवऊढा ॥ ४७ ॥

[पुच्छयमाना न भणति गृहीता प्रस्फुरति चुम्बिता रोदिति ।

तूष्णीका नववधूः कृतापराधेनोपगूढा ॥]

संमत्यभावेऽपि नववधूर्बलादुपभोक्तव्येति नायकं प्रति दूत्या उक्तिर्वा ॥

पुनः पुनः कस्यचित्कथाः कुर्वतीं कामप्युपहसन्ती कापि मातृभगिनीमाह—

तत्तो च्चिअ होन्ति कहा विअसन्ति तहिं तहिं समप्पन्ति ।

किं मण्णे माउच्छा एक्कजुआणो इमो गामो ॥ ४८ ॥

[तत एव भवन्ति कथा विकसन्ति तत्रै तत्र समाप्यन्ते ।

किं मन्ये मातृष्वसः एकयुवकोऽयं ग्रामः ॥]

किमन्यो युवा नास्ति येन तत्कथैकमुखरो लोक इत्याशयः ॥

विरहोत्कण्ठता काचिद्वल्लभवचनस्य वचनान्तराद्विशेषमनुभवसिद्धं प्रदर्शयति—

जाणि वआणाणि अम्हे वि जम्पिओ ताई जम्पइ जणो वि ।

ताई चिअ तेण पजम्पिआइं हिअअं सुहावेन्ति ॥ ४९ ॥

[यानि वचनानि वैयमपि जल्पामस्तानि जल्पति जनोऽपि ।

तान्येव तेन प्रजल्पितानि हृदयं सुखयन्ति ॥]

जारसंगमायोत्साहयन्ती दूती पत्या सह कृतकलहां नायिकामाह—

सव्वाअरेण मग्गह पिअं जणं जइ सुहेण वो कज्जम् ।

जं जस्स हिअअदइअं तं ण सुहं जं तहिं णत्थि ॥ ५० ॥

[सैर्वादरेण मृगयध्वं प्रियं जनं यदि सुखेन वः कार्यम् ।

यद्यस्य हृदयदयितं तन्न सुख र्थत्तत्र नास्ति ॥]

तथा च यत्रानुरागः स एव नायकः सुखहेतुरिति भावः ॥

१. 'तत्रैव निर्गच्छन्ति' ग. २. 'तत्रैव तत्रैव' ग, 'तस्मिस्तस्मिन्समर्प्यन्ते' घ.
३. 'वयं जल्पामहे' ग. ४. 'तान्येव' ग. ५. 'सुखापयन्ति' घ. ६. 'सत्यादरेण जल्पत' घ. ७. 'मार्गयत' ग. ८. 'यत्र तत्र' ग, 'यत्तस्मिन्न' घ.

तथैवापरगाथामाह—यद्वा प्रसाधनं विनैव कान्तदर्शनायागतां दुहितरं प्रति कुन्धन्तीं स्वयं कश्चिदाह—

दीसन्तो दिट्टिसुओ चिन्तिज्जन्तौ मणवल्लहो अत्ता ।

उल्लावन्तौ सुइसुहो पिओ जणो णिच्चरमणिज्जो ॥ ५१ ॥

[दृश्यमानो दृष्टिसुखश्चिन्त्यमानो मनोवल्लभः श्वश्रु ।

उल्लप्यमानः श्रुतिसुखः प्रियो जनो नित्यरमणीयः ॥]

उल्लप्यमानः कीर्त्यमानः । नित्येति । तथाचाल प्रसाधनायासेनेति भावः ॥

क्षीणधनत्वात्पूर्वं निष्कासितः पुनरुपाजितधनो दुहितृक्षेहसुपदर्शयन्त्या कुट्टन्यानुनीयमानो भुजंगः सोपालम्भप्रत्याख्यानमात्मनिन्दाव्याजेनाह—

ठाणब्भट्टा परिगलिअपीणआ उण्णईअ परिचत्ता ।

अम्हे उण ठेरपओहर व्व उअरे च्चिअ णिसण्णा ॥ ५२ ॥

[स्थानभ्रष्टाः परिगलितपीनत्वा उन्नत्या परित्यक्ताः ।

वयं पुनः स्थविरार्पयोधरा इवोदर एव निषण्णाः ॥]

धनवन्त एव युष्माकमनुरूपाः । वयं तु हारितधनत्वादुदरभरणमात्रव्यापृताः । तत्किमस्माभिर्युष्माक प्रयोजनमिति भावः ॥

खण्डिता काचित्सूर्यनमस्कारच्छलेन कान्तमुपालभते—

पच्चूसागअ रञ्जितदेह पिआलोअ लोअणाणन्द ।

अण्णत्तखविअसव्वरि णहभूसण दिणवइ णमो दे ॥ ५३ ॥

[प्रत्यूषागत रक्तदेह प्रियालोक लोचनानन्द ।

अन्यत्रक्षपितशर्वरीक नभोभूषण दिनपते नमस्ते ॥]

प्रत्यूषे प्रभाते आगतो द्वीपान्तरात्, पक्षे महिलान्तरगृहात् । रक्त आरक्तः, पक्षे-
ऽनुरक्तः । अन्यमहिलायामित्यर्थात् । देहो यस्य सः । तथा प्रिय आलोको यस्य सः ।
पक्षे प्रियालोकस्य महिलाजनस्य लोचनानन्दो यस्मात्सः । अन्यत्र द्वीपान्तरे, पक्षे अ-
न्यस्यार्थे क्षपिता शर्वरी येन । नभसो भूषण, पक्षे परस्त्रीदत्तनखभूषण । दिनपते नमस्ते ।
भास्वानिव दूरादेवाभिवन्दनीयस्त्वं न त्वभिगम्य इत्यर्थः । अत्र सूर्यनायकयोरुपमानोप-
मेयभावो व्यङ्ग्यः ॥

कि गर्भवती भवती इति प्रियेण पृष्टा काचिदाह—

विवरीअसुरअलेह्ल पुच्छसि मह कीस गव्वसंभूइम् ।

ओअत्ते कुम्भमुहे जललवकणिआ वि किं ठाइ ॥ ५४ ॥

[ध्वनिगतमुरतलम्पट पृच्छसि मम किमिति गर्भसंभूतिम् ।
अपवृत्ते कुम्भमुखे जललवकणिकापि किं तिष्ठति ॥]

प्रपन्नमेऽशुमुखीकृते ॥

समार्थाः स्वाजन्यमप्यपलपन्तीति निदर्शयन्कश्चिदाह—

अत्राम्णविवाहे समं जसोआइ तरुणगोवीहिं ।

वडन्ते महुमहणे संवन्धा णिहुविज्जन्ति ॥ ५५ ॥

[अत्यासन्नविवाहे समं यशोदया तरुणगोपीभिः ।

वर्धमाने मधुमथने संवन्धा निहूयन्ते ॥]

यशोदया समं ये संवन्धास्ते निहूयन्त इत्यन्वयः ॥

अनुत्पन्नायकालाभेन निर्विण्णा कापि सोपालम्भं विविमाह—

जं ज आलिहइ मणो आसावट्टीहिं हिअअफलअम्मि ।

तं तं बालो व्व विही णिहुअं हसिउण पम्हुसइ ॥ ५६

[यद्यदालिखति मन आशावर्तिकाभिर्हृदयफलके ।

तत्तद्वाल इव विधिर्निभृतं हसित्वा प्रोच्छति ॥]

• णिउणा काप्पन्यापदेशेन कान्तं सचमत्कारमाह—

अगुट्टो करफंसो सअलअलापुण्ण पुण्णदिअहम्मि ।

वीआसङ्गकिसङ्गअ एहिं तुह वन्दिमो चलणे ॥ ५७ ॥

[अनुभूतः करस्पर्शः सकलकलापूर्णं पूर्णदिवसे ।

द्वितीयासङ्गकशाङ्ग इदानीं तव वन्दामहे चरणौ ॥]

अग क्रमणाः, पक्षे करो हस्तः । सकलकलाभिः षोडशकलाभिः पूर्णं,
असङ्गकलाभिः पूर्णं । पूर्णदिवसे पूर्णिमादिवसे, पक्षे पुण्यदिवसे । द्वितीया ।
द्वितीया स्त्री । तस्याः सङ्गेन कशाङ्ग । 'द्वितीया सहधर्मिणी' इत्यमरः । अः
सदलंकारेण चन्द्रकान्तयोरुपमानोपमेयभावो व्यङ्ग्यः ॥

विग्रहोत्कण्ठिता दूतीमाह—

दूरन्तरिए वि पिए कह वि णिअत्ताइँ मज्झ णअणाँइँ ।

हिअअं उण तेण समं अज्ज वि अणिवारिअं भमइ ॥ ५८

१. 'लुब्ध' ग. २. 'अवनते' ग. ३. 'आशापङ्क्तिभिः' ग, 'आशावृत्ति
४. 'बालक इव' ग. ५. 'प्रमुषति' घ.

[दूरान्तरितेऽपि प्रिये कथमपि निर्वर्तिते मम नयने ।

हृदयं पुनस्तेन सममद्याप्यनिवारितं भ्रमति ॥]

मानं कर्तुमसमर्थो नायिकां प्रति दूती सप्रणयकोपमाह—

तस्स कहाकण्टइए सदाअण्णणसमोसरिअकोवे ।

समुहालोअणकम्पिपरि उवऊढा किं पैवज्जिहिसि ॥ ५९ ॥

[तस्य कथाकण्टकिते शब्दाकर्णनसमपसृतकोपे ।

संमुखालोकनकम्पनशीले उपगूढा किं प्रपत्स्यसे ॥]

संध्यासमयसूचनव्याजेन दूती काचिदभिसारिका त्वरयितुमाह—

भरणमिअणीलसाहग्गखलिअचलणद्धविहुअवक्खउडा ।

तरुसिहरेसु विहंगा कह कह वि लहन्ति संठाणम् ॥ ६० ॥

[भरनमितनीलशाखाग्रस्खलितचरणार्धविधुतपक्षपुटाः ।

तरुशिखरेषु विहंगाः कथं कथमपि लभन्ते सस्थानम् ॥]

नीलेखनेनार्द्रतया स्निग्धत्वम् । तच्च पदस्खलने हेतुरिति सूचितम् ॥

असतीं प्रशंसता केनापि संगता काचिदसती तमाह—

अहरमहुपाणधारिल्लिआइ जं च रमिओ सि सविसेसम् ।

असइ अलज्जिरि बहुसिक्खरि त्ति मा णाह मण्णुहिसि ॥ ६१ ॥

[अधरमधुपानलालसया यच्च रमितोऽसि सविशेषम् ।

असती अलज्जाशीला बहुशिक्षितेति मा नाथ मंस्थाः ॥]

असतीरक्षणस्य दुःशकतामसती पति श्रावयन्ती काचिदाह—

खाणेण अ पाणेण अ तह गहिओ मण्डलो अडअणाए ।

जह जारं अहिणन्दइ भुक्कइ घरसाभिए एन्ते ॥ ६२ ॥

[खींदनेन च पानेन च तथा गृहीतो मण्डलोऽस्यैत्या ।

यथा जारमभिनन्दति भुक्कति गृहस्वामिन्येति ॥]

गृहीतो वशीकृतः । मण्डल कुकुरः । 'मण्डलं परिधौ कुष्ठे देशे द्वादशराजसु । क्ली-

१. 'निवृत्तेऽस्माकं' ग, 'निवृत्तानि मम नयनानि' घ. २. 'वहति' ग. ३. 'वेवरि'
 ४. 'विलिज्जिहिसि' ग. ५. 'शब्दायमाने' ग. ६. 'वेपिते' ग, 'वेपनशीले' घ.
 ७. 'विलायिष्यसि' ग. ८. 'चलणग्ग' ग. ९. 'चरणग्र' ग. १०. 'भक्षणेन' ग.
 ११. 'स्वैरिण्या' घ. १२. 'अभिनन्दयति शब्दायति स्वामिन्यागच्छमाने' ग.

बेऽथ निवहे विम्बे त्रिषु पुंसि तु कुकुरे ॥' इति मेदिनीकोपः । मुकते शब्दायते । एति
आगच्छति । सतिसप्तमी ॥

नायिकान्तरानुरक्तजामातृदर्शनेन खडुहितरमनुशोचन्तीं व्याधश्चरूं दृष्ट्वा का-
चिदाह—

कण्डन्तेण अकण्डं पल्लीमज्जम्मि विअडकोअण्डम् ।

पइमरणाहिं वि अहिअं वाहेण रुआविआ अत्ता ॥ ६३ ॥

[कण्डूयता अकाण्डे पल्लीमध्ये विकटकोदण्डम् ।

पतिमरणादप्यधिकं व्याधेन रोदिता श्वैश्रूः ॥]

कण्डूयता तक्षणेन सूक्ष्मं कुर्वता ॥

किमिति रोदिषीति सख्या पृष्ट्वा काचिदाह—

अम्हे उज्जुअसीला पिओ वि पिअसहि विआरपरिओसो ।

ण हु अण्णा का वि गई वाहोहा कह पुसिज्जन्तु ॥ ६४ ॥

[वयं ऋजुकशीलाः प्रियोऽपि प्रियसखि विकारपरितोषः ।

न खल्वन्या कापि गतिर्बाष्पौघाः कथं प्रोच्छ्रयताम् ॥]

विकारेषु हावभावादिषु परितोषो यस्य सः । हावभावाद्यभिज्ञाभिर्नायिकाभिरपहतह-
दयोऽयम् । मया तु किमपि न ज्ञायत इत्यतो रयत इति भावः ॥

अनुरक्तायामपि मयि नानुरक्तोऽसीति कापि नायकं सोपालम्भमाह—

धवलो सि जइ वि सुन्दर तह वि तुए मज्ज रञ्जिअं हिअअम् ।

राअभरिए वि हिअए सुहअ णिहित्तो ण रत्तो सि ॥ ६५ ॥

[धवलोऽसि यद्यपि सुन्दर तथापि त्वया मम रञ्जितं हृदयम् ।

रागभ्रंतेऽपि हृदये सुभग निहितो न रक्तोऽसि ॥]

धवलः शुभ्रः श्रेष्ठश्च । रागो लौहित्यमनुरागश्च ॥

उल्लसत्कुङ्कुमादिपरिमलसमुज्ज्वलनेपथ्यां गुणहीनां कामप्यनुवर्तमानं कामिजनमुपह-
सन्ती काचिदाह—

चञ्चुपुडाहअविअलिअसहआररसेण सिन्देहस्स ।

कीरस्स मग्गलग्गं गन्धन्धं भमइ भमरउलम् ॥ ६६ ॥

१. 'कर्षता च कष्ट' ग. २. 'बाष्पेण रुदिता' घ. ३. 'माता' ग. ४. 'उज्ज्वल-
शीलाः' ग. ५. 'विकारद्वेषी' ग, 'विहारपरितोष.' घ. ६. 'प्रसार्यन्ते' घ. ७. 'भ-
रिते' घ.

[चञ्चुपुटाहतविर्गलितसहकाररसेन सिक्तदेहस्य ।

कीरस्य मार्गलभ्रं गन्धान्धं भ्रमति भ्रमरकुलम् ॥]

जातानुरागा गृहिणी विदिताभिप्रायं प्रवासिजनमाह—

एत्थ णिमज्जइ अत्ता एत्थ अहं एत्थ परिअणो सअलो ।

पैन्थिअ रत्तीअन्धअ मा मह सअणे णिमज्जिहिसि ॥ ६७ ॥

[अत्र निर्मज्जति श्वश्रूरत्राहमत्र परिजनः सकलः ।

पथिक रात्र्यन्ध[क] मा मम शयने निर्मज्जयसि ॥]

निमज्जति स्वपिति ॥

विरहानलस्य दुःसहत्वं प्रतिपादयन्ती विरहिणी काचिदाह—

परिओससुन्दराइं सुरएसु लहन्ति जाइँ सोक्खाइं ।

ताइं च्चिअ उण विरहे ख्वाउग्गिण्णाइँ कीरन्ति ॥ ६८ ॥

[परितोषसुन्दराणि सुरतेषु लभन्ते यानि सौख्यानि ।

तान्येव पुनर्विरहे ख्वादितोद्गीर्णानि कुर्वन्ति ॥]

लभन्ते । कामिन्य इति शेषः । तान्येवेति । तथा च नेमानि विरहदुःखानि कितु
भुक्तानि सुखान्येवोद्गीर्णानि । एतद्रूपेण परिणतानीत्यपह्वल्यलंकारो व्यङ्ग्यः ॥

कोऽपि साभिलाषः कस्याश्चित्पीनोन्नतपयोधराया हारं वर्णयति—

मग्गं चिअ अलहन्तो हारो पीणुण्णआणँ थणआणम् ।

उव्विग्गो भमइ उरे जमुणाणइफेणपुञ्जो व्व ॥ ६९ ॥

[मार्गमिर्धालभमानो हारः पीनोन्नतयोः स्तनयोः ।

उद्विग्नो भ्रमत्युरसि यमुनानदीफेर्नपुञ्ज इव ॥]

अत्र यमुनाफेनसादृश्येन स्तनमुखश्यामता व्यज्यते । तथा च सत्त्वाधानम्, तेन
नुपभोग्यतेति स्वयमूहनीयम् ॥

राजसंनिधौ तिष्ठता तेन मम मित्रेण किं संपादितमिति केनापि पृष्टः कश्चिदन्याप-
नाह—

एक्केण वि वडवीअङ्कुरेण सअलवणराइमज्जम्मि ।

तह तेण कओ अप्पा जह सेसदुमा तले तस्स ॥ ७० ॥

१. 'प्रकटित' ग. २. 'पक्षिणः' घ. ३. 'हे पहिअ रत्तिअन्धअ' ग. ४. 'निषीदति
भूरत्राह निषीदामि' ग. ५. 'निषीदिष्यसि' ग, 'निमग्नो भूः' घ. ६. 'भरिउग्गि-
णि' ग. ७. 'भरितोद्गीर्णानि कीर्यन्ते' ग, 'उपलाम्निनिभानि कीर्यन्ते' घ. ८. 'एव'
-घ. ९. 'पीनोन्नतानां स्तनानां' ग-घ. १०. 'पूरपुञ्ज' घ.

मृतेनापि वटव्रीजाङ्कुरेण सकलवनराजिमध्ये ।

मृतेनापि तत्र कृत आत्मा यथा शेषद्रुमास्तले तस्य ॥

मृतेनापि तत्र सकलविषममध्ये तथोत्कर्षः संपादितो यथा तत्प्रभावेण सर्वेऽपि
मृतेनापि तत्र इति भावः । मृतेनापि तरुणा उत्कर्षाय चेष्टितं त्वं पुनर्महावंशप्रभवः
मृतेनापि तत्र निरुद्योग कंचिन्प्रत्युपदेशो व्यङ्ग्य इति कश्चित् ॥

मृतेनापि तत्र इति भवन्तीति प्रतिपादयन्कश्चिद्द्वारिचं संबोध्याह—

ये ये गुणिनो जे जे अ चाङ्गणो जे विड्डुविण्णाणा ।

मृतेनापि तत्र विअक्खण ताण तुमं साणुराओ सि ॥ ७१ ॥

ये ये गुणिनो ये ये च त्यागिनो ये विदग्धविज्ञानाः ।

मृतेनापि तत्र विचक्षण तेषां त्वं सानुरागमसि ॥

मृतेनापि तत्र इति भवन्तीति प्रतिपादयन्कश्चिद्द्वारिचं संबोध्याह—

मृतेनापि तत्र म्मि सुन्दर महलतिहीचन्द्रदंसणसुहाणम् ।

मृतेनापि तत्र मोटजन्तकञ्चुअं पेक्खसु मुहं से ॥ ७२ ॥

मृतेनापि तत्र कौतुकिकोऽपि सुन्दर सकलतिथिचन्द्रदर्शनसुखानाम् ।

मृतेनापि तत्र मोच्यमानकञ्चुकं प्रेक्षस्व सुखं तस्याः ॥

मृतेनापि तत्र म्मि सुन्दरः । दृष्ट्या वा नायकं प्रत्युक्तिः ॥

मृतेनापि तत्र नायकस्यानागमने समाश्वासयन्तीं सखीं प्रति समुत्सुका नायिके-

मृतेनापि तत्र म्मि सुन्दरः । दृष्ट्या वा नायकं प्रत्युक्तिः ॥

मृतेनापि तत्र म्मि सुन्दरः । दृष्ट्या वा नायकं प्रत्युक्तिः ॥

मृतेनापि तत्र म्मि सुन्दरः । दृष्ट्या वा नायकं प्रत्युक्तिः ॥

मृतेनापि तत्र म्मि सुन्दरः । दृष्ट्या वा नायकं प्रत्युक्तिः ॥

मृतेनापि तत्र म्मि सुन्दरः । दृष्ट्या वा नायकं प्रत्युक्तिः ॥

१. 'पदद' स्व. २. 'अयाचका ये ये विज्ञप्तसद्भावाः' घ. ३. 'कौतुकोऽसि' ग.
४. 'मृतेनापि तत्र' ग. ५. 'अभ्याः' ग. ६. 'अइदीहा होन्ति' ग. ७. 'अतिदीर्घा'
८. 'दीर्घ' ग.

वंशकुञ्जे दत्तसंकेतायाः पुत्रवध्वास्तत्र गत्वा प्रियं संभुज्य परावृतौ तत्पत्नादिसंबन्धेन स्फुटेऽपराधे तामुपहसन्त्या श्वश्रवा प्रति वन्दिमुखेन (१) वधूरिदमाह—

अइदीहराँइ बहुए सीसे दीसन्ति वंसवत्ताई ।

भणिए भगामि अत्ता तुम्हाणँ वि पण्डुरा पुढी ॥ ७४ ॥

[अतिदीर्घाणि वध्वाः शीर्षं दृश्यन्ते वंशपत्त्राणि ।

भणिते भगामि श्वश्रु युष्माकमपि पाण्डुर पृष्ठम् ॥]

अत्ता इति श्वश्रूसंबोधने देशी । पृष्ठशब्दस्य स्त्रीलिङ्गत्वमनुशासनात् ॥

मानवत्यां नायिकायां विरक्ता सेति विरज्यन्त नायकं बोधयन्ती दूतीदमाह—

अत्थक्करूसणं खणपसिज्जणं अलिअवअणणित्त्वन्धो ।

उन्मच्छरसंतावो पुत्तअ पअवी सिणेहस्स ॥ ७५ ॥

[आकस्मिकरोषकरणं क्षणप्रसादनमलीक्यचननिर्वन्धः ।

उन्मत्सरसंतापः पुत्रक पदवी स्नेहस्य ॥]

अत्थक्केति आकस्मिके अद्भुते वा देशी । उन्मत्सरेति बहुले । ‘उन्मूर्छनं प्रतिकूल-वाचा प्रकोपनम्’ इति प्राचीनटीका । तथा च स्नेहबहुलतया त्वयि सा नानाविधान्मानमार्गानाचरतीति न तद्विरक्तिसंभावनापीति यथापूर्वं त्वया तस्या व्यवहर्तृत्वमिति दूत्या उक्तिः ॥

जनसमर्दे जातदर्शना कटाक्षादिमविक्षिपन्तीं नायिकामनुरक्तेतिसदिहानं नायकं प्रोत्साहयन्ती सखी दूती चेदमाह—

पिज्जइ कण्णञ्जलिहि जणरवमिलिअं वि तुज्ज संलावम् ।

दुद्धं जलसंमिलिअं सा बाला राजहंसि व्व ॥ ७६ ॥

[पिबति कर्णाञ्जलिभिर्जनरवमिलितमपि तव संलापम् ।

दुग्धं जलसंमिलितं सा बाला राजहंसीव ॥]

अत्र पिबतीति कर्त्रर्थे पीयत इति कर्मप्रत्ययः । प्राकृते लिङ्गवचनमतन्त्रमित्याद्यनुशासनात् । अथ वा सा बाला राजहंसी वेति प्रथमा तथा राजहंस्येवेति तृतीयार्थे । तथा च पीयत इति यथाश्रुतमेव व्याख्येयम् । तथा च कोलाहलप्रविष्टस्यापि भवद्भवसो वैजात्यं प्रेमातिशयेन बुभुत्सया गृहीत्वा त्वदुक्तशब्दार्थं मन्त्रिकटे वर्णयामासेति त्वयि साल्यन्तमनुरक्तेति यथापूर्वं स्नेहो विधेय इति सख्युक्तिः ॥

१. ‘मात’ ग. २. ‘पाण्डुरा पृष्टिः’ ग-घ. ३. ‘अकस्माद्रोपणं’ ग. ४. ‘उन्मूर्छन’ ग.

प्रति पृच्छन्तीं नायिकां प्रति काचित्सखी वदति—

उत्तरं लज्जसि पुच्छिज्जन्ती पिअस्स चरिआइं ।

मन्थमुग्घिणो मरुवअस्स किं कुसुमरिद्धीहिं ॥ ७७ ॥

[अयि ऋजुके न लज्जसे पृच्छन्ती प्रियस्य चरितानि ।

मन्थाम्भुरभेर्मरुवकस्य किं कुसुमर्द्धिभिः ॥]

मन्थाम्भुरभेर्मरुवकः प्रस्थपुष्पः फणिज्जकः' इत्यमरः । तथा च सहजसौ-
मन्थाम्भुरभेर्मरुवकस्य किं गुणान्तरं पृच्छसीति भावः ॥

आभाविकलौहित्यवन्तौ करौ धातुरागेण रक्ताविति विभ्रमेण वारं वारं प्रक्ष-
यन्तौ निश्चारयन्ती इत्याह—

मुद्धे अपत्तिअन्ती पवालाअङ्कुरअवण्णलोहिअए ।

णिद्धोअधाउराए कीस सहत्थे पुणो धुअसि ॥ ७८ ॥

मुग्घंअप्रैत्ययन्ती प्रवालाङ्कुरैर्वर्णलोहितौ ।

निर्धौतधातुगणौ किमिति स्वहस्तौ पुनर्धावयसि ॥]

अप्रैत्ययन्ती प्रत्ययं विश्वासमकुर्वाणा । धावयसि प्रक्षालयसि । नायिकासुग्घ-
नयोः सार्द्धज्जकस्य लज्जं तटस्थं नायकं प्रति ख्यापयन्त्या दूत्याः सख्या वा उ-
पधावयमेन दुःखिता नायिकां शरत्कालोपगमेन स शीघ्रमायास्यतीति समाश्व-
स्यतीति इत्याह—

उअ म्निधवपव्वअसच्छहाइं धुअतूलपुञ्जसरिसाईं ।

मोहंन्ति सुअणु मुक्कोअआइं सरए सिअब्भाइं ॥ ७९ ॥

[पश्य सैन्धवपर्वतसदृक्षाणि धुततूलपुञ्जसदृशानि ।

शोभन्ते सुतनु मुक्कोदकानि शरदि सिताभ्राणि ॥]

'सुअणु' इति पाठे सुजनेति पान्थसंबुद्धिः । वर्षाकालोपगमेन पथां यात्रा-
दृशान्तोपगमेन द्रव्यादिकमर्जनीयं गृहे न स्थेयमित्यादि भङ्ग्या कश्चिदाहेति
तात्पर्यार्थः ॥

संकेतस्थानकुञ्जानां महिपसानिधयेन दुरासदत्वात्खिद्यन्तं नायकं खिद्यन्तीं
विकां प्रोत्साहयन्ती काचिदाह—

आउच्छन्ति सिरेहिं विवलिएहिं उअ खंडिएहिं णिज्जन्ता ।

णिप्पच्छिमवलिअपलोइएहिं महिसा कुडङ्गाइं ॥ ८० ॥

१. 'अतिऋजुके' ग-घ. २. 'अप्रतियन्ती' घ. ३. 'स्निग्धलोहितौ' घ. ४.
इति व' ग. ५. 'धौततूलराशिसमानानि' ग. ६. 'शुष्यन्तीव मुक्को' ग. ७.
एहिं' ग.

[आपृच्छन्ति शिरोभिर्विवलितैः पश्य [खण्डिकैः] नीयमानाः ।

निःपश्चिमवलितप्रलोकितैर्महिषाः कुञ्जान् ॥]

महिषापगमेन कुञ्जा इदानी निराबाधसंकेतस्थानतामुपगताः । पशवोऽपि महिषा
ग्रीष्मादौ यत्र स्थित्वा छायामुपलभ्य सुखमासादितवन्तस्तत्परित्यागे तेषामपि दुःखं
भवति परावृत्य पुनस्तत्पश्यन्तीति सदयमाना (सहृदयाना) सुखसनिधानस्थलमवश्यं वि-
लोकनीयमत्याज्यं चेति भावः । निःपश्चिमानि चरमाणि यानि वलितानि परावर्तनानि
प्रलोकितानि च तैः ॥

निजदारिद्रेणाशु विमुञ्चन्तीं नायिका समाश्रासयन्ती दूत्याह—

पुसउ मुहं ता पुत्ति अ वाहोअरणं विसेसरमणिज्जम् ।

मा एअं चिअ मुहमण्डणं त्ति सो काहिइ पुणो वि ॥ ८१ ॥

[प्रोच्छस्व सुखं तत्पुत्रि च (पुत्रिके) बाष्पोपकरणं विशेषरमणीयम् ।

मैा इदमेव सुखमण्डनमिति करिष्यसि पुनरपि ॥]

मण्डनाभावेन त्वमशु विमुञ्चसि कितु सहजसौन्दर्यशालिन्यास्तव अश्रु एव मण्डनं
भवतीति किं मण्डनान्तरेण । अथवा दरिद्रेयं मण्डनमिच्छतीति धनिनो मण्डनादिदानेन
सुखसाध्येति तटस्थं प्रति दूत्या उक्तिः ॥

पथि कर्दमबाहुल्येन त्वद्गृहे कथमागन्तव्यमिति जिज्ञासुं नायकं नायिका वा बोध-
यन्ती काचिदाह—

मज्जे पअणुअपङ्कं अवहोवासेसु साणचिक्खिलम् ।

गामस्स सीससीमन्तअं व रच्छामुहं जाअम् ॥ ८२ ॥

[मध्ये प्रतनु[क]पङ्कमुभयोः पार्श्वयोः श्यानकर्दमम् ।

ग्रामस्य शीर्षसीमन्तमिव रथ्यामुखं जातम् ॥]

प्रतनु खल्पं कं जलं यस्मिन्नेतादृशः पङ्को यत्र तादृशम् । तथा च रथ्योभयपार्श्वयोः
श्यानकर्दमत्वम् । दिवा निरीक्षितेन पथा रात्रावागन्तव्यमिति काचिद्बोधयति ॥

काचन नायिका पितृगृहे स्थिता काचिदासक्ता । तद्भर्तारि समागते व्याकुलचित्तं
नायकं समादधती दूत्याह—

अवरह्णागअजामाउअस्स विउणेइ मोहणुकण्ठम् ।

बहुआइ घरपलोहरमज्जणपिसुणो वलअसदो ॥ ८३ ॥

१. 'खण्डिकैः' ग. २. 'निजपश्चिम' ग. ३. 'तावत्सुन्दरि बाष्पाचरणपरिशेष' ग,
'तावत्पुत्रक बाष्पावतरण' घ. ४. 'मातस्तवैव' घ. ५. 'उभयपार्श्वयोः सरस' घ.
६. 'सीमन्तकमिव' घ.

[अपराह्लागतजामातुर्द्विगुणयति मोहनोत्कण्ठाम् ।

वध्वा गृहपश्चाद्भागमज्जनपिशुनो वलयशब्दः ॥]

मोहनं सुरतम् । मज्जन शयनमङ्गसंमार्जनं वा । तस्य पिशुनः सूचकः । अपराह्लागते-
त्यनेन दिनसत्त्वे जामाता श्वश्र्वादिमानिध्येन पश्चाद्गृहे न गमिष्यति । सा तु दिनशेष
एव तत्र स्वपिति त्वया तत्र गन्तव्यं तत्र सा सुलभेति भावः ॥

कृतकर्मण आरभटीदर्शनेनैव परे पलायन्ते तत्र भीरवस्तु सुतरां पलायन्त इति
भीरुता न कर्तव्येति कश्चित्कंचिद्बोधयति—

जुञ्जचवेडामोडिअजज्जरकण्णस्स जुण्णमल्लस्स ।

कच्छाबन्धो च्चिअ भीरुमल्लहिअअं समुत्खणइ ॥ ८४ ॥

[युद्धचपेटामोटितजर्जरकर्णस्य जीर्णमल्लस्य ।

कक्षाबन्ध एव भीरुमल्लहृदयं समुत्खनति ॥]

पूर्वं तत्पतिरतिशूरः समर्थश्च स्थितः । सप्रति वार्धकेन क्षीणशक्तिरिति यथापूर्वं तद्वेष-
धारणमात्रेण तस्मान्न भेतव्यम् । क्षीणशक्तित्वेन तस्या एव स न रोचते । सर्वप्रती-
कारसमर्थे त्वयि सा ज्ञेहमाचरिष्यतीति भीरुतामपहाय तस्यां लया प्रवर्तितव्यमिति
भावः ॥

काचन सहजसुन्दरी ख्यातगुणवती च प्रियापमानितापि न लज्जिता दौर्भाग्यस्य च
चिरकालानवस्थायित्वेन हर्षितैव तां बोधयन्ती सख्याह—

आणत्तं तेण तुमं पइणो पइएण पडहसदेण ।

मल्लि ण लज्जसि णच्चसि दोहग्गे पाअडिज्जन्ते ॥ ८५ ॥

[आज्ञप्तं तेन त्वां पत्या ग्रहतेन पटहशब्देन ।

मल्लि न लज्जसे नृत्यसि दौर्भाग्ये प्रकटीक्रियमाणे ॥]

पत्या भर्त्रा पटहशब्देन डिण्डीरवेण यदौर्भाग्यमाज्ञप्तं तेन त्व लज्जिता न भवसि, नृत्य-
स्येवेति क्षमावति त्वमसि । अथवा पत्युर्विरक्तापि नृत्यसीत्यनेन परमसुन्दरीय स्वसौन्द-
र्यगर्विता सुखसाध्यति तटस्थं कामुकं प्रति प्रलोभनोक्तिर्दूत्याः ॥

खलस्य वाङ्माधुर्यमात्रेण विश्वासो न विधेय इति कश्चिदाह—

मा वच्चह वीसम्भं इमाणं बहुचाडुकम्मणिउणाणम् ।

णिव्वत्तिअकज्जपरम्मुहाणं सुणआणं व खलाणम् ॥ ८६ ॥

१. 'भीरुमल्लानां हृदयं समुत्पातयति' ग, 'पलायमानानामक्षिद्वयं समुत्खनति' सुआ-
२. 'आणन्दीअ तुमं' ग. ३. 'आनन्दयन्ती त्वं पत्युः' ग-घ. ४. 'प्रकटयमाने' ङण्ड-

[मा व्रजत विस्रम्भमेर्षां बहुचाटुकर्मनिपुणानाम् ।
निर्वर्तितकार्यपराङ्मुखाणां शुनकानामिव खलानाम् ॥]

खलखभावोक्तिरियम् ॥

ग्रामान्तरं गच्छन्तीमसतीमनु व्याजेन सह प्रस्थितान्वहून्कामुकान्दृष्ट्वा कापि परि-
हासपूर्वमिदमाह—

अण्णग्गामपउत्था कडुन्ती मण्डलाणँ रिळ्छोलिम् ।

अक्खण्डितसोहग्गा वरिससअं जिअउ मे सुणिआ ॥ ८७ ॥

[अन्यग्रामप्रस्थिता कर्षयन्ती मण्डलानां पङ्क्तिम् ।
अखण्डितसौभाग्या वर्षशतं जीवतु मे शुनी ॥]

मण्डला कुङ्कुराः । रिळ्छोलीति पङ्क्त्या देशी ॥

काचन देवरेऽनासक्ता, तेन च प्रियवाक्यशतैः प्रलोभ्य वशीकृता । ततश्च कु-
नश्चिन्निमित्ताद्विरज्यति तस्मिन्स्तमुपालब्धुमिदमाह—

सच्चं साहसु देअर तह तह चडुआरण सुणएण ।

णिव्वत्तिअकज्जपरम्महत्तणं सिक्खिअं कत्तो ॥ ८८ ॥

[सत्यं कथय देवर तथा तथा चाटुकारकेण शूनकेन ।
निर्वर्तितकार्यपराङ्मुखत्वं शिक्षित कैस्मात् ॥]

तथा च त्वत्त एवेदं तेन शिक्षितमिति मत्पराङ्मुखत्व सर्वथा हेयमिति भावः ॥
तस्या गृहेऽन्नादिसमृद्ध्या रात्रौ च तत्पतिर्गायतीत्यनेन तत्पतिसान्निध्येन चन्द्रिका-
शोभित्वेन च रात्रेरद्य सा न सुखसाध्येति काचित्कंचिद्बोधयति—

णिप्पणसस्सरिद्धी सच्छन्दं गाइ पामरो सरए ।

दल्लिअणवसालितण्डुलधवलमिअङ्कासु राईसु ॥ ८९ ॥

[निप्पन्नसस्यऋद्धिः स्वच्छन्दं गायति पामरः शरदि ।

दलितनवशालितण्डुलधवलमृगाङ्कासु रात्रिषु ॥]

शरत्काले शालीनां पाके हलिकः स्वगृहे तिष्ठति, तदपाके तद्रक्षार्थं स्वयं क्षेत्रादौ
तिष्ठतीति हलिकवधूः शरत्कालातिरिक्तकाले सुलभेति कश्चित्कंचिद्बोधयतीति वा ॥

‘ता १. ‘इमान्—खलान्’ ग. २. ‘कर्षयन्ती’ ग-घ. ३. ‘भवतु मण्डलिका’ ग.
६. ४. ‘शुना’ ग-घ. ५. ‘कुत.’ ग-घ.

यस्य ते पूर्ववन्मन्त्रेयकलमगोपीपदाङ्कितक्षेत्रकर्षणं दृष्ट्वा कश्चित्पान्थ आह—

त्रैलोक्ये नइ पङ्कअले हलालिचैलणेण कलमगोवीए ।

कं आरसोअरुसभणतंसट्टिअ कोमलो चलणो ॥ ९० ॥

अभिलष्यते पङ्कतले हलालिचलनेन कलमगोप्याः ।

त्रैलोक्यतोर्वीरोधतिर्यक् (त्र्यंश) स्थितः कोमलश्रवणः ॥]

संज्ञा 'अभिलष्यते पङ्कजलुब्धालिवलयेन' ॥

यस्य मन्त्रेण स्थितः । असंपूर्ण इति यावत् । यदा पूर्ववत्सरे क्षेत्रमध्यस्थितज
लुब्धो आरव्यन्मदा कलमगोप्याः शालिपाकेन संकेतस्य लाभावबोधेन दुःखोप
पदे संपूर्णश्रवणो न पङ्कमध्ये प्रतिविम्बितः । स च वर्षान्तरे कर्षणावसरे दृष्टः । तेनात्र
पुत्र कलमोत्पत्तिमारभ्य तत्पाकपर्यन्तं कलमगोपी पान्थादिमुलभा स्थास्यतीति तत्रा-
वस्थां पान्थो निवेदयति स्मरति वा पूर्वानुभूतमर्थमिति भावः ॥

द्विअहे द्विअहे मूसइ संकेअअभङ्गवड्डिआसङ्का ।

आपाण्डुगेणअमुही कलमेण समं कलमगोवी ॥ ९१ ॥

[द्विमे द्विमे शुष्यति संकेतकभङ्गवर्धिताशङ्का ।

आपाण्डुगवन्तमुखी कलमेन समं कलमगोपी ॥]

यदा यथा कलमक्षेत्रमापाण्डुरं भवति, तथा तथा कलमगोपी संकेतस्थलापगमचि-
त्तत्त्वमामुम्भी भवतीति कलमक्षेत्रकाले सुखसाध्येति तटस्थं प्रति कस्याश्चिदुक्तिः ॥

अकम्मिएण हंअपामरेण दट्टूण पाँउहारीओ ।

मोक्तव्ये मोक्तव्येअपगगहम्मि अवहासिणी मुक्का ॥ ९२ ॥

अकम्मिणेन हतपामरेण दृष्ट्वा पाँदपङ्कीः ।

मोक्तव्ये अनावद्वसित्वा व्याक्रोशिनी मुक्ता ॥] (१)

द्विमे अमेव ॥

१. 'त्रैलोक्ये' ग. २. 'वलण' ग. ३. 'रुन्धण' ग. ४. 'अभिलष्यते' ग,
'अभिलष्यते' घ. ५. 'पङ्कजलुब्धालिवलयेन' ग-घ. ६. 'स्रोतोन्तरोधनतिर्यक्' ग,
'स्रोतोन्तरोधनतिर्यक्' घ. ७. 'स्थितकोमलौ चरणौ' ग. ८. 'कम्मिएण' ख. ९. 'उअ'
ग. १०. 'अपिहारीओ' ग. ११. 'नेविअपगग' ग. १२ 'कर्मणा पद्य' ग, 'कर्मि-
णा पद्य' घ. १३. 'पानीयभक्तहारिकाम्' ग, 'भक्ताद्याहारी' घ. १४. 'मोक्तव्ये'
'मोक्तव्ये' ग, 'मोक्तव्ये योक्तकप्रग्रहेऽवकाशिनी' घ.

काचिद्रतासक्तान्यचित्तां करोति । हलवाहनासक्तस्य भक्तहारिणीमेव दृष्ट्वा पा-
मरस्य चेष्टां वा कापि प्राह—

[नवकर्मिणा पश्य पामरेण दृष्ट्वा भक्तहारिकाम् ।

मोक्तव्ये योऋप्रग्रहेऽवहासिनी मुक्ता ॥]

पा[उहारी] भक्तहारीति देश्याम् । न[वकर्मिणा] अनभ्यस्तकर्मिणा । योऋरूपे
प्रग्रहे मोक्तव्ये अ[वहासिनीमुक्ता ।] भक्तहारिका दृष्ट्वा जातव्यासङ्गेनावहासिनी 'नाथ'
इति प्रसिद्धा, अन्यो "जोत" इति व्याख्या टीकान्तरस्था ॥

ददृण हरिअदीहं गोसे णइजूरए हलिओ ।

असईरहस्समगं तुसारधवले तिलच्छेत्ते ॥ ९३ ॥

[दृष्ट्वा हरितदीर्घं प्रातर्नातिखिद्यते हलिकः ।

असतीरहस्यमार्गं तुषारधवले तिलक्षेत्रे ॥]

तिलक्षेत्रमध्ये येन पथा काचिदसती गत्वा विहारं कृतवती तं मार्गं हरिततिलयुक्तं
दृष्ट्वा नातिखिन्नोऽभूदिति स्वक्षयभावे परोपकृतौ हालिकस्यापि तात्पर्यमिति परोप-
कृतौ यतनीयमिति भावः ॥

संकल्लिओ व्व णिज्जइ खण्डं खण्डं कओ व्व पीओ व्व ।

वासागमम्मि मँगो घरहुत्तमुहेण पहिएण ॥ ९४ ॥

[संकोचित इव नीयते खण्डं खण्डं कृत इव पीत इव ।

वर्षागमे मार्गो गृहभविष्यत्सुखेन पथिकेन ॥]

'गृहभवत्सुखेन' इति वा । आगामिसुखमुद्दिश्य पथिकेन मार्गक्लेशमगणयित्वा त्वरया
गृहं प्रति गम्यत इति नायको यथा दुःखं न प्राप्नोति तथा नायिकया विधातुमुचित-
मिति भावः ॥

"काचिदुत्तमा दुर्जनस्य कस्यचिदुपचयं पश्यन्ती सखीसंनिधौ परितप्यते—

धण्णा बहिरा अन्धा ते च्चिअ जीअन्ति माणुसे लोए ।

ण सुणन्ति पिसुणवअणं खलाणं ऋद्धिं ण पेक्खन्ति ॥ ९५ ॥

१. 'सण्ढाण जूरए' ग. २. 'प्रातर्दृषभान्निन्दयति हालिकः' ग. 'प्रभाते वन्येभ्य
ऋध्यति हलिकः' घ. ३. 'साहइ' ग. ४. 'पन्था' ग. ५. 'मुहेण' ग. ६. 'संकलित इव
ज्ञायते' ग. ७. 'गृहाभिसुखमनसा' ग-घ. ८. इतः प्रभृति सटीकं गाथापञ्चकं शतकपू-
रणार्थं कुलबालदेवव्याख्यातो गृहीतम्. गङ्गाधरटीकायां तु गाथापञ्चकोनं सप्तशतकम-
स्तीति ज्ञेयम्.

[धन्या बधिरा अन्धास्त एव जीवन्ति मानुषे लोके ।

न शृण्वन्ति पिशुनवचनं खलानामृद्धिं न प्रेक्षन्ते ॥]

असदृश्या कस्यांचिदासक्तः कश्चिदुत्तम एव सख्या वार्यमाणः सासूर्यं तमे वदति—

एहिं वारेइ जणो तइआ मूइल्लओ व्व गओ ।

जाहे विसं व जाअं सव्वङ्गपहोलिरं पेम्म ॥ ९६ ॥

[इदानीं वारयति जनस्तदा मूलकः कुत्रापि वा गतः (आसीत्) ।

यदा विषमिव जातं सर्वाङ्गघूर्णितं प्रेम ॥]

कस्याश्चित्सखी सख्या अनुरागातिशयं नायकविषये सूचयन्ती नायकाग्रे कथयति—

कह तंपि तुइ ण णाअं जह सा आसन्दिआणँ बहुआणम् ।

काऊण उच्चवचिअं तुह दंसणलेहला पडिआ ॥ ९७ ॥

[कथं तदपि त्वया न ज्ञातं यथा सा आसन्दिकानां बहूनाम् ।

कृत्वा उच्चावचिकां तव दर्शनलालसा पतिता ॥]

रात्रिशेषे कुक्कुटः शब्दं करोतीति कुक्कुटानां स्वाभाविकं रूपम् । तच्छ्रुत्वा तस्य प्र-
योजनमुत्प्रेक्ष्य विवृणोति कश्चित्—

चोराणँ कामुआणँ अ पामरपहिआणँ कुक्कुडो वअइ ।

रे रमह वहह वाहयह एत्थ तणुआअए रअणी ॥ ९८ ॥

[चौरान्कामुकांश्च पामरपथिकांश्च कुक्कुटो वदति ।

रे रमत वहत वाहयत अत्र तन्वी भवति रजनी ॥]

यथायोगमन्वयः, न तु यथासंख्यम् ॥

कयोश्चिन्नायिकयोरन्योन्यं कलहं कृतवतोः कटाक्षान्तरेण निरीक्षणं कुर्वतोरनन्तर-
मन्योन्यं कटाक्षयोः संनिपाते समं प्रहसितयोश्चेष्टितमेका परस्याः कथयति—

अण्णोण्णकडक्खन्तरपेसिअमेलीणदिट्ठिपसराणम् ।

दो च्चिअ मण्णे कअमण्डणाइँ समअं पहसिआइँ ॥ ९९ ॥

[अन्योन्यकटाक्षान्तरप्रेषितमिलितदृष्टिप्रसरौ ।

द्वावपि मन्ये कृतकलहौ समकं प्रहसितौ ॥]

मण्डनशब्दः कलहविशेषे वर्तते ॥”

अथ समाप्तौ हरनमस्काररूपं मङ्गलमाचरति—

संज्ञागहिअजलञ्जलिपडिमासंकन्तगोरिमुहकमलम् ।

अलिअं चिअ फुरिओढुं विअलिअमन्तं हरं णमह ॥ १०० ॥

[संध्यागृहीतजलाञ्जलिप्रतिमासंकान्तगौरीमुखकमलम् ।

अलीकमेव स्फुरितोष्ठं विगलितमैत्रं हरं नमत ॥]

हरस्यापि गौरीमुखकमलप्रतिबिम्बं दृष्ट्वा संध्यारूपनित्यकर्माङ्गमन्त्रलोपो भवति, किं पुनरस्मदादेर्लोकस्य प्रियासानिध्ये व्याकुलचित्ततेति सर्वथा स्त्रीसङ्गः परिहरणीय इति तात्पर्यार्थः ॥

इअ सिरिहालविरइए पाउअकव्वम्मि सत्तसए ।

सत्तमसअं समत्तं गाहाणं सहावरमणिज्जम् ॥

[इति श्रीहालविरचिते प्राकृतकाव्ये सप्तशते ।

सप्तमशतं समाप्तं गाथानां स्वभावरमणीयम् ॥]^३

हाल इति राज्ञः शालिवाहनस्य संज्ञान्तरम् । गाथेति च्छन्दः । इतिशब्दो ग्रंथपरिसमाप्तौ ॥

इति गङ्गाधरभट्टविरचिता प्राकृतगाथासप्तशतीटीका समाप्ता ।

१. 'मणुं' ग. २. 'मनुं' ग. ३. ख-ग पुस्तकयोः समाप्तावियमेका गाथा—

एसो कविणामङ्किअगाहापडिबद्धवड्ढिआआमो ।

सत्तसअओ समत्तो सालाहणविरइओ कोसो ॥

[एष कविनामाङ्कितगाथाप्रतिबद्धवर्धितायामः ।

सप्तशतकः समाप्तः शालवाहनविरचितः कोषः ॥]